घरेलू बागबानी

लेखक
डॉ० विपिन गुप्ता

प्रकाशक
आशा प्रकाशन गृह
करोल बाग, नई दिल्ली—110005

प्रकाशक :
आशा प्रकाशन गृह
30 नाईवाला, करोल बाग;
नई दिल्ली-110005

दूरभाष : 5721221

नवीन सस्करण : 1992

मूल्य : 60-00

मुद्रक :
अग्रवाल आफसैट प्रिंटर्स
27/10, गली नं० 6, विश्वास नगर, दिल्ली-32

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक 'घरेलू बागवानी' नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुसार छात्र-छात्राओं की अवस्था, बुद्धि एवं शारीरिक क्षमता को ध्यान में रखकर तैयार की गई है। इसमें फूल व सब्जियाँ उगाने के तरीकों का सविस्तार और सचित्र विवरण दिया गया है। इसके साथ ही अलंकृत बागवानी के सिद्धान्तों से अवगत कराने का भरसक प्रयास किया गया है, भाषा भी सरल रखी गई है। हरेक अध्याय के अंत में साराश, आदर्श प्रश्न और प्रयोगात्मक प्रश्न दिये गए हैं। पुस्तक अंत मे गृह वाटिका में उगाई जाने वाली सब्जियों की मासिक तालिका और सब्जीपचाग दिया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक को हर प्रकार से उपयोगी बनाने के लिए भारतीय व विदेशी पत्रिकाओं, बुलेटिनों, वैज्ञानिक लेखों तथा पुस्तकों से सहायता ली है, जिनमें से डॉ० चन्दोला कृत 'उद्यान विज्ञान', डॉ० व्यास कृत 'कृषि दीपिका', डॉ० चन्द्रिका ठाकुर कृत 'फसल विज्ञान', बाई. आर. मेहता कृत 'वैजीटेबल ग्रोइंग इन उत्तरप्रदेश', के. एस. यावलेकर कृत 'वैजीटेबल क्रॉप्स ऑफ इंडिया', जे. एस. शूमेकर कृत 'वैजीटेबल ग्रोइंग', विश्वजित चौधरी कृत 'सब्जियाँ', एच. सी. टामसन तथा डब्ल्यू. सी. कैली कृत 'वैजीटेबल क्रॉप्स,' और ई. डब्ल्यू. ग्रिण्डल कृत 'एवरी डे गार्डनिंग इन इंडिया' आदि उल्लेखनीय है। सब्जियों के पौष्टिक मूल्य सम्बंधी आँकड़े इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च की स्पेशल रिपोर्ट सीरीज संख्या 42 के आधार पर दिये गये है। हम इन सभी लेखकों व प्रकाशको के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते है और आभार मानते है। पुस्तक मे अन्य सुधारों के लिए विद्वानों के बहुमूल्य सुझावों का स्वागत किया जायेगा।

—लेखक

विषय-तालिका

उद्यान कला और उसका महत्त्व (HORTICULTURE & ITS IMPORTANCE) | 1

प्रस्तावना (INTRODUCTION)

मानव का सहवास आदिकाल से ही पौधों एवं वृक्षों से रहा है। उसने प्रकृति से ही सौन्दर्य और उपयोगिता का पहला पाठ सीखा है। सौन्दर्य के उपकरणों में सुमनों का सदा से ही विशिष्ट स्थान रहा है। अतः उसने अपनी रुचि के पुष्पों के पौधों और फल-वृक्षो का उत्पादन किया। कालान्तर मे उसे इनसे आर्थिक लाभ भी पहुँचा। धीरे-धीरे परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ उसने वातावरण के अलंकरण के लिए इनके महत्त्व को समझा। फिर तो सभ्यता के बदलते हुए चरण के साथ-साथ इन्हें घरों में, सार्वजनिक स्थानों में, उद्यानों में और सड़कों की दोनों ओर सौन्दर्य एव छाया के लिए सुन्दर-सुन्दर वृक्षो को लगाया जाने लगा। इस प्रकार यह कला मनोरंजन एवं आत्म-तुष्टि का साधन बनती चली गई। इस पर समय और श्रम लगाया जाने लगा। इस प्रकार उद्यान-कला आज कल संवेदनशील ललित कला बन गई है।

आज उद्यान विज्ञान ने भी उन्नत कृषि का ही रूप ले लिया है। इसके अन्तर्गत घरेलू वाटिका में या व्यावसायिक स्तर पर खेतों में वैज्ञानिक ढंग से फल-फूलों व शाक सब्जियों को लगाने और उनके उत्पादन का व्यावहारिक ज्ञान, पौधों की सुरक्षा के उन्नत उपाय तथा अन्य साधनो की उपलब्धि आदि आते हैं। आज के युग में यह केवल एक कला ही नही है अपितु आय का साधन भी है। इस से समय का सदुपयोग भी होता है और परिवार के सदस्यों मे सहयोग की भावना भी बढ़ती है।

इस कला से सर्वाधिक लाभ उठाने के लिए किसी फसल विशेष की जलवायु और भूमि, बुवाई का ठीक समय, पौध लगाना या बीज डालना, खाद या उर्वरक, सिंचाई, संवर्धन, काटछांट और नियंत्रित विकास, फलना, बीजोत्पादन पौधों के रोग व शत्रु-कीटों की जानकारी तथा उनके नियन्त्रण आदि का पूरा-पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। इसके साथ ही यह भी जानकारी रहनी चाहिए कि भूमि का अधिकतर लाभ किस प्रकार उठाया जा सकता है। इसके लिए वैज्ञानिक ढंग से एक के बाद एक और साथ-साथ सब्जियों को उगाने के एक निश्चित क्रम का पालन किया जाना चाहिए। क्यारियों को बांटने वाली मेड़ों का सदुपयोग उनके ऊपर जड़ों वाली सब्जियाँ उगा कर करना चाहिए। फसल-क्रम का नियमित रूप से पूरा ध्यान रखना चाहिए। इसके साथ ही इनके क्रय-विक्रय के साधनों की भी पूरी जानकारी रहनी चाहिए। इस प्रकार से यह बागवानी विज्ञान भी है और कला भी। घरेलू वाटिका की समुचित रूपरेखा तैयार करके योजनाबद्ध लगाना और उसकी भली-भांति देख-भाल करना एक सुन्दर कला है। फूलों का सजावट के लिए सदुपयोग करना और उनकी प्रदर्शनियों का आयोजन करना आदि भी इसी के अंतर्गत आते हैं।

भारतीय उद्यानों की उत्पत्ति एवं विकास
(ORIGIN AND DEVELOPMENT OF GARDENS IN INDIA)

वैदिक युग में आर्यों को वृक्षों और पुष्पों से बहुत ही गहरा लगाव था। पुष्प का पर्याय सुमन इनकी सौंदर्यात्मक संवेदना के आभास का द्योतक है। अतः आदि काल से ही वार्षिक फूलों के उत्पादन के साथ-साथ हमेशा बड़े-बड़े सुमन-वृक्षों का उत्पादन भी किया जाता रहा है। इन्होंने वार्षिक सुमनों के वर्ग में तुलसी, गेंदा और चौलाई का उत्पादन किया। इनके पास समय का अभाव नहीं था, ये अपने मस्तिष्क को सदा शांत रखना पसन्द करते थे। ये दोनों ही चीजें अर्थात् समय और शांत मस्तिष्क उद्यान-कर्म के लिए वांछनीय है। वास्तव में भारतीय उद्यानों का जन्म देवालयों और मठों से हुआ है। बौद्धों को कदम्ब और अशोक के वृक्ष बहुत अच्छे लगते थे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि महात्मा बुद्ध को पीपल के नीचे ही निर्वाण-प्राप्ति हुई थी और बाद में वह 'बोधिवृक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 260 बी० सी० तक भी चक्रवर्ती सम्राट् अशोक ने पथिकों को छाया व आश्रय के लिए सड़कों के दोनों ओर आम व बड़ के वृक्ष लगवाये थे।

वात्स्यायन ने भी निम्नलिखित चार प्रकार के उद्यानों का उल्लेख किया है।

1. प्रमादोद्यान—इस प्रकार के उद्यानों में तत्कालीन राजा रानी अपना समय बिताया करते थे।

2. क्रीड़ा उद्यान—इस प्रकार के उद्यानों में राजा अपने सभासदों के साथ शतरंज आदि खेला करते थे और नृत्य-संगीत का आनन्द लूटते थे।

3. प्रमदवाटिका—इस प्रकार की वाटिकाओं में केवल सभासद ही पारस्परिक क्रीड़ा या मनोरंजन किया करते थे।

4. नंदन बन—इस प्रकार का उद्यान भगवान इन्द्र के नाम पर रखा जाता था।

इनके अलावा वात्सायन ने उस समय के हर घर के पास बावड़ी और बाहर की ओर वाटिका के आवश्यक रूप से होने का वर्णन किया है। ऐसी वाटिकाओं में नीम या पीपल के वृक्ष पर झूला लटका रहता था जिसका अधिकांशतः उपयोग पावस ऋतु में ही किया जाता था तथा वाटिकाओं में सुन्दर-सुन्दर पक्षियों को भी पिंजड़ों में बंद करके वृक्षों पर लटकाया जाता था।

इन भारतीय उद्यानों का पवित्रता की दृष्टि से भी विशेष महत्व है। मुनी व मठाधीश सांझ-सवेरे अर्चना के लिए यहाँ से चम्पा और कदम्ब के पुष्प चुना करते थे। इस कारण देवालयों और आश्रमों के पास अधिकांशतः चम्पा व कदम्ब के पौधों का ही उत्पादन किया जाता था। हमारी पुष्पों से अर्चना की प्रथा को बाद में चीन व जापान ने भी अपनाया। हमारे शास्त्रों में कदम्ब को श्रीकृष्ण और अशोक को कामदेव से सम्बन्धित माना जाता है। इनके अलावा कानन अग्नि (ढाक के लाल पुष्प) का सम्बन्ध महात्मा बुद्ध से, सेमल के लाल पुष्प का महादेव से, कचनार के श्वेत पुष्पों का लक्ष्मी से, कमल का विष्णु से और चौलाई के पुष्पों का काली देवी से माना जाता है। इसी प्रकार अमलतास के पीले पुष्प व्यापार के लिए शुभ माने गए हैं।

गुप्तकालीन भारत में जनता बहुत सुखी थी। वह सामयिक पर्वों को बड़े हुल्लास के साथ मनाया करती थी। वसन्त पर्व के अवसर पर जो आज तक मनाया जाता है। बाल, युवा, वृद्ध सभी पीले वस्त्र धारण किया करते थे। इस समय पीली-पीली सरसों खेतों में छायी रहती है। प्रायः सभी प्रकार के वृक्ष सुन्दर-सुन्दर फूलों से लदे होते हैं। इसी समय पवित्र गंगा नदी पर दीप-दान का पर्व मनाया जाता है। कुमकुम के रंगों से भरी पिचकारियाँ फागुन मास में ही दिखायी देती हैं।

मध्यकालीन युग में भारतीय उद्यान कला पर फारस और मुगल संस्कृति की छाप पड़ी। ईरानी और मध्य एशिया के वासी पुष्पों को बहुत अधिक पसन्द करते थे। इस बात की पुष्टि उस ईरानी कविता से होती है, जिसमें बुलबुल का गुलाब से स्नेह का उल्लेख है। उमर खय्याम की कृति में भी वसन्त पर्व का चित्रण है। फारस के अधिकांशतः निवासियों का जीवन अंगूर की वाटिकाओ में बीता करता था और अवकाश के क्षणों में वे कभी-कभी गुलाब वाटिकाओं में घूमने के लिए जाया करते थे। वे इन क्षणों को जीवन के सुखद क्षण गिना करते थे। इस कारण

बहुत से उद्यान-कला वेत्ताओं का मत है कि पुष्प-उद्यानो का जन्मदाता ईरान है। आज कल भी ईरानियो की पुष्पो के प्रति विशेष रुचि है। ईरान में गुलाब के अलावा नार्सिसस, ट्यूलिप गेंदा, डैफोडिल और भोइल्यट आदि पुष्प उगाये जाते हैं। इरानी उद्यानो मे सगीतयता का विशेष ध्यान रखा जाता है। फूलों की क्यारियाँ बहुत ही कलात्मक ढंग से बनायी जाती हैं तथा ये लोग अपना नौ रोज-पर्व इन्ही उद्यानो मे बड़ी धूम-धाम के साथ मनाते है।

भारतीय उद्यान मुगलों की देन है। बाबर ही सबसे पहला मुग़ल शासक था जिसने भारत मे ईरानी व मध्यएशिया की उद्यानिकी को अपनाया। इसने अपनी कृति 'बागई वफा' मे समरकद और काबुल के उद्यानों तथा नए-नए भारतीय पौधों का वर्णन किया है। अदले जहांगीर और उसकी बेगम नूरजहा ने शाहदरा (लाहौर), वाह् व हसन अबदल के उद्यान बनवाए। शाहजहा के एक सभासद अलीमरदनखा ने लाहौर मे शालीमार गार्डन, दिल्ली के लाल किले व आगरे मे ताज महल के बागों का निर्माण करवाया। इसने ही कश्मीर में मध्य एशिया से मंगवाये हुए चिनार के वृक्षों को सब से पहले लगवाया था। फदाई खा ने पिंजौर गार्डन बनवाये थे। डल झील के किनारे पर स्थित निशात बाग नूरमहल के भाई आसफ खा ने बनवाया था। इन मुगलकालीन उद्यानो में अधिकांशतः वसन्त मे फूलने-फलने वाले वृक्ष ही मिलते है। इनमे श्वेत, लाल और कत्थई रंग के पौधों की अधिकता थी और फलो मे सेब व नाशपाती तथा आलूबुखारा आदि के वृक्ष दिखाई देते हैं। इनके अलावा डैफोडिल, नार्सिसस, ट्यूलिप के पौधे भी मिलते हैं। गर्मी के दिनों मे इन उद्यानो मे गुलाब, कार्नेशन, होलिहॉक, डल्फीनियम, पीओनी, जैस्मीन इत्यादि फूल वाले पौधों के लगाने का प्रचलन था।

योरोपीय पुष्प-उद्यानों मे से अंग्रेजी उद्यान सौन्दर्य में सबसे बढ-चढ कर हैं। इनका निर्माण वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। इनका इतिहास भी अंग्रेजी इतिहास के साथ यूनानी व रोमन सभ्यता से शुरू हुआ माना गया है। ईसा से ३०० वर्ष पूर्व यूनान मे इस कला का जन्मदाता इलीक्यूरस कहलाता है। यह अपने शिष्यों को छोटे से उद्यान मे ही शिक्षा दिया करता था। अन्य कम विकसित देशों के साथ व्यापारिक समझौते होने के साथ ही योरोपीय लोगो ने अपने आमोद-प्रमोद के साधनों मे भी विशेष परिवर्तन कर लिया था। धनिकों ने खाली समय के सदुपयोग के लिए उद्यान लगाना आरम्भ किया। उस समय भी सभी पुष्पों में गुलाब ही सर्वप्रिय था। इसका कारण थी उसकी मन-मोहक सुगन्ध। कहने का तात्पर्य यह है कि अधिक सुगन्ध वाले फूल ही अच्छे माने जाते थे। इनमे फव्वारे भी लगाये जाते थे और लकडी की बनी पशु आकृतियाँ भी जगह-जगह पर सौन्दर्य-वृद्धि के लिए बनायी जाती थी। केवल अट्ठारहवीं शती के शुरू मे ही इनमे वार्षिक पुष्प-पौधे उगाये जाने लगे थे। इनकी बहुत-सी जातियाँ

तो चरागाहों व खेतों में स्वयं उग आया करती थीं। बाद में विशेष सुविधाओं की उपलब्धि पर विभिन्न प्रकार के पुष्प-पौधे समुद्री यात्रियों के द्वारा विदेशों से भी मंगाये जाने लगे थे।

धीरे-धीरे ये व्यक्तिगत रूप से बनाये गए उद्यान ही सार्वजनिक रूप लेते गए। ऐसे ही उद्यान आज हमारे देश में जनता की अमूल्य धरोहर हैं। वसन्त ऋतु में उन्हें देखने के लिए लाखों लोग दूर-दूर से आते हैं तथा घटों तक इनमें खिले हुए फूलो के सौंदर्य को निहारते नहीं अघाते हैं।

इस युग के सबसे सुन्दर उद्यानों में जापानी उद्यान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्हें ही सब से अधिक विकसित उद्यानों की संज्ञा दी जाती है। यद्यपि यह कला भारत से ही बौद्ध धर्म के साथ-साथ जापान में गई थी। जापान में ये उद्यान ऐसे स्थानों पर बनाए जाते हैं जो शोरगुल से दूर होते हैं। इनमें बैठकर मनुष्य शांति के कुछ क्षण बिता सकता है। इनकी बनावट देखते ही अध्यात्मवाद का आभास उठता है। इनमें पानी, टापू, पुल, पत्थर और पत्थर से बनीं लालटेनें आदि विशेष रूप से दिखाई देती हैं। इनके अलावा देवदार, मोची, मोथोकू, काशी आदि के वृक्ष भी बहुतायत से मिलते हैं। पुष्प-पौधों में चेरी पुष्प, गुलदाउदी और आड़ू के फूलों को अधिक महत्त्व दिया गया है। हमारे देश में ऐसा ही एक उद्यान कानपुर में कमला रिट्रीट के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर ऐसे उद्यान पर्वतीय स्थानों पर अच्छी प्रकार से बनाए जा सकते हैं; क्योंकि इनके लिए पहाड़ी भूमि व जलवायु ही उपयुक्त है। अब ऐसे उद्यानों की झलक दिल्ली, मैसूर, उटकमंड और हैदराबाद में भी देखने को मिल जाती है।

उद्यान कला का महत्त्व
(IMPORTANCE OF HORTICULTURE)

पहले भारत कृषि प्रधान देश होते हुए भी उद्यान-कला में इतनी रुचि नहीं दिखा पाया था जितनी कि अपेक्षित है। किन्तु आजकल फलों एवं पुष्पों की बढ़ती हुई मांग और संतुलित एवं पौष्टिक आहारों के प्रति सजगता होने से इस कला का महत्त्व दिनों दिन बढता जा रहा है। इतना ही नहीं इस कला को समुचित विधियों से छात्रों व जनता को अवगत कराना तात्कालिक आवश्यकता समझा जाने लगा है। इस प्रकार उद्यान-कला रुचि के साथ-साथ आर्थिक एवं संतुलित आहार के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती जा रही है—

1. स्वास्थ्य के लिए (For Health) आज के युग में संतुलित आहार ही मानव जीवन की आधार-शिला है। आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार संतुलित आहार वह है जिसमें फल व सब्जियों का उचित व आवश्यकतानुसार मात्रा में समावेश है। ये स्वास्थ्यवर्द्धक पौष्टिकता के गुणों से युक्त होती हैं।

अधिकांशतः फलों में शर्करा व अन्य कार्बोहाइड्रेट्स होते हैं। इनके अलावा फलों में कई प्रकार के जीवन तत्त्व और खनिज लवण आदि मिलते हैं। ये हमारी अस्थियों व दांतों के निर्माण के लिए बहुत आवश्यक होते हैं। जैतून, एवोकेडो और गुठलीदार फलों में चर्बी की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं प्रोटीन, कैलेशियम, लोहा, फॉस्फोरस, अल्पमात्रा में गंधक, पोटेशियम, आयोडीन और मैगनिशियम की प्राप्ति भी फलों व सब्जियों से होती है। उदाहरणतः विटामिन 'सी' की प्राप्ति आंवला, अमरूद, नीबू, बेर, अनन्नास, आम, पपीता, सेब, शरीफा आदि से होती है। विटामिन 'सी' की सबसे अधिक मात्रा बार्बडोस चेरी में मिलती है। आम, पपीता, और संतरे में कैरोटिन व अन्य रंग द्रव्य मिलते हैं जिनसे विटामिन 'ए' बनता है। विटामिन 'सी' या सिट्रिन आदि की प्राप्ति नीबू जाति के फलों से और काले करेंट से होती है। इसके सेवन करने से हेमोफ्रोलिया नामक रुधिर-रोग नहीं होता है। आलू, गाजर, चुकन्दर, मूली, शलजम और प्याज आदि में कार्बोज अधिक मात्रा में होती है और वसा व प्रोटीन थोड़ी मात्रा में। इनमें पोटाश नामक खनिज लवण भी बहुत ज्यादा होता है। गोभी, टमाटर, भिण्डी, बैंगन, पालक, लौकी, सेम, ककड़ी, बन्द गोभी या पात गोभी, और कद्दू आदि सब्जियों से कार्बोज, उत्तम प्रोटीन, फॉस्फोरस, आयोडीन, गंधक, चूना, सोडियम आदि की प्राप्ति होती है। इनमें जीवन तत्त्व (विटामिन) 'ए', 'बी', 'सी' भी प्रचुर मात्रा में रहते हैं। ये मल शोधक व रेचक होते हैं। ये रक्त को शुद्ध रखते हैं और चर्म रोगों से हमारी देह की रक्षा करते हैं। इस प्रकार से भारतीय स्वास्थ्य विशेषज्ञों के अनुसार हमें स्वस्थ रहने और शारीरिक अवयवों को विकसित करने एवं उन्हें संचालित रखने के लिए नित्य पाँच सौ ग्राम शाक-सब्जी और फलों का मिश्रित रूप में सेवन करना चाहिए। इनसे बहुत से रोगों का निदान भी किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर हरी पत्तियों वाली सब्जियाँ या शाक (Leafy Vegetables) के सेवन करने से रतौंधी नामक आँख की बीमारी को दूर किया जा सकता है।

2. आर्थिक आय में वृद्धि हेतु (For Increase in Income) आर्थिक दृष्टि से भी फलोत्पादन का महत्त्व बहुत अधिक है। संतुलित आहार का मुख्य अंग होने के कारण इनकी माग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। दूसरे कुछ वर्षों से आम, केला और कई प्रकार के सूखे फलों का निर्यात काफी मात्रा में होने लग गया है। इससे काफी विदेशी मुद्रा की प्राप्ति हो रही है। ज्ञात आँकड़ों के अनुसार फलों की उपज से आय अन्य फसलों की उपज की आय से कई गुना अधिक है। उदाहरणतः यदि गेहूँ व चावल की उपज से अनुमानतः 250 रुपये प्रति एकड़ वार्षिक आय होती है तो उसी स्थान पर केले या पपीते का उद्यान लगाने से अनुमानतः 1000 रुपये और 2000 रुपये की वार्षिक आय हो सकती है। इसी प्रकार

अंजीर और अनार के उत्पादन के लिए एक एकड़ के उद्यान में अनुमानतः 285 रुपये का वार्षिक व्यय होता है और आय इनसे कहीं बहुत अधिक होती है। अंगूर के उत्पादन से अनुमानतः 28-30 हजार रुपये प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ होता है। इसी प्रकार सब्जियों के उत्पादन से इतनी ही भूमि में दस पन्द्रह हजार रुपयों की वार्षिक आय हो सकती है विशेषतः नगरों के समीप सब्जियों के उत्पादन से इस आय में भी बढ़ोतरी हो जाती है।

फलों के बीजों, अलंकृत पौधों के बल्ब, आर्किड और फर्न आदि का भी खूब निर्यात किया जाता है। इससे अनुमानतः चार लाख रुपये की वार्षिक आय होती है। इनके अलावा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के सर्वेक्षण के अनुसार भारत के प्रमुख नगरों की 3000 हेक्टेयर भूमि पर उगाये गए 10500 टन विभिन्न प्रकार के पुष्प अनुमानतः 9·26 करोड़ रुपयों के बेचे जाते हैं। इस विवरण से यह भली भांति विदित हो गया है। कि उद्यान-कला के द्वारा फलों, फूलों एवं सार्वजनिक उत्पादन मे वृद्धि करके देश की आर्थिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को काफी सीमा तक सुलझाया जा सकता है।

3. फल संरक्षण (Fruit Preservation) आज शिक्षित वर्ग मे फल एवं सब्जियों के सेवन का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। कुछ फल व सब्जियां मौसम के अनुसार कुछ समय के लिए सस्ती व अधिक मात्रा में उपलब्ध होती हैं और बाद में इनके अभाव से मूल्य इतना बढ़ जाता है कि ये सामान्य वर्ग के मनुष्य की पहुँच से बाहर हो जाती हैं। ऐसी दशा मे इनका उपयोग कुछ ही लोग कर पाते हैं। इस दुविधा से बचने के लिए यदि इनका उसी मौसम मे संरक्षण कर लिया जाए तो ठीक रहे। दूसरे व्यावसायिक दृष्टि से भी विशेष लाभ पहुँच सकता है। हमारे देश में फल संरक्षण एक विशेष उद्योग के रूप में पनप रहा है। इस समय यहाँ पर अनुमानतः 750 उद्योग शालाओं में फल संरक्षण का कार्य चल रहा है। इनसे निर्मित पदार्थों के निर्यात से 1966-67 के वर्ष में 365·20 लाख रुपयों की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

4. अधिक आहार की प्राप्ति (To get more food) जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि गेहूँ, चावल आदि की उपज की अपेक्षा फल-सब्जियों की उपज प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष अधिक होती है। इससे अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक आहार प्राप्त होता है। इसके सेवन से जहाँ आहार की समस्या का हल होता है वहाँ हमारी देह नीरोग व स्वस्थ रहती है। फलों एवं सब्जियों मे विशेषकर आलू चुकन्दर तथा टैपिओका से अनाजों के मुकाबले प्रति एकड़ कई गुना अधिक कैलारी (उर्जा) मिलती है। दक्षिण भारत के अधिकांश भागों में अनाजों की जगह टैपियोका का ही सार्वजनिक आहार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

उद्यान कला का उद्देश्य (AIMS OF HORTICULTURE)

उद्यान कला के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(1) संतुलित आहार की वृद्धि (Increase of Balance Diet) हमारे समाज के बहुमुखी विकास हेतु उद्यान कला द्वारा फलोत्पादन को बढ़ाया जा सकता है। इससे हमारे आहार मे पोषक तत्वों की किंचित मात्र भी कमी नहीं रह सकेगी। आपको यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य होगा कि बम्बई जैसे औद्योगिक नगर में प्रति व्यक्ति फल तथा सब्जियों का उपभोग केवल 1/2 औंस है जबकि इग्लैंड मे 4.5 औंस और न्यूयार्क मे 14 औंस हैं। ग्रामीण लोगो को तो इससे भी कम मिल पाता है जबकि नगरों के साथ-साथ ग्रामीणों को भी फल एवं सब्जियो का अधिक उपभोग करने के लिए उत्प्रेरित करना होगा। राष्ट्रीय पोषण संस्थान हैदराबाद के अनुसार एक भारतीय वयस्क को तालिका मे दी गई मात्रा के अनुसार ही संतुलित आहार ग्रहण करना चाहिए।

राष्ट्रीय पोषण संस्थान, हैदराबाद-संतुलित आहार तालिका

क्र० सं०	संतुलित आहार की वस्तुएँ	एक भारतीय के लिए प्रस्तावित दैनिक संतुलित आहार	एक भारतीय के लिए वास्तविक दैनिक संतुलित आहार
1.	अन्न	376 ग्राम	540 ग्राम
2.	दालें	64 ग्राम	12 ग्राम
3.	पत्तियों वाली सब्जियाँ	116 ग्राम	7 ग्राम
4.	जड़ों वाली सब्जियाँ	69 ग्राम	7 ग्राम
5.	अन्य सब्जियाँ	61 ग्राम	85 ग्राम
6.	फल	40 ग्राम	5 ग्राम
7.	दूध	189 ग्राम	80 ग्राम
8.	वसा एव चिकनाई	39 ग्राम	15 ग्राम
9.	माँस	23 ग्राम	5 ग्राम
10.	अण्डा	15 ग्राम	—
11.	चीनी एवं गुड	42 ग्राम	13 ग्राम
	योग	1034 ग्राम	769 ग्राम

इस तालिका से स्पष्ट है कि हम दैनिक बहुत ही कम फलों एवं सब्जियों का प्रयोग करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि इनका उत्पादन हमारे देश में पर्याप्त मात्रा मे नही हो पा रहा है। अतः उद्यान-कला का सर्व प्रमुख उद्देश्य है वैज्ञानिक ढंग से फलों एवं सब्जियों की खेती करके उत्पादन मे वृद्धि करना। साथ ही साथ पुष्प-वाटिकाओं के सर्वांगीण विकास का भी उत्तरदायित्व उद्यान-कला के ही माथ है।

(2) रोजगार प्रदान करना (To give employment) आज जब कि देश में बेकारी की समस्या विकराल रूप धारण किए हुए है, उद्यान कला को रोजगार का एक वृहद् स्रोत माना जा सकता है। यद्यपि स्नातको या अन्य जिज्ञासु लोगों व सरकार की तरफ से इस कला मे प्रशिक्षण देने का उचित प्रबन्ध है। इस प्रकार के प्रशिक्षित लोग अपने फार्मों पर उद्यान सम्बन्धी फसलों को उगा सकते हैं। इस तरह से वे बेकारी से बच सकते हैं। नगर में रहने वाले लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा होने के साथ-साथ उनमें अलंकृत पौधों के प्रति रुचि दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस रुचि से इनकी मांग भी बढ रही है। इसकी पूर्ति के लिए छोटी-बड़ी नर्सरियां खुलती जा रही हैं। हजारों व्यक्ति इन नर्सरियो से अलंकृत पौधे लेकर घर-घर जाकर बेचते हैं तथा इस आय से उनके परिवार का भरण-पोषण होता है।

इसके अलावा विभिन्न प्रकार के फूलो से विभिन्न प्रकार के सैंट व इत्र आदि तैयार किए जाते हैं। स्त्रियों का शृंगार का समान तैयार किया जाता है। कक्षों की सजावट के लिए गुलदस्ते तैयार किए जाते हैं। यह सभी काम बड़े पैमाने पर कारखानों मे किए जाते हैं जिनमें हजारों लोगों को रोजगार मिलता है।

(3) आमोद-प्रमोद का साधन (Source of Entertainment) दैनिक कार्यों से निवृत्ति के बाद हर व्यक्ति अपने समय के कुछ क्षण आमोद-प्रमोद में बिताना, अपनी थकान को मिटाना चाहता है। इसके लिए बड़े-बड़े सार्वजनिक पार्कों के अलावा घरेलू वाटिका का बहुत ही उत्तम साधन है। इसमे अलंकृत पौधों को लगाने या उन्हे निहारते रहने से भी मनोरंजन होता है।

(4) समय का सदुपयोग (Good use of leisure) घरेलू वाटिका मे खाली समय का सदुपयोग सरलता से हो जाता है। हर मौसम मे उसके अनुसार सब्जियो व पुष्प लगाना और उनकी कीटाणुओं से देखभाल करना तथा समय पर सिंचाई आदि आवश्यकताओं का पूरा करने मे ही समय का सदुपयोग हो जाता है। इसके साथ ही पैसे की बचत भी हो जाती है और ताजी सब्जियां खाने को मिल जाती हैं। फूल पूजा पाठ व कक्षों की सजावट के लिए मिल जाते हैं। इनके लिए बाजार नही भागना पड़ता है।

(5) ईंधन व इमारती लकड़ी की प्राप्ति (Availability of fuel and

Wood) उद्यान कला के द्वारा ईंधन व इमारती लकड़ी सुगमता से मिल जाती है। वनोत्सव इसी कला की एक परम्परा है। इमारती लकड़ी जहाँ हमारी सामाजिक आवश्यकताओं की पूरक है वहाँ रक्षा सम्बन्धी सामग्री में भी उसका विशेष रूप से उपयोग किया जाता है। इसके अलावा इससे निर्मित दैनिक आवश्यकताओं का सामान, साज-सज्जा का सामान, विभिन्न प्रकार के खेल खिलौने आदि से देश के आर्थिक व औद्योगिक विकास को बल मिला है।

सारांश

1. आज के युग में उद्यान कला केवल एक कला ही नहीं है अपितु व्यक्ति और उसके परिवार के लिए एक प्रशिक्षण भी है और आय का साधन भी। इससे परिवार में सहयोग की भावना बढ़ती है।
2. भारतीय उद्यानों का जन्म देवालयों और मठों से हुआ है। वात्सायन के अनुसार चार प्रकार के उद्यान होते थे। 1. प्रमादोद्यान 2. क्रीड़ा उद्यान 3. वृष वाटिका 4. नंदन वन। आज के युग में जापानी उद्यान सबसे सुन्दर हैं।
3. उद्यान कला का महत्त्व—1. स्वास्थ्य के लिए 2. आर्थिक आय में वृद्धि हेतु 3. फल संरक्षण 4. अधिक आहार की प्राप्ति।
4. उद्यान कला का उद्देश्य—1. संतुलित आहार की वृद्धि 2. रोजगार प्रदान करना 3 आमोद-प्रमोद का साधन 4. समय का उपयोग 5. ईंधन व इमारती लकड़ी की प्राप्ति।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1 भारतीय उद्यानों की उत्पत्ति एवं विकास की कहानी अपने शब्दों में लिखिए।

प्रश्न 2. उद्यान कला का हमारे जीवन में क्या महत्त्व है? विस्तार से उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 3. उद्यान कला के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. अपने घर में एक छोटी-सी वाटिका का आयोजन करो। उसमें कौन कौन से फल-फूल पौधों का आयोजन करोगे? उनकी विस्तार से तालिका तैयार करो।

उद्यान के लिए स्थान का चयन (SITE SELECTION FOR A GARDEN)

2

प्रस्तावना (INTRODUCTION)

उद्यान के लिए स्थान का चुनाव करते समय वहाँ की मिट्टी का परीक्षण भली भांति कर लेना चाहिए; क्योंकि फल्य शस्यों के उत्पादन में इसका विशेष महत्त्व है। साधारणतः दोमट अथवा बलुई दोमट मिट्टियाँ जिनमें जलोत्सारण (Drainage) अथवा भूमि-वातन (Soil aeration) समुचित रूप से हो, इसके लिए ठीक रहती हैं। भूमि काफ़ी गहरी और चट्टानों की परतों से रहित होनी चाहिए। ऐसा होने पर ही वृक्षों की जड़ों का विकास भलीभांति हो सकेगा। इसके अलावा अधिक क्षारीय या अधिक अम्लीय या अधिक पानी ठहराव वाली या जिसमें जलोत्सारण की समुचित व्यवस्था न हो सकती हो, ऐसी भूमि का चयन उद्यान के लिए कभी भी नहीं करना चाहिए। इस सदर्भ में आगे विस्तार से उल्लेख किया जा रहा है।

उद्यान की स्थिति (LOCATION OF GARDEN)

हमारे देश में फल्य शस्यों की यांत्रिक कृषि के अभाव में इसका सारा कार्य श्रमिकों द्वारा ही किया जाता है।

इसकी स्थिति ऐसी होनी चाहिए जहाँ पर कार्य करने वाले सस्ते श्रमिक मिल सकें। उद्यान की स्थिति का चयन करते समय ध्यान में रखने वाली सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किस प्रकार के उद्यान का निर्माण करना है। यदि फलों एवं सब्जियों की वाटिका या उद्यान लगाना हो तो उसकी स्थिति ऐसी जगह होनी चाहिये जहाँ पर उनके बेचने का साधन उपलब्ध हो। सड़कों के आस-पास ही इस प्रकार के उद्यान लगाने चाहिए जिससे उत्पादन को सुविधापूर्वक बाजारों या मंडियों में लाया जा सके। इस प्रकार इन उद्यानों या बगीचों से अधिक से अधिक आमदनी प्राप्त की जा सकती है। इन्हें वनों के पास अथवा आबादी से दूर नहीं लगाना चाहिए; क्योंकि ऐसे उद्यानों में पशुओं और पक्षियों से फसल को काफी हानि पहुँचती है। फलों के चोरी जाने का भी भय बना रहता है। इससे फलोत्पादन कार्य मंहगा हो जाता है। यदि अलंकृत बागवानी लगानी हो तो अपने घर के आस-पास ही लगानी चाहिये; क्योंकि घर के काम-काज से छुटकारा पाने के बाद उसमें बैठकर अपना मनोरंजन किया जा सकता है या अपने अवकाश का पूर्ण सदुपयोग उसकी देख-रेख में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वे उद्यान घर की शोभा में भी चार चाँद लगा देते हैं। अतः इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए उद्यान की स्थिति का चुनाव करना चाहिये।

उद्यान की मिट्टी (SOIL OF A GARDEN)

जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि फल्य-शस्यों के उत्पादन के लिए दोमट अथवा बलुई दोमट मिट्टियाँ ही ठीक रहती हैं। जहाँ पर वृक्षों का रोपण करना होता है वहाँ का तल एक समान होना चाहिए; क्योंकि ऊँचे-नीचे तल पर कर्षण कार्य में बहुत कठिनाई पडती है। भूमि के नीचे चट्टानों की तह नहीं रहने देनी चाहिए; क्योंकि ये वृक्ष की जड़ों को गहराई तक पनपने नहीं देती हैं। परिणामतः वृक्ष की वृद्धि रुक जाती है। इस प्रकार की भूमि में वार्षिक फूलों के पौधे तथा सब्जियाँ उगायी जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त इनमें 'लान' भी विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार की भूमि में जापानी ढंग की अलंकृत बागवानी सफलता के साथ लगाई जा सकती है। फल वाले वृक्षों के लिए मिट्टी भुरभुरी और चूने से युक्त होनी चाहिए। ऐसी मिट्टी फलों के मिठास को बढाती है। चिकनी मिट्टी को भुरभुरी करने के लिए हरी खाद का प्रयोग करना चाहिए। खारी भूमि व चिकनी मटियार भूमि को जीवांश खाद के प्रयोग से उपयोगी बनाया जा सकता है। चट्टानों वाली अथवा पर्वतीय भूमि में फल्य शस्यों के उत्पादन का प्रयास थोड़ा ही करना चाहिए; क्योंकि इसमें श्रम व पैसा अधिक लगता है और सफलता कम मिलती है। इसका कारण यह है कि गर्मियों में पर्वतों से निकलने वाली गर्म हवा के कारण वहाँ के वृक्षों पर फूल बहुत कम

फलते हैं। इस प्रकार की भूमि में सिंचाई जल्दी-जल्दी करनी पड़ती है। इससे उत्पादन-व्यय अधिक बढ़ जाता है।

जलवायु के विभिन्न कारक (FACTORS OF CLIMATE)

उद्यान कला में जलवायु का भी विशेष महत्त्व है। यह प्रकृति के आधीन है। अतः इसमें परिवर्तन लाना मानव शक्ति से बाहर की बात है। फल्य-शस्य उत्पादन में हर पौधे के लिए अलग-अलग प्रकार की जलवायु की आवश्यकता होती है। अनुकूल जलवायु में ही प्रत्येक पौधा फलता फूलता है और अच्छे फल देता है, कई प्रकार के फल-फूलों का कई प्रकार की जलवायु की अनुकूलता के कारण विभाजन करना भी एक समस्या बन जाया करती है। उदाहरणतः अंगूरों का उत्पादन उपोष्णीय व शीतोष्णीय दोनों प्रकार की जलवायु में किया जा सकता है। इसी प्रकार सतरा व अमरूद की जलवायु की आवश्यकताएँ भी काफी विस्तृत हैं। अतः फल्यशस्य उत्पादन पर प्रभाव डालने वाले जलवायु के विभिन्न कारकों का उल्लेख किया जा रहा है।

(क) तापमान (Temperature)—फलों के पौधे निश्चित तापमान में ही अच्छी प्रकार से पनप सकते हैं। अत्यधिक अथवा अतिन्यून तापमान दोनों ही स्थितियों में इनके लिए हानिकारक हैं। सेब, आडू, नाशपाती, अलूचा और खुबानी आदि फल शीत कटिबंध क्षेत्र में ही सफलतापूर्वक उगाये जा सकते हैं; क्योंकि ये वर्ष भर न्यून तापमान मिलने से ही पूर्णतया स्वस्थ रह सकते है। इसका मुख्य कारण यह है कि इनकी पत्तियां गिरानी आवश्यक होती हैं। इस समय ये विश्राम करते हैं। ऐसी स्थिति में इन फलो के वृक्ष अधिक तापमान से क्षत नही होते हैं। इसके विपरीत सदा हरित वृक्षो में आम, जामुन, आँवला, केला, नीबुप्रजाति और कटहल आदि का उल्लेख किया जाता है। इन्हे लम्बे ग्रीष्म काल की आवश्यकता रहती है। इनके लिए ३२° फार्नेहाइट से नीचे का तापमान हानिकारक है। इस तापमान में ही ये वृक्ष खूब फलते-फूलते हैं। विभिन्न प्रकार के फल-वृक्षो के लिए अलग-अलग तापमान की आवश्यकता पड़ती है। इसका प्रभाव पुष्पो के परागण (Pollination) फलों के स्वाद व उनके रंग आदि पर भी पड़ता है। अत. तापमान का अनुकूल होना अत्यन्त ही आवश्यक है।

(ख) आर्द्रता (Humidity)—वायुमंडल की आर्द्रता का आधिक्य व न्यूनता वायु की गति पर निर्भर है। हवा मे इसकी कमी से पौधो की जल की आवश्यकता बढ जाती है; क्योंकि इनके पत्तो से सदा ही वाष्पोत्सर्जन होता रहता है। साधारणतः उच्च तापमान एव अधिक आर्द्रता फल-वृक्षों तथा पौधों के लिए अधिक उपयोगी है। साथ ही इस तरह की जलवायु फफूंदी (कवक) वाली

बीमारियों के विकास के भी अनुकूल होती है। विशेषकर मिल्ड्यू तथा ऐन्थेक्नोज बीमारियाँ अधिक लगती हैं। कुछ फलों में अत्यधिक आर्द्रता उनके परिवर्धन में अवरोधक होती है। इससे फलों की बनावट, रंग और पौष्टिकता की कमी आ जाती है और उनका विपणन मूल्य (Market value) कम हो जाता है। अतः बाग लगाने के लिये फलों का चुनाव उस स्थान विशेष के तापमान तथा आर्द्रता को ध्यान में रखते हुए करना चाहिये। उदाहरणार्थ जिस स्थान पर आर्द्रता 80 प्रतिशत से अधिक रहती हो, उस स्थान पर केला तथा अनन्नास की खेती सफलतम् रूप से की जा सकती है। दूसरी तरफ अंगूर के लिये अधिक आर्द्रता बाधक होती है तथा उसका विकास शुष्क मौसम में अच्छा होता है।

(ग) वर्षा (Rain Fall)—इसका भी फल्य शस्य उत्पादन में भारी प्रभाव पड़ता है। यदि वर्षा बहुत ज्यादा हो और एक या दो मास के भीतर ही हो जाती हो तो ऐसी दशा में फल्य शस्य उत्पादन कार्य बहुत महंगा पड़ता है। जहाँ वर्षा सुवितरित रूप में होती रहती है और फल पौधों को उनकी आवश्यकतानुसार जल की प्राप्ति होती रहती है वहाँ यह कार्य सस्ता हो जाता है। जिस समय वृक्ष के ऊपर फूल लगे हों उस समय तो वर्षा बिल्कुल ही नहीं होनी चाहिए। इस समय वर्षा हो जाने से फूलों के पराग कण धुल जाते हैं। परिणाम यह होता है कि फूल आने के बावजूद भी उनमें फल नहीं लग पाते हैं।

(घ) वायु (Wind)—वायु की तीव्रता भी उद्यान के लिए हानिकारक है। इससे पुष्प और फल तो झड़ ही जाते हैं। कभी-कभी फल वृक्ष भी उखड़ जाया करते हैं। हवा से सबसे अधिक क्षति केले के पेड़ को होती है; किन्तु केले की कुछ ऐसी भी बौनी जातियाँ हैं जैसे बसरई ड्वार्फ और रोबस्टा जिनके ऊपर वायु की गति का प्रभाव बहुत कम पड़ता है। अतः जहाँ पर वायु की गति तीव्र हो, इन जातियों को ही लगाना चाहिए। ऐसे स्थानों में यदि फल का बाग लगाना हो तो उस फल विशेष की बौनी जातियों को ही लगाना चाहिए। वायु से होने वाली क्षति को कम करने या रोकने के लिए बगीचे के चारों ओर विशेषकर उत्तर-पश्चिम की दिशा में वायु-रोधी वृक्षों जैसे जंगल जलेबी, सफेदा (यूकेलिप्टस) आदि की बाड़ लगाना चाहिए।

(ङ) प्रकाश (Light)—हमारे देश में प्रकाश पर्याप्त है; किन्तु शीत कटिबंध क्षेत्र में उगाये जाने वाले फल-पौधों को पर्याप्त प्रकाश न मिलने की स्थिति में फलों का रंग गिर जाता है। इससे विपणन मूल्य घट जाता है। इस समस्या का समाधान कुछ हद तक फल पौधों की शाखाओं की काट-छाट (Pruning) क्रिया द्वारा किया जा सकता है।

अनुसंधानों से पता चला है कि रंगीन फल वाले अंगूरों में पकने के समय प्रकाश की कमी हो जाने से फलों के रंग का समुचित रूप में विकास

नही हो पाता है। इसी प्रकार से सेब के फल यदि पत्तियों के अन्दर छिपे होते हैं तो उनमें भी प्रकाश के अभाव में रंगों का विकास नही हो पाता है। अतः उनकी प्ररोहों की काट-छांट करनी आवश्यक हो जाती है। अनुसंधानों से पता चला है कि सेब में फलों के गुणों को सुधारने तथा उनके रंगों के विकास के लिए फल तथा पत्तियों का सम्बन्ध 1 : 32 का होना चाहिए।

(च) ओला व पाला (Hailstones & frost)—फलशस्य उत्पादन में यह कारक बहुत ही विनाशकारी है। यदि ओला फूलने अथवा फलने मे पड़े तो वह सभी पुष्पो व फलों को वृक्षो से गिरा देगा। इससे बहुत क्षति पहुँचती है। इससे तापमान भी गिर जाता है अतः पौधा वृक्ष पूर्ण या आंशिक रूप में मारे जाते हैं। विशेषतः आम, अंगूर और पपीता के उद्यानों को इससे भारी हानि पहुँचती है। इससे जो फल बचे रह जाते हैं, उनकी आकृति बिगड़ जाती है और विपणन मूल्य कम हो जाता है।

फलोत्पादन व जलवायु की दृष्टि से भारत निम्नलिखित पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) हिमालय पर्वतीय शीत प्रदेश—यह असम से लेकर कश्मीर घाटी तक विस्तृत है। इनकी भूमि मुख्यत. परिपलित तलछट चट्टानों (folded sedimentary rocks) और इन्ही मे उत्पन्न अवशेष मिट्टी (Residual soil) वाली होती है। इसके पूर्वीय क्षेत्र में 30 इंच और उत्तर-पश्चिमीय क्षेत्र में 25 इंच या इससे कम वर्षा होती है। इनमें से असम का कुछ क्षेत्र, कुमायूं की पहाड़ियाँ, हिमालय प्रदेश, कुल्लू, पंजाब की पहाड़ियाँ और कश्मीर की घाटियों में विभिन्न प्रकार के सेब (Apples), नाशपाती (Pears), चेरी (Cherries) आड़ू (Peaches), आलू बुखारा (Plums), खुबानी (Apricot) स्ट्रोबेरी (Strawberry) पर्सीमन (Persimon), आदि शीत कटिबंध वाले फल (Temperate Fruits) होते हैं। इन स्थानों पर इन फलों के उत्पादन का भविष्य उज्ज्वल है।

(2) उत्तरी शुष्क प्रदेश—इस क्षेत्र के अन्तर्गत पंजाब के मैदान, उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश का पश्चिमी क्षेत्र, और राजस्थान आते हैं। यहाँ की जलवायु में बड़ी विविधता है। यहाँ के क्षेत्र में 20 से 35 इंच तक वर्षा होती है। गर्मियों में सिंचाई की विशेष रूप से आवश्यकता पड़ती है। यहाँ का क्षेत्र विभिन्न प्रकार के आम (Mango), नींबू जाति के फल (Citrus Fruits), खजूर (Dates), अंजीर (Figs), अमरूद (Guava), अंगूर (Grapes), बेर (Ber), लोकाट (Loquat), लीची (Leechie), पपीता (Papaya), फालसा (Phalsa) अनार (Pomegranate). पर्सीमन (Persimon), नाशपाती (Pears), आड़ू (Peaches), तथा आलू बुखारा (plums) आदि की कुछ जातियाँ उत्पादन के लिए उपयोगी हैं।

(3) **पूर्वी आर्द्र प्रदेश**—इसके अन्तर्गत आसाम के क्षेत्र, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, पूर्वी मध्य प्रदेश, उत्तरी आंध्र प्रदेश और पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र की अधिकांश मिट्टी जलोढ़ (Alluvial) है और वर्षापात 30 से 75 इंच तक होता है। यहाँ पर आम (Mango), नीबू-प्रजाति (Citrus) अमरूद (Guava), केला (Banana), अनन्नास (Pineapple), कटहल (Jack fruit), लीची (Leechie), पपीता (Papaya), बेर (ber) आदि उगाये जाते हैं।

(4) **दक्षिणी प्रदेश**—इसके अन्तर्गत पश्चिमी आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश के दक्षिणी भाग, मद्रास-मैसूर के पूर्वी क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र की मिट्टी कपास की काली मिट्टी होती है। इसके कुछ प्रदेश मैसूर, आंध्र और मद्रास में वर्षापात 20 इंच से 50 इंच तक और महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में 75 से 150 इंच तक होता है। यहाँ पर आम (Mango), नीबू-प्रजाति (Citrus) केला (Banana), अमरूद (Guava), अंगूर (Grapes), पपीता (Papaya), अंजीर (Figs), अनन्नास (Pineapple), शरीफा (Custard apple), अनार (Pomegranate), कटहल (Jack fruit), सपोटा (Sapota), काजू (Cashewnut) आदि उगाये जाते हैं।

(5) **तटवर्ती आर्द्र प्रदेश**—इस क्षेत्र के अन्तर्गत सागरीय तट की दो पट्टियाँ आती हैं जिनमें पूर्वी व पश्चिमी घाट शामिल हैं। ये भी बहुधा जलोढ़ मिट्टी वाले क्षेत्र हैं। ये क्षेत्र बहुत ही उपजाऊ हैं। यहाँ पर वर्षापात भी अत्यधिक होता है और वर्षभर आर्द्रता की भी अधिकता रहती है। यहाँ पर आम (Mango), अनन्नास (Pineapple), ब्रेडफ्रूट (Bread fruit), काजू (Cashewnut), नीबू-प्रजाति (Citrus), मैंगोस्टीन (Mangostein), केला (Banana), सेब (Apples), नाशपाती (Pears) पपीता (Papaya) आदि उगाये जाते हैं।

सिंचाई एवं जल-निकास की सुविधा
(IRRIGATION & DRAINAGE)

वानस्पतिक वृद्धि (Vegetative growth) और फल्य शस्य पर जल विशेष प्रभाव डालता है। जिन क्षेत्रों में वर्षापात विशेष मात्रा में होता है वहाँ पर सिंचाई के लिए वर्षा पर ही अधिक निर्भर किया जाता है। जहाँ पर ऐसा सम्भव नहीं है वहाँ पर सिंचाई के अन्य साधनों का ध्यान रखना चाहिए। अतः उद्यान के लिए स्थान का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कुआ या नलकूप या तालाब या नहर इसके पास हो। इनसे गर्मियों में आसानी से सिंचाई की जा सकती है, फलोद्यान में जहाँ जल की सुविधा रहनी चाहिए वहाँ जल-निकास का भी समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। उद्यान में जल खड़ा रहने से पौधों की वृद्धि

रुक जायेगी और कई प्रकार की बीमारियों के लगने का भय उत्पन्न हो जायेगा। अतः सिंचाई के समुचित साधनों के साथ-साथ जल निकास का भी समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

विपणन और यातायात की सुविधाएँ

हमारे देश के सभी क्षेत्रों में विपणन की स्थिति भिन्न है। यह फलोद्यान की बाजार से दूरी व फलों के उत्पादन तथा उनके गुणों पर निर्भर करता है। यदि विपणन उद्यान से अधिक दूरी पर होगा तो वहाँ तक फलों आदि को पहुँचाने में व्यय अधिक करना होगा तथा यातायात में अधिक समय लगने से फलों के सूखने या सड़ने का डर बना रहेगा। अतः उद्यान के लिए स्थान का चयन करते समय यातायात की अच्छी सुविधाओं और विपणन (Marketing) की ओर विशेष ध्यान देना होगा।

अन्य सुविधाएँ

फल्य-शस्य उत्पादन में विभिन्न प्रकार की खादों का विशेष महत्व है। अतः उद्यान के लिए स्थान का चयन करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखिए कि जीवांश और रासायनिक खादों के लिए अधिक दौड़ धूप न करनी पड़े, वे आसानी से मिल सकें। इसके अलावा उद्यानों मे कार्य करने वाले मजदूरों के लिए आवास सुविधा, उनके बच्चो की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध, स्वास्थ्य की देख-रेख दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूकानों आदि का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

उद्यान योजना (PLAN OF GARDEN)

किसी भी उद्यान की प्ररचना करते समय पौधों तथा उनके लगाने के स्थान का सही ढंग से चयन करना चाहिए और उद्यान योजना को कार्यान्वित करते समय इन बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए—

1. उद्यान का मुख्य द्वार सबसे सुन्दर व आकर्षक वृक्षों तथा विभिन्न रगों वाली लताओं से मुक्त होना चाहिए ताकि प्रवेश करते ही वह अपने सौन्दर्य से मोहित कर सके।
2. उद्यान के अग्र भाग में सदाहरित वृक्षों को ही उगाना चाहिए और उसके पार्श्व भाग में मौसमी वृक्षों को स्थान दिया जा सकता है, जिनके पत्ते मौसम के अनुसार गिरते रहते हैं और नए पत्ते आते रहते है।
3. उद्यान में पुष्प पौध ऐसी होनी चाहिए जिनसे वर्ष भर आमदनी

मिलती रहे।

4. फल्य-शस्य उद्यान के उपजाऊ भाग मे होनी चाहिए। छोटे-छोटे वृक्ष आगे और बड़े वृक्ष पीछे क्रमानुसार रहने चाहिए। इससे फलों की चोरी कम हो पाती है।
5. एक मौसम में आने वाले फल उद्यान के एक ही भाग अथवा एक पंक्ति मे उनकी निर्धारित दूरी पर लगाना उचित रहता है।
6. ऐसे फल वृक्षों को जिनसे एक दूसरे का परागण और निषेचन होता है उन्हे एक दूसरे के निकट रखना चाहिए।
7. सिचाई किए जाने वाले वृक्ष एक स्थान पर और वर्षा पर आधारित वृक्षों को दूसरे हिस्से में अलग-अलग लगाना चाहिए।
8. ऐसे वृक्ष जिनकी अधिक देखरेख की आवश्यकता होती है, उन्हे घर के पास होना चाहिए।
9. उद्यान मे सड़कों का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए कि उनमे अधिक भूमि न घिरे और सारे उद्यान में आसानी के साथ पहुँचा जा सके।
10. उद्यान की मुख्य सड़क की दोनों ओर मौसमी पौध का आयोजन करना चाहिए।
11. उद्यान मे सिंचाई का समुचित प्रबन्ध रहना चाहिए। इसके लिए कभी भी प्रकृति पर निर्भर नही रहना चाहिए। छोटे-बड़े सभी प्रकार के पौधों या वृक्षों को सींचने के लिए सिंचाई नालियों का प्रबन्ध करना चाहिए। इसके इलावा रबर पाईप द्वारा भी पानी दिया जा सकता है।
12. तीव्र वायु के झोंको और जंगली जानवरो से पौधों को बचाने के लिए उद्यान के चारों ओर बाड लगानी चाहिए।
13. उद्यान की देख रेख का भार अनुभवी मालियों पर छोड़ना चाहिए।

इनके अलावा भी नगरो मे स्थान की कमी के कारण कुछ नए ढंग अपनाए जाते हैं। इनमे से एक नया ढंग है कक्षों के अन्दर पुष्प, वृक्ष और पौधे उगाना। आजकल कक्ष के अन्दर ही शीशा बंद फर्मलें भी उगाई जा रही हैं। इसके लिए अनुकूल पौधों का चुनाव करना सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है।

इसी प्रकार 'हाइड्रोफोनिक्स' विधि के द्वारा शोभनीय पौधे छत व छज्जों पर गमलों, टोकरियों अथवा लकड़ी के बक्सों मे उगाये जा सकते हैं। इस विधि मे कई रासायनिक तत्त्वों के मिश्रण घोल से पौधों को वह खुराक प्राप्त होती है जो कि वह जड़ों के द्वारा धरती से प्राप्त करते हैं।

नगरों में खिड़की उद्यानों का भी विकास किया जा रहा है। ये उद्यान नगरो

की उदासीन गलियों में नए जीवन का संचार कर देते हैं। इनके लिए फाइबर ग्लास के बॉक्स, सीमेण्ट के बॉक्स, मिट्टी के बॉक्स, प्लास्टिक के बॉक्स और लकड़ी के बॉक्स काम में लाये जाते हैं। इन बक्सों में अच्छी मिट्टी के साथ ठीक प्रकार की उर्वरक मिलायी जाती है। इनमें मौसमी पुष्प पौध या पत्तियों वाली पौधें उगायी जाती हैं।

उद्यान का अभिन्यास (LAYOUT OF THE GARDEN)

उद्यान के लिए स्थान-चयन व योजना के बाद उसका अभिन्यास करना चाहिए। इससे नित्य की क्रिया में होने वाली किसी प्रकार की असुविधा नहीं हो पाती है। अभिन्यास करते समय सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह सरल, उपयोगी और कम व्यय वाला होना चाहिए ताकि उद्यान से ज्यादा से ज्यादा लाभ उठाया जा सके।

उद्यान का अभिन्यास करते समय ध्यान रखने योग्य बातें—

(1) **उद्यान की मुख्य सड़क**—*यह राजमार्ग से मिली रहनी चाहिए।* इसकी चौड़ाई अनुमानतः चार मीटर होनी चाहिए ताकि वाहन और ट्रैक्टर आदि आसानी से उद्यान में आ जा सकें। इसकी दोनों ओर छोटी-छोटी राहें इस तरह से काटी जानी चाहिए कि उद्यान के हर हिस्से में आसानी से पहुँचा जा सके। इनकी चौड़ाई भी अनुमानतः ढाई मीटर काट लेनी चाहिए। उद्यान के क्षेत्र के अनुसार ही इनकी संख्या निश्चित की जानी चाहिए।

(2) **भवन**—व्यावसायिक दृष्टि से लगाए गए फलोद्यानों में निम्नलिखित भवनों की आवश्यकता पड़ती है। इनकी संख्या न्यून या अधिक उद्यान के क्षेत्र-फल पर निर्भर करती है।

(i) पशुओं को रखने का स्थान
(ii) फल्य शस्य यंत्र कक्ष
(iii) भण्डार कक्ष
(iv) कार्यालय कक्ष
(v) श्रमिकों व मालियों के लिए आवास स्थान
(vi) उद्यान प्रबन्धक कक्ष

उद्यान में ये भवन या कक्ष ऐसे स्थान पर बनाए जाने चाहिए जहां से सम्पूर्ण बाग पर दृष्टि फेंकी जा सके और पावस ऋतु में सीलन न हो। उद्यान प्रबन्धक कक्ष उद्यान के मध्य में होना चाहिए ताकि उद्यान की देखभाल आसानी से की जा सके। श्रमिकों व मालियों के लिए आवास स्थान उद्यान के कोनों में बनाने चाहिए ताकि फल-फूलों की निगरानी ठीक प्रकार से हो सके।

(3) **उद्यान का वृत्तिकरण**—यह इस प्रकार से करना चाहिए ताकि इससे

पशुओं, बकरियों, जंगली सुअरों और बदरों इत्यादि जानवरों से होने वाली क्षति रोकी जा सके। हमारे यहा कई तरह की उद्यान वृत्तियों का प्रचलन है, जो विभिन्न प्रकार के लाभ पहुंचाती हैं। अस्थायी वृत्तियां (Temporary fences) काटेदार शाखाओं की भी होती हैं, किन्तु इन्हें बार-बार उगाना पड़ता है। इनके लगाने मे व्यय कम होता है। इस पर भी ये वृत्तियां संतोषप्रद नही हैं। (Fencing) वृत्तिकरण मे मिट्टी की ऐसी दीवारों का प्रयोग किया जाता है जिनकी बाहर की ओर से ऊचाई अधिक होती है। इनसे दीर्घकाय पशु तो रोके जा सकते हैं; किन्तु चोरों के लिए कोई विशेष रुकावट नही होती है। इन दीवारों पर नाग फनी के पेड़ लगा दिए जाते हैं। इसमें व्यय अधिक होता है। यह छोटे-छोटे फलोद्यानों के लिए ही ठीक रहता है।

नुकीले काटेदार तारों की वृत्तियाँ काफी सफल रही हैं। उद्यान के मुख्य द्वार पर जालीदार दरवाजा लगाना चाहिए। इनसे पशु तथा कुछ सीमा तक चोर रोके जा सकते हैं। इनमे भी व्यय अधिक होता है।

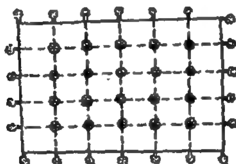
(4) **सिंचाई एवं जल निकास**—जल वानस्पतिक वृद्धि और फलोत्पादन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। अतः उद्यान की सिंचाई अच्छी संहृति (System) से समय-समय पर करते रहना चाहिए। ध्यान यह रखना चाहिए कि पौधों एवं वृक्षों की पानी की आवश्यकता भी पूरी हो जाए और जल बेकार भी नहीं जाने पाये। इसके लिए उद्यान के पास कुआ अथवा ट्यूबवैल होना आवश्यक है। सिंचाई के साथ ही उद्यान मे जल निकास का भी समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। जल निकास के लिए भी नालियों का निर्माण करवाना चाहिए।

(5) **पौध-गृह**—नए उद्यान का रोपण (Planting) भी एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके लिए बहुत से पौधों का पोषण शुरू में पौधगृह में किया जाता है। बाद मे इनको उद्यान में लगाया जाता है। पौधगृह मे पलनेवाले पौधों की देखभाल की विशेष आवश्यकता होती है। अतः ये मालियों के रहने वाले स्थानो के पास बनाने चाहिए।

(6) **फलोद्यान का क्षेत्र व फल वृक्ष लगाना**—जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि फलोद्यान के अन्दर फल का निर्धारण उनके विपणन की सुविधा तथा मांग के ऊपर आधारित है। इसके साथ ही मिट्टी का परीक्षण भी अत्यन्त आवश्यक है। इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि अधिक जल की आवश्यकता वाले वृक्षों को एक साथ ट्यूबवैल अथवा कुओं के आसपास लगाना चाहिए। इससे उत्पादन व्यय काफी कम हो जाता है। इसी प्रकार एक समय वे फल व फूल वृक्ष भी आने वाले फलों को एक स्थान पर लगाने चाहिए। इससे उनकी देखरेख की समुचित व्यवस्था की जा सकती है। उद्यान मे फल वृक्ष लगाने की प्रमुख विधियां इस प्रकार हैं—

(1) आयताकार पद्धति (Rectangular System)
(2) वर्गाकार पद्धति (Square System)
(3) षटकोण पद्धति (Hexagonal System)
(4) पंचरोपण पद्धति (Quincunx System)
(5) त्रिभुजाकार पद्धति (Triangular System)
(6) समोच्चरेखित पद्धति (Contour System)

(1) आयताकार पद्धति (Rectangular System)—फलोद्यान में इसी पद्धति का अधिक प्रचलन है। यह अभिन्यास (Layout) सबसे सरल है। इसमें फल वृक्षों का रोपण सीधी पंक्तियों में जो कि एक दूसरे के लम्बरूप होती हैं, किया जाता है। देखिए नीचे दिया गया चित्र।

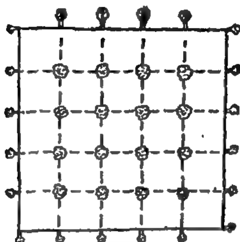


आयताकार पद्धति

(2) वर्गाकार पद्धति (Square System)—फलोद्यान में इस पद्धति का भी खूब प्रचलन है। इसके अन्तर्गत फल वृक्षों की दूरी उतनी ही रखी जाती है जितनी कि पंक्ति से पंक्ति की होती है। इस पद्धति में कृषि कार्य और सिंचाई की व्यवस्था दोनों ओर से की जा सकती है। देखिए आगे दिया गया चित्र

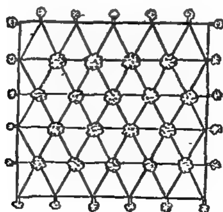
(3) षटकोण पद्धति (Hexagonal System)—इस पद्धति का दूसरा नाम समभुजीय त्रिभुज पद्धति (Equilateral Triangle) है। इसके अन्तर्गत फलोद्यान में वृक्षों का रोपण समभुजीय त्रिभुज के शीर्षों पर किया जाता है। इसमें पंक्ति व वृक्षों की दूरी वर्गाकर पद्धति जैसी ही होती है। इसमें छः वृक्षों से एक षटकोण बन जाता है और एक अतिरिक्त वृक्ष इसके मध्य में लगाया जाता है। इस प्रकार इसमें वर्गाकार पद्धति की अपेक्षा 15 प्रतिशत अधिक संख्या में वृक्षों का रोपण किया जा सकता है। इस पद्धति में पंक्तियों की आपसी दूरी काफी नहीं रहती है। वृक्षों के बीच स्थान बहुत ही थोड़ा होता है। इसमें लगाए गए वृक्षों की शाखाएँ लगभग गोलाकार रूप में फैलती हैं। इसमें कृषि कार्य तीन

दिशाओं में किए जा सकते हैं। इस पद्धति का अभिन्यास सरल होते हुए भी अधिक प्रचलित नहीं है। जहाँ पर फलोद्यान की भूमि अधिक मंहगी होती है, वहाँ पर इस पद्धति को अधिक मान्यता दी जाती है।



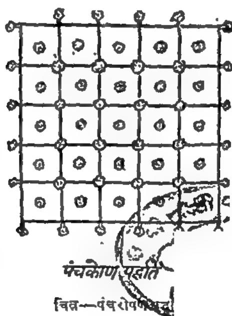
वर्गाकार पद्धति

(4) पचरोपण पद्धति (Quincunx System)—यह पद्धति वर्गाकार पद्धति से मिलती जुलती होती है। केवल अन्तर इन दोनों पद्धतियों में इतना होता



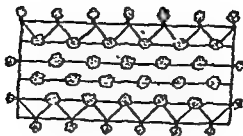
षटकोण पद्धति

है कि पंचरोपण पद्धति द्वारा लगाए गए वृक्षों की संख्या वर्गाकार पद्धति की अपेक्षा लगभग दुगुनी होती है; किन्तु मध्य व किनारों के वृक्षों की दूरी कम होती है। फलतः रोपण घना हो जाने के कारण उद्यान में कृषि कार्य के लिए स्थान की कमी रह जाती है। इस पद्धति का प्रयोग अधिकांशतः वहीं पर किया जाता है जहाँ पर वर्ग के चारों कोनों पर स्थायी वृक्ष और मध्य में अस्थायी वृक्ष लगाए जाते हैं। ये अस्थायी वृक्षों के बढ़ने पर हटा दिए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर आम के नए बगीचों में पपीता या केला इत्यादि अस्थायी वृक्षों को लगाते हैं। देखिए नीचे दिया गया चित्र।



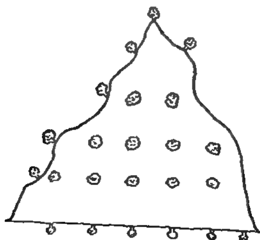
चित्र—पंचरोपण पद्धति

(5) त्रिभुजाकार पद्धति (Triangular System)—इस पद्धति के अन्तर्गत पंक्ति व फल वृक्षों की दूरी वर्गाकार पद्धति के समान ही होती है। इसमें केवल वृक्ष रोपण इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक दूसरी पंक्ति के वृक्ष पहली पंक्ति के वृक्षों के मध्य में लगाए जाते है। इस पद्धति का षटकोण पद्धति के साथ वही सम्बन्ध होता है जो कि वर्गाकार पद्धति का आयताकार पद्धति के साथ होता है। इसमें वर्गाकार पद्धति की अपेक्षा प्रति इकाई क्षेत्र फल में वृक्षों की संख्या कम होती है। कृषि कार्य में भी बाधा पड़ती है। अतः इसका प्रचलन हमारे देश में बहुत ही कम है। देखिए आगे दिया गया चित्र।



त्रिभुजाकार पद्धति

(6) समोच्चरेखित पद्धति (Contour System)—पीछे दी गई पाँचों रोपण पद्धतियाँ समतल भूमियों में ही उपयोगी हैं। ये पद्धतियाँ पर्वतीय क्षेत्रों के लिए व्यावहारिक नहीं हैं। ये क्षेत्र ढलुवा तथा उबड़-खाबड़ होते है। यदि यहाँ पर इन पद्धतियों से वृक्ष लगाए जाएं तो मिट्टी का अपक्षरण (*Erosion*) होने का डर बना रहेगा। अतः ऐसी स्थिति में समोच्चरेखित पद्धति को ही अपनाया जाता है। यहाँ पर खेत को सीढ़ीनुमा भागों में बाँटकर अनुमानतः ठीक दूरी पर पेड़ लगा दिए जाते है। इसमें कृषि कार्य जैसे जुताई, गुड़ाई आदि ढलान की विपरीत दिशा में किए जाते हैं। इस तरहसे भूमि का कटाव काफी सीमा तक रोका जा सकता है।



समोच्चरेखित पद्धति

भूमि व खाद (SOIL & MANURE)

भूमि (Soil)—उद्यान कला में भूमि का विशेष महत्त्व होता है। दोमट या रेतीली दोमट मिट्टी जिसमें जल ग्रहण करने की क्षमता के साथ-साथ जल निकास की भी अच्छी क्षमता हो, फलों के लिए उपयोगी होती है। अधिक उपजाऊ भूमि में उर्वरण की जरूरत कम पड़ती है; किन्तु मिट्टी की उर्वरता को स्थिर रखने के लिए उर्वरकों का प्रयोग करना आवश्यक होता है। जहाँ पर जल निकास की सुविधा नहीं है, वृक्ष पनप नही पाते हैं। कभी-कभी तो पानी के लग जाने से पूरा वृक्ष ही सूख जाता है। केवल आम के बीजू वृक्ष ही शेप पानी भरे खेत में कुछ दिनों तक जीवित रह पाते हैं।

जड़ों के पास पानी आ जाने से भूमि के अन्दर हवा का आना जाना रुक जाता है। ऐसी स्थिति में ऑक्सीजन गैस के अभाव में जड़ों की श्वसन क्रिया रुक जाती है। इस तरह से कई दिनों तक लगातार श्वसन-क्रिया के रुके रहने के कारण वृक्ष धीरे-धीरे करके सूख जाता है।

पौधों की वृद्धि एवं उनके विकास के लिए मिट्टी में खनिज तत्त्व जैसे—1. ऑक्सीजन, 2. कार्बन, 3. नाइट्रोजन, 4. गंधक, 5. फॉस्फोरस, 6. पोटाश, 7. कैल्शियम, 8. लोहा, 9. मैंगनीज, 10. मैग्निशियम, 11. तांबा, 12. जस्ता, 13. बोरन का होना भी आवश्यक है। इनमें से अंतिम चार लेशमात्रीय तत्त्व (Trace elements) कहलाते हैं। ये तत्त्व केवल सूक्ष्म मात्रा में ही आवश्यक होते हैं। इनके अतिरिक्त भी कितने ही तत्त्व पौधों द्वारा शोषित किए जाते हैं और उनके (Tissues) में मौजूद रहते हैं। किन्तु पौधों की वृद्धि के लिए ये इतने आवश्यक नहीं होते जितने कि उपर्युक्त तत्त्व। प्राकृतिक स्थिति में भी आस-पास उगने वाले अनेक पौधों की अनेक जातियों के खनिज अवयवों (Mineral Components) की आवश्यकता मे भी भारी भिन्नता होती है। कभी कभी इनका शोषण इतना ज्यादा हो जाता है कि वह हानिकारक सिद्ध होता है। पौधों के इस गुण का जिससे वे ऐसे भी पदार्थों का शोषण कर लेते हैं, जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं होती है। कुछ ऐसे भी तत्त्व होते हैं जिनकी पौधों की वृद्धि एवं उनके विकास के लिये आवश्यकता नही होती है; किन्तु वे उनमें बीमारियों एव कीड़ों के आक्रमण के सहन करने की क्षमता बढ़ाने के लिए आवश्यक होते हैं।

भूमि की तैयारी—भूमि का ठीक प्रकार से संधारण करने के लिए उसकी भौतिक दशा, आर्द्रता और उसमें विद्यमान पौष्टिक पदार्थों को ध्यान में रखना चाहिए। ये अधिकांशतः सस्य संवर्धन की विधि, सिंचाई और उर्वरण पर निर्भर करती हैं। हमारे देश में स्वच्छ कृषि (Clean Cultivation) ही अधिक लाभदायक रहती है। इसमें फलोद्यान मे तृणको (Weeds) को बढ़ने से रोक दिया

जाता है; क्योंकि ऐसे पौधे विद्यमान जल व नाइट्रोजन का अपहरण कर लेते हैं और ये चीजें फल वृक्षों को उनकी आवश्यकतानुसार नहीं मिल पाती हैं जबकि ऐसे पौधों के मरने के बाद इनका लिया जल व नाइट्रोजन पुनः मिट्टी में चला जाता है। ये तृण कई हानिकारक कीट पतंगों व व्याधियों को भी आश्रय देते हैं। बड़े हो जाने पर उद्यान में किये जाने वाले कृषि कार्यों में बाधा डालते हैं। कई फल वृक्षों पर चढ़कर उनकी पत्तियों पर छाया करके विशेष क्षति पहुँचाते हैं। वृक्षों के नीचे उत्कर्षण करने से मिट्टी सख्त भी नहीं हो पाती है। सख्त मिट्टी में जड़ों की वृद्धि में रुकावट हो जाती है। उत्कर्षण से बेशक सिंचाई के कार्य में बाधा उत्पन्न होती है। खाद, उर्वरक, हरित उर्वरक व दूसरे कार्बनीय पदार्थ कृषि कार्य करने से टूट जाते हैं और मिट्टी के साथ मिला दिए जाते हैं जिससे उनका महत्व मिट्टी के भीतर सुरक्षित हो जाता है। यदि तृणक बिना मिट्टी को तोड़े व हिलाये ही हटा लिए जाएँ तो वाष्पीयन के द्वारा हुई जल की क्षति बहुत ही कम हो जाती है।

फलोद्यान में कम से कम वर्ष में एक बार मिट्टी को उलटने वाले हल से जोत लेना चाहिए। पर इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि तृणकों के पौधे मिट्टी में अच्छी तरह दब जाएँ। बड़े वृक्षों वाले उद्यान में हल दोनों ओर से चलाना चाहिए। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक दिशा में हल चलाने के बाद दूसरी दिशा में हल तभी चलाना चाहिए जब कि पहले चलाए गए हल के समय के दबे हुए पौधे अच्छी तरह सड़ गल गए हों। इस दशा पर पहुँचने तक पहली बारी की जुताई के बाद दूसरी बारी का हल चलाना तब तक स्थगित ही रखना चाहिए। तृणकों को हैरो व कल्टिवेटर से नष्ट किया जा सकता है। यदि मिट्टी में उस समय उत्कर्षण किया जाए जबकि वह बहुत गीली हो तो उसकी भौतिक स्थिति बिगड़ने का डर रहता है। इसी से हल का तलुवा बनता है जो आगे चलकर जड़ों की वृद्धि में विघ्न डालता है। अधिक कृषि कार्य करने से भी विशेषतः जब मिट्टी काफी गीली हो, ऊपर के जल का नीचे के स्तरों की ओर जाना कठिन हो जाता है। यह डर हल्की मिट्टी की अपेक्षा मिट्टी भारी में अधिक रहता है। इस पर भी मिट्टी के कृषि कार्य तभी करने चाहिए जबकि वह सबसे ज्यादा शुष्क हो और साथ ही इतनी ज्यादा शुष्क भी न हो ताकि उसमें ढेलें बनने की सम्भावना हो। आवरण सस्यों के लेने से भी उद्यान में कृषि क्रियाएँ स्वयं ही हो जाती हैं, इससे फल वृक्ष हमेशा स्वस्थ रखे जा सकते हैं।

खाद—खाद के बिना उद्यान उसी प्रकार बेकार होता है, जैसे बिना बछड़े के गाय। यह कहावत अक्षरशः सत्य है; क्योंकि उद्यान वनस्पतियों का घर है और वनस्पतियाँ जीवधारी हैं। इनके जीवन वृद्धि के लिए आहार जुटाना आवश्यक है। फल पौधों के आहारीय पदार्थों की पूर्ति के लिए जिन जिन वस्तुओं

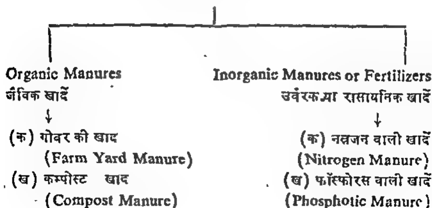
का प्रयोग मिट्टी मिश्रण में किया जाता है, वे 'खाद' कहलाते हैं अथवा वे सब पदार्थ जो कि भूमि में मिलाये जाने पर उसकी उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं।

फलोद्यान में विशेषत: गोबर की खाद (Farm Yard Manure) कम्पोस्ट खाद (Compost Manure) और पत्तों वाली खाद (Leaves Mold) का ही प्रयोग किया जाता है। कभी कभी नत्रजन (Nitrogen) की पूर्ति के लिए खली का बारीक चूर्ण अथवा उर्वरक भी डाल दिया जाता है। उद्यान में पेड़ों से गिरी पत्तियाँ, शाखाएँ अथवा फल-फूल पानी के सहयोग से सड़क अच्छी खाद का रूप ले लेते हैं। यह खाद भी वहाँ के फल पौधों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

खादों का वर्गीकरण दो रूपों में किया जा सकता है—(1) जैविक खादें (2) उर्वरक या रासायनिक खादें।

1. जैविक खादें (Organic Manures)—ये वे खादें हैं, जिनसे फल पौधों की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। इसके अन्तर्गत गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, हरी खाद, खली की खाद और विष्ठा की खाद तथा पत्तों की खाद आती हैं। इन्हें पूर्ण या प्राकृतिक या जीवांश या साधारण खाद भी कहते हैं।

(2) **उर्वरक या रासायनिक खादें** (Fertilizers or Inorganic Manures)—ये वे खादें हैं, जिनसे पौधों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं की जा सकती है। इनमें सिर्फ़ एक अथवा अधिक से अधिक तीन आवश्यक तत्व होते हैं। इनके अन्तर्गत नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम वाली खादें आती हैं। इन्हें अपूर्ण या कृत्रिम या विशेष या रासायनिक खाद भी कहते हैं।



(ग) हरी खाद (*Green Manure*) (ग) पोटैशियम वाली खादें (*Potassic Manures*)

(घ) खली की खाद (Cakes)

(ङ) विष्ठा की खाद (Poudrette Night Soil Manure)

(च) पत्तों वाली खाद (Leaf Mold)

(क) गोबर की खाद (FARM YARD MANURE)

इसमें पशुओं का गोबर, मलमूत्र, कूड़ा करकट आदि का मिश्रण होता है। यह अलंकृत अथवा फल वृक्षों को आहार देने के लिए सब से उत्तम खाद है। इसमें पौधों के आहार के सभी तत्त्व थोड़ी-थोड़ी मात्रा में विद्यमान रहते हैं। इसकी रचना सदा एक-सी नहीं रहती है। वह नित्य बदलती रहती है। यह प्रायः दो प्रकार से बनायी जाती है :—

(1) ढेर के रूप में गोबर की खाद एकत्रित करके

(2) गड्ढों में गोबर की खाद एकत्रित करके

(1) ढेर के रूप में गोबर की खाद एकत्रित करके—इस विधि के अनुसार उद्यान के किसी क्षेत्र में खुले रूप में गोबर का ढेर लगा दिया जाता है। इस पर वर्षा, गर्मी, वायु और सूर्य का प्रकाश सीधे पड़ते रहते हैं। पाँच-छह मास में गोबर सड़ कर खाद का रूप तो ले लेता है पर इस विधि से इसके आवश्यक एवं उपयोगी अंश नष्ट हो जाते हैं। इससे यह उत्तम प्रकार की खाद नहीं बन पाती है। इस विधि से खाद बनाने में कई प्रकार की हानियाँ होती हैं।

(i) सूर्य की प्रचण्ड गर्मी में गोबर की अमोनिया भाप बनकर उड़ जाती है। इससे खाद में नत्रजन की मात्रा बहुत कम हो जाती है।

(ii) पौधों के आहारीय अंश जो कि खाद में उपलब्ध होते हैं, आँधी व हवा के तीव्र झोंको से उड़ जाते है।

(iii) पौधो के आहार में घुलनशील अंश वर्षा के कारण बह जाते हैं।

(iv) आवश्यक नमी के अभाव में गोबर की खाद ढेर के रूप में भली-भांति सड़ नहीं सकती है। अतः इस रूप में अच्छी खाद नहीं मिलती है।

(v) ऐसी खाद यदि उद्यान भूमि में मिला दी जाये तो भूमि को दीमक लग जाती है जो फल्य सस्य के लिए हानिकारक है।

(2) गड्ढों में गोबर की खाद एकत्रित करके—यह विधि गोबर की खाद एकत्रित करने के लिए सर्वोत्तम है। इसके लिए उद्यान की ऊँची व समतल भूमि पर किसी वृक्ष के नीचे तीन फुट गहरा गड्ढा बनाना चाहिए। इसे चिकनी मिट्टी

से लिपवा देना चाहिए या पक्का बनवा लेना चाहिए ताकि घुलनशील अंश जल में घुलकर धरती में न जा सकें। रात्रि को पशुओं के नीचे घास-फूस, कम्बल गोबर इकट्ठा करते हैं। वरना यह कम्पोस्ट कह[illegible] रेत अथवा [illegible] अवश्य बिछानी चाहिए और सवेरे पशुओं के मल से युक्त घास-फूस अथवा जूटादि गड्ढे में फेंक देना चाहिए ताकि खाद के गड्ढे में पशुओं का मल भी इकट्ठा किया जा सके। इस प्रकार से जब गड्ढा भर जाए तो उसके ऊपर मिट्टी की परत बिछा देनी चाहिए। तत्पश्चात् चिकनी मिट्टी की लिपाई कर देनी चाहिए। गर्मियों में आवश्यकतानुसार खाद के गड्ढे पर जल छिड़कते रहना चाहिए ताकि अन्दर पड़ी खाद भली-भांति गलती सड़ती रहे। पांच-छह महीने मे गोबर की खाद तैयार हो जाती है। यह देखने में काली और नरम तथा दुर्गन्ध रहित होती है। इस प्रकार की खाद फलोद्यान के लिए उत्तम रहती है।

(ख) कम्पोस्ट खाद (COMPOST MANURE)

हमारे देश में प्रायः गोबर की खाद का ही प्रचलन है; किन्तु गोबर का ईंधन के रूप में प्रयोग होने से यह खाद के लिए पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाता है। दूसरी तरफ कृत्रिम खाद बहुमूल्य होने के कारण अधिकांश रूप में प्रयोग में नहीं की जाती है। ऐसी स्थिति में कम्पोस्ट खाद का सहारा लेना पड़ता है।

(1) **कम्पोस्ट खाद और उसके तैयार करने की पहली विधि**—फार्म व घरों का कूड़ा-कर्कट, इंसान का मलमूत्र, व्यर्थ के पदार्थ, वृक्षों के गिरे हुए पत्ते और मवेशियों का मलमूत्र एक गड्ढे में एकत्रित कर तथा उससे गलने सड़ने से बनी खाद 'कम्पोस्ट' कहलाती है। इसके लिए एक गड्ढा 30′×12′×3′ माप का खोदना चाहिए। यह पक्का अथवा चिकनी मिट्टी से लिपा हुआ होना चाहिए। तत्पश्चात् इनमें सभी उपर्युक्त पदार्थ भरकर एक समान फैला देना चाहिए। इनमें ऊपर कंकड़ डालकर फिर पुनः उन्हीं पदार्थों को डाल कर फैला देना चाहिए। यह प्रक्रिया गड्ढे के भरने तक चलती रहनी चाहिए। गड्ढे के पूर्ण हो जाने पर गमैक्सीन (Gammexane) छिड़क देनी चाहिए और ऊपर से मिट्टी की परत डालकर चिकनी मिट्टी की लिपाई कर देनी चाहिए। इस तरह कम्पोस्ट खाद पांच-छह मास मे तैयार हो जाती है।

दूसरी विधि—इसका प्रयोग उन स्थानो पर किया जाता है जहाँ पर इंसान का मलमूत्र और कूड़ा कर्कट अलग-अलग इकट्ठे किए जाते हैं। इसके लिए भी गड्ढा उसी आकार का और उसी तरह तैयार किया जाता है। इस विधि में सर्वप्रथम कंकड़ों से रहित कूड़ा कर्कट 2·5 सें० मी० की तह तक बिछा दिया जाता है। फिर इसके ऊपर 5 सें० मी० अथवा 7 सें० मी० की तह तक इंसान का मल मूत्र बिछा दिया जाता है। यह प्रक्रिया गड्ढे के पूर्ण होने तक चलती रहती है पर

इसकी अंतिम तह कूड़ा कर्कट की ही आनी चाहिए। तत्पश्चात् प्रथम विधि के अनुसार गमेक्सीन के छिड़काव के बाद चिकनी मिट्टी का लेप कर दिया जाता है। गर्मियों में इस पर भी आवश्यकतानुसार जल छिड़कते रहना चाहिए। यह खाद भी पाँच-छह मास में तैयार हो जाती है। यह खाद दुर्गन्ध रहित, कोमल और देखने में सुन्दर होती है।

(ग) हरी खाद (GREEN MANURE)

हमारे देश में अधिकांशतः गोबर की खाद का ही प्रयोग किया जाता है; किन्तु पर्याप्त मात्रा में न मिलने के कारण हरी खाद से उसकी पूर्ति की जाती है। इसे तैयार करने के लिए कई तरह की फसलों का प्रयोग किया जाता है। जब फसल में फूलों की कलियाँ बनने लगती हैं तब उसे हल द्वारा धरती में दबा कर खेत में पानी भर देना चाहिए। इस तरह वह गल सड़कर खाद का रूप धारण कर लेती है, यह खाद 'हरी खाद' कहलाती है। इसके बाद जो फसल सस्य का उत्पादन वहाँ किया जाता है, वह बहुत बढ़ जाता है।

हरी खाद के लिए उपयोगी फसलें—इसके लिए फसल का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए:—1. फसल जल्दी बढ़ने वाली हो। 2. फसल झाड़ीदार हो। 3. फसल सख्त व लकड़ीदार न हो। 4. फसल पर अधिक व्यय न हो। 5. फसल के बीज ज्यादा कीमती न हों। 6. फसल फलीदार हो। उदाहरणतः हरी खाद के लिए ज्वार, मूंग, सनई, सेन्जी, ढेंचा आदि फसलों का प्रयोग किया जाता है।

हरी खाद को तैयार करने की विधि—इसे तैयार करने की सरल व सर्वोत्तम विधि तो यह है कि हरी खाद वाली फसल को उगाकर उसी धरती में दबा दिया जाए। यह विधि कम खर्चीली है। जून के अन्त में अथवा जुलाई के शुरू में सनई अथवा ज्वार की बुवाई कर दी जाती है। ज्वार के लिए प्रति हेक्टेयर 40 से 50 किलो तक और सनई के लिए प्रति हेक्टेयर 60 से 75 किलो तक बीजों की आवश्यकता होती है। इनकी बुवाई छिटककर अथवा नाई से करते हैं। अगस्त मास के अन्त में इन पर फूल निकलने शुरू हो जाते हैं। इस समय इसमें उपयुक्त सिंचाई करके पाटा चला देना चाहिए। तत्पश्चात् भूमि पलटने वाले हल को चलाकर सारी फसल को नीचे दबा देना चाहिए ताकि सड़ गलकर खाद के रूप में प्रयोग में आ सके। दो मास के अन्दर यह अच्छी हरी खाद तैयार हो जाती है। फिर खेत में हल चलाकर उसे अगली फसल के लिए तैयार कर लेना चाहिए।

हरी खाद से लाभ—1. इसे अधिकांशतः उसी खेत में तैयार किया जाता है जहाँ पर इसका प्रयोग करना हो। इससे समय, श्रम और पैसे की बचत होती है।

2. इस खाद में पौधों के गलने-सड़ने से मिट्टी के कण बहुत ही सूक्ष्म हो जाते हैं, जिससे वायु व सूर्य ताप से यह पौधों के आहार को जल्दी से जल में घुला कर उन तक पहुँचाने में सहायक होते हैं।

3. रेतीली भूमि के कण आपस में चिपकते नहीं हैं, जिससे उस भूमि की जल रोकने की क्षमता कम हो जाती है। किन्तु हरी खाद के मिश्रण से यह काफी दूर की जा सकती है। इससे मृदा कण परस्पर चिपक जाते हैं। इसी तरह चिकनी मिट्टी के कण जो परस्पर चिपके हुए होते हैं उनमें हवा व सूर्य ताप का संचार ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। यदि इसमें भी हरी खाद का प्रयोग किया जाय तो हवा व सूर्य ताप का आवागमन होने लगता है।

(घ) खली की खाद (CAKES)

पीछे दी गई खादों के अतिरिक्त भूमि को उर्वरा बनाने हेतु खली की खाद का प्रयोग किया जाता है। भारत में खलियाँ भूमि में नत्रजन की पूर्ति के लिए खाद के रूप में प्रयोग की जाती हैं। भारत में नीम, अण्डी, अलसी, मूंगफली, बिनौला, तिल, महुआ और सरसों आदि की खलियों का प्रयोग होता है। इन सब में नीम की खली सर्वोत्तम होती है; क्योंकि इसमें दीमक लगने का डर नहीं रहता है। सरसों की खली का प्रयोग खाद के रूप में सबसे कम किया जाता है; क्योंकि यह अधिकांशतः पशुओं को खिलायी जाती है।

खलियों का प्रभाव शीघ्र ही पड़ता है। यद्यपि ये जल में घुलनशील नहीं होती हैं; किन्तु इनकी नत्रजन इन्हें खेत में डालने के लगभग 8-10 दिनों के अन्दर ही पौधों को मिल जाती है। किन्तु महुआ की खली खेत में मिलाए जाने के अनुमानतः दो माह के बाद पौधों के काम आ पाती है। इसलिए इसे बीज बोने के 2 माह पूर्व ही खेत में मिला देना चाहिए। दूसरी खलियाँ बीज बोने के 10-15 दिन पूर्व खेत में मिलाई जा सकती हैं। इन्हें खेत में डालने से पूर्व अच्छी तरह बारीक पीस लेना चाहिए और उनके गलने सड़ने के लिए भूमि में काफी नमी का होना आवश्यक है। यह खाद विशेषतः गन्ने व आलू के लिए बहुत उपयोगी रहती है। गुड़ाई करते समय इस खाद को पौधों की जड़ों के पास डाल देते हैं और उसके बाद खेत में सिंचाई कर दी जाती है।

(ङ) विष्ठा की खाद (POUDRETTE)

मानवी मल मूत्र से तैयार खाद 'विष्टा की खाद' कहलाती है। यह सर्वोत्तम खाद होती है; क्योंकि इसमें पौधों के बढ़ने हेतु नत्रजन, फॉस्फोरस और अन्य आवश्यक तत्त्व होते हैं। इसे तैयार करने के लिए पूरे नगर का मल मूत्र नालियों के द्वारा नगर के बाहर ले जाकर विशेष रूप से तैयार की गई नालियों में इकट्ठा

करते हैं। इनके पूर्ण हो जाने पर इन्हें मिट्टी की मोटी तह से ढक दिया जाता है जिससे सूर्य ताप, तीव्र वर्षा आदि से उसे हानि न पहुँचे। दूसरे ढके रहने से यह अच्छी तरह सड़ भी जाती है। इस प्रकार 2 महीने में अच्छी विष्टा की खाद तैयार हो जाती है।

(च) पत्तों वाली खाद (LEAF MOLD)

इसके लिए फलोद्यान में ही छायादार स्थान में ऊँचाई पर आवश्यकतानुसार छोटा बड़ा गड्ढा खोद लेना चाहिए। इसकी गहराई 4-5 फीट से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। फिर इसकी तली की दीवारों पर चिकनी मिट्टी की लिपाई कर देनी चाहिए ताकि खाद के द्रव अंश पानी के साथ भूमि में न जा सकें। तत्पश्चात् इसमें उद्यान के पत्ते, कटाई छंटाई की हुई शाखाएँ, घास, साग-सब्जी के पत्ते और मवेशियों का मल आदि भरते रहना चाहिए। यह कार्य पतझड़ के मौसम में करना चाहिए; क्योंकि इस समय पत्ते आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इनको एकत्रित कर जल के छींटे देते रहना चाहिए और मास में एक दो बार उलटते-पलटते रहना चाहिए। इसके गड्ढे की भराई इस प्रकार होनी चाहिए कि उसका मध्य का भाग ऊपर उठा रहे और चारों ओर का भाग ढालू रहे जिस से वर्षा का जल बह कर आसानी से बाहर निकल सके। गड्ढे के पूर्ण हो जाने पर जल को अच्छी तरह छिड़क कर मिट्टी की तह से ढक देना चाहिए। कुछ महीने बाद ये सभी सड़ गलकर अच्छी खाद का रूप ले लेंगे। यदि इसमें खली का बारीक चूर्ण व अस्थि चूर्ण डाल दिया जाए तो खाद और भी उपयोगी हो सकती है। इसके तैयार हो जाने पर अर्ध सड़े हुए पदार्थों को अलग करके एक ओर रख देना चाहिए और पुनः खाद के लिए गड्ढे को भरते समय इसे उसमें डाल देना चाहिए। दूसरी ओर सड़ी हुई खाद का ढेर लगा देना चाहिए। फलोद्यान में आवश्यकतानुसार इस खाद का प्रयोग करना चाहिए।

उर्वरक या रासायनिक खादें (INORGANIC MANURES)

इन्हें कृत्रिम खादें (Artificial Manures) के नाम से भी पुकारा जाता है। ये विशेष खादें भी कहलाती हैं; क्योंकि इनके द्वारा पौधों को विशेष तत्त्व प्राप्त होते हैं। इनका प्रभाव पौधों पर यथाशीघ्र होता है। इसी कारण इनका प्रचलन बहुत बढ़ रहा है।

उर्वरकों के मुख्यतया तीन प्रकार होते हैं :—

(1) नत्रजन देने वाली खादें
(2) फॉस्फोरस देने वाली खादें
(3) पोटेशियम देने वाली खादें

1. नत्रजन देने वाली खादें
(NITROGENOUS FERTILIZERS)

इस प्रकार के उर्वरक पौधों को नत्रजन प्रदान करते हैं जो कि पौधों के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

नत्रजन देने वाले उर्वरकों का प्रभाव—1. वानस्पतिक वृद्धि बहुत तीव्र होती है।

1. यदि पौधों के पत्ते पीले पड़ने लग जाएं और छोटे-छोटे रह जाएँ तो नत्रजन के देने से पत्ते हरे होकर बड़े हो जाते हैं।

2. इसमें पौधों को हरा रखने की क्षमता होती है।

3. यदि यह भूमि में पर्याप्त मात्रा से अधिक हो तो फसल देर से पकती है।

4. यदि नत्रजन की मात्रा ज्यादा हो तो अन्न की फसलों में दानों की अपेक्षा भूसा अधिक बनता है; क्योंकि उनसे वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है।

नत्रजन देने वाली प्रमुख खादें इस प्रकार हैं—

(1) अमोनियम सल्फेट (Ammonium Sulphate)—आजकल इसका प्रचलन अधिक है। शुद्ध अमोनियम सल्फेट में 21.2% और वाणिज्य अमोनियम सल्फेट में 20.6% नत्रजन की मात्रा होनी है। इसका अधिकांशतः प्रयोग उनके लिए किया जाता है जिनकी जड़ें ऊपर की ओर होती हैं। क्षारीय भूमि में इसका ही सर्वदा प्रयोग करना चाहिए; क्योंकि इसमें पाया जाने वाला सल्फर क्षारीय भूमि में पाए जाने वाले क्षार-लवणों के प्रभाव को कम कर देता है। दूसरी तरफ सल्फर पानी से मिलकर गन्धक का अम्ल (Sulphuric Acid $=H_2So_4$) बनाता है जो अन्त में लवणों के प्रभाव को कम कर देता है। अम्लीय भूमि में इस उर्वरक का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(2) सोडियम नाइट्रेट (Sodium Nitrate)—यह नत्रजन देने वाले प्रचलित उर्वरकों में से शीघ्र घुलने वाला उर्वरक मुख्य है। इसमें नत्रजन की मात्रा 15.6% होती है। इसका प्रयोग आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए; क्योंकि इसका प्रभाव तत्काल ही हो जाता है।

(3) अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट (Ammonium Sulphate Nitrate)—यह सफ़ेद रंग की दानेदार खाद होती है। 26% नत्रजन होता है जिसमें से 19.5% अमोनिकल स्थिति में और 6.5% नाइट्रेट की स्थिति में मिलता है।

(4) अमोनियम नाइट्रेट (Ammonium Nitrate)—इसमें 34.5% नत्रजन होती है, जिसमें से आधी अमोनिकल स्थिति में और आधी नाइट्रेट स्थिति में मिलती है।

(5) कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट (*Calcium Ammonium Nitrate*) यह 'किसान खाद' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें अनुमानतः 20% नत्रजन होती है।

(6) यूरिया (Urea)—यह खाद सफ़ेद रंग की बारीक दानेदार होती है। इसमें 45-46% नत्रजन होती है। यह घुलनशील होती है और वायु मंडल से भी जल सोख लेती है। इसे रखना बहुत कठिन होता है। पौधे इसकी नत्रजन का शीघ्र प्रयोग नहीं कर सकते हैं। अतः इसका जल के साथ बह जाना बहुत ही आसान है। इसे कभी भी खुला नहीं रखना चाहिए।

2. फॉस्फोरस देने वाले उर्वरक (PHOSPHATIC FERTILIZERS)

इस प्रकार के उर्वरक भूमि को फॉस्फोरस देती है। इसका पौधों के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका योगदान भूमि की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने में सराहनीय है। पौधे फॉस्फोरस के होते हुए नत्रजन का प्रयोग भी भली भाँति कर सकते हैं। फलीदार फसलों के लिए इस खाद का विशेष महत्त्व है।

फॉस्फोरस देने वाले उर्वरकों का प्रभाव—(i) इन उर्वरकों के देने से फसलों के दाने का अनुपात भूसे से बढ़ जाता है।

(ii) इनके प्रयोग से फूलों-फली की उपज में वृद्धि होती है और उनके गुणों में सुधार होता है।

(iii) पौधे में बीमारियों का सामना करने की क्षमता बढ़ती है।

(iv) फसलें शीघ्र पकती हैं और फलों में मिठास बढ़ाता है।

(v) फॉस्फोरस जल वाली फसलों के लिए भी बहुत उपयोगी होता है।

फॉस्फोरस देने वाले उर्वरक (क) अस्थियाँ (Bones)—इनमें नत्रजन अनुमानतः 3.75% और फॉस्फोरस ऑक्साइड 20.5% होता है। इनकी खाद भूमि की फॉस्फोरस की कमी को पूरा करने के लिए बहुत उपयोगी है; किन्तु भारतीय कृषक धार्मिक प्रवृत्ति के कारण इसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यहाँ से लाखों मन अस्थियों का निर्यात किया जाता है। हमारी सरकार को चाहिए कि इनका निर्यात बंद करके अपने देश मे ही इनकी खाद के प्रयोग को बढ़ावा दे। इनका प्रयोग चूर्ण रूप में ही करना चाहिए। इसे बुवाई से पहले खेत की तैयारी के समय छिटक कर डालना चाहिए।

(ख) सुपर फॉस्फेट (Super Phosphate)—हमारे देश में फॉस्फोरस की खादों में से 'सुपर फॉस्फेट' सबसे अधिक प्रचलित है। यह भूरे व मटमैले रंग की होती है। इसमें 13.5-16% फॉस्फोरस होता है। यह पानी में घुल जाती है। इसका प्रयोग सब्जियों व फलीदार फसलों में आवश्यक होता है।

3. पोटाश देने वाले उर्वरक (POTASSIC FERTILIZERS)

हमारे देश में होने वाली फसलों में पोटाश की बहुत आवश्यकता रहती है।

पोटाश देने वाले उर्वरकों का प्रभाव—(i) यह फसलों की किस्म को बहुत अच्छा बनाती है।

(ii) यह फसलों को कीड़ों और रोगों का सामना करने की क्षमता प्रदान करती है।

(iii) यह फलों व सब्जियों के गुणों को उत्तम बनाती है।

(iv) यह पौधे में शक्कर व मांड के निर्माण में सहायक होती है।

(v) यह पौधे के तने को मजबूत बनाती है और उसे गिरने से बचाती है।

पोटाश देने वाले उर्वरक (क) म्यूरेट ऑफ पोटाश (Muriate of Potash or Potassium chloride) इसमें अनुमानतः 50-60% पोटाश होता है। यह तम्बाकू को छोड़ कर शेष सब तरह की कृषि के लिए उपयोगी है।

(ख) पोटेशियम सल्फेट (Potassium Sulphate)—इसमें 48-50% पोटाश होती है। यह खाद तम्बाकू, आलू, फलों और सब्जियों के लिए ज्यादा उपयोगी हैं।

जैविक और रासायनिक खाद में अन्तर

क्रमांक जैविक खादें (Organic Manures)	रासायनिक खादें (Inorganic Manures)
1. इनमे पौधो के पूर्ण आहारीय तत्व विद्यमान रहते हैं।	1. इनमें पौधों के एक या अधिक से अधिक तीन तत्व विद्यमान रहते हैं।
2. इन खादों के भूमि में मिश्रण से भूमि की बलधारण क्षमता में बढ़ोतरी हो जाती है।	2. इनका भूमि की जल धारण शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
3. इनके प्रयोग से मिट्टी में जल विकास भलीभांति होने लगता है।	3. अधिक रासायनिक खाद देने से जल निकास बिगड़ जाता है। निरन्तर सोडियम नाइट्रेट के प्रयोग से चिकनी मिट्टी में बालोप्टन (Defloculation)

	हो जाता है और जल निकास बिगड़ जाता है।
4. इनके प्रयोग से फसलों की जल मांग घट जाती है।	4. इनके प्रयोग से फसलों की जल मांग बढ़ जाती है।
5. इनके प्रयोग से पौधों को आहार धीरे-धीरे मिल पाता है और खेत में इनका प्रभाव कई वर्ष तक रहता है।	5. ये खादें अपना प्रभाव तत्काल दिखलाती हैं। इनका प्रभाव कमजोर फसलों पर वैसा ही दृष्टि-गत होता है जैसा रोगी व्यक्ति को इंजेक्शन देने पर लाभ होता है।
6. इन खादों के प्रयोग से भूमि की भौतिक व रासायनिक स्थिति अच्छी हो जाती है। जैसे बलुही मृदा में इनके प्रयोग से भूमि की जल धारण शक्ति अच्छी हो जाती है और चिकनी मृदा में इनके प्रयोग से भूमि में जलनिकास की स्थिति सुधर जाती है।	6. इनके प्रयोग से भूमि की भौतिक व रासायनिक स्थिति नहीं सुधरती है। अपितु इनके लगातार प्रयोग से भूमि की स्थिति खराब होने लग जाती है।
7. इनके प्रयोग से पौधों को सभी आवश्यक तत्व मिल जाते हैं जिससे इनकी संतुलित वृद्धि होती है।	7. इनके प्रयोग से पौधों की संतुलित वृद्धि नहीं होती है; क्योंकि इनमें सभी तत्व विद्यमान नहीं होते हैं।
8. भूमि में इनके प्रयोग से उसका वायु संचार अच्छा हो जाता है।	8. भूमि के वायु संचार पर इन खादों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
9. इन खादों की मृदा ताप पर उत्तम प्रभाव पड़ता है।	9. इन खादों का मृदा ताप पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है।
10. इन खादों का प्रयोग फसल की बुवाई से $1\frac{1}{2}$—2 मास पूर्व किया जाता है।	10. इनका प्रयोग बुवाई करते समय या उससे 2-4 दिन पूर्व या फसल के उगने के बाद पहली सिंचाई के बाद, पूर्व या साथ में किया जाता है।
11. इन्हें सीधा खेत में अधिक मात्रा में डाला जाता है। इन्हें पानी में घोलकर नहीं डाला जा सकता है।	11. इनकी मात्रा जैविक खादों की अपेक्षा बहुत कम होती है। इन्हें पानी में घोलकर खड़ी फसल में भी दिया जा सकता है।

12. इसके प्रयोग से भूमि में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ जाती है जिससे भूमि के कटाव में कमी हो जाती है।

12. इसका भूमि के कटाव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

विभिन्न प्रकार की खादों में नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम की प्रतिशत मात्रा

क्रम संख्या	खाद	नत्रजन (प्रतिशत)	फॉस्फोरस (प्रतिशत)	पोटेशियम (प्रतिशत)
1.	भागों की खाद	5·5	1·4	1·3
2.	अण्डी की खली	4·3	1·8	1·1
3.	कपास की खली	3 9	1·8	3;6
4.	मूँगफली की खली	7·3	1·5	1·3
5.	अमोनियम सल्फेट	20 6	—	—
6.	अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट	26 00	—	—
7·	अमोनियम नाइट्रेट	23.00	—	—
8.	म्यूरेट ऑफ पोटाश	—	—	50·00—60 00
9·	सुपर फॉस्फेट	—	45 00—50 00	—
10.	सल्फेट ऑफ पोटाश	—	—	48 00—52·00
11.	यूरिया	46·00	—	—
12.	कम्पोस्ट खाद (नगर की)	100—200	1·00	1·5
13.	कम्पोस्ट खाद (गाँव की)	·4—·8	·3—1·00	·7—1·8
14.	गोबर की खाद	·5—1·5	·4—·8	1·9—1·00
15.	हरी खाद	·5—·7	·6—·8	·6—1·00
16.	अस्थियों की खाद	3·00—4·00	20 00—25·00	—
17.	मछली की खाद	4·00—10 00	3·9—9 00	·3—1·5
18.	शोरा की खाद	0·3	0 5	2·1
19.	सूखा खून	10 00	1·5	1·0
20.	खुर और सींग की खाद	15·16	—	—
21.	तालाब की मिट्टी	8	3	—

भिन्न-भिन्न फसलों के लिए खाद की मात्रा

क्र० सं०	फसलें	खाद की मात्रा किलो प्रति हेक्टेयर नत्रजन	फॉस्फोरस	पोटेशियम	समय और डालने की विधि
1.	आलू	125	65	125	फॉस्फोरस और पोटेशियम के समय 1/2 नत्रजन पौधा उगने के 10 दिन बाद व शेष मिट्टी चढ़ाते हुए।
2.	मटर	50	65	—	बुआई के समय नाई से
3.	मूली व शलगम	65	30	—	बुआई के समय नाई से
4.	गाजर	65	30	75	बुवाई के समय नाई से
5.	भिण्डी	65	—	—	आधी नत्रजन बुवाई के समय और शेष बाद में

सारांश

1. उद्यान कला संवेदनशील कलाओं में से एक है। इस कला का प्रेमी सौंदर्य-पारखी, वस्तु शिल्पी, उपयुक्त पौधों को चयन करने की क्षमता रखने वाला और वनस्पति ज्ञान का ज्ञाता होना चाहिए।
2. उद्यान के लिए स्थान वरण करते समय वहाँ की मिट्टी का परीक्षण भली भांति कर लेना चाहिए। इसके लिए दोमट या बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जलोत्सारण ठीक प्रकार से हो सके, निरंतर भूमिवातन होता रहे और उर्वरकों को ग्रहण करती रहे, ठीक रहती है।
3. उद्यान की स्थिति ऐसी होनी चाहिए जहाँ पर कार्य करने वाले सस्ते श्रमिक मिल सकें, फलों की चोरी का डर न हो और फलोत्पादन कार्य महँगा न पड़े।
4. उद्यान कला में जलवायु का विशेष महत्त्व है। उसके विभिन्न कारक इस प्रकार हैं—1. तापमान 2. आर्द्रता 3. वर्षा 4. वायु 5. प्रकाश 6. ओला व पाला।
5. फलोत्पादन व जलवायु की दृष्टि से भारत विभाजन—1. हिमालय

पर्वतीय शीत प्रदेश 2. उत्तरी शुष्क प्रदेश 3. पूर्वी आर्द्र प्रदेश 4. दक्षिणी प्रदेश 5. तटवर्ती आर्द्र प्रदेश ।

6. उद्यान मे सिचाई व जल निकास की विशेष सुविधा रहनी चाहिए। विपणन और यातायात की सुविधाएँ रहनी चाहिए।
7. किसी भी उद्यान की प्ररचना करते समय यह अवश्य सोचना चाहिए कि पौधों का सही ढंग से चयन किया जा सके।
8. उद्यान का अभिन्यास करते समय—उद्यान की मुख्य सड़क, भवन, उद्यान का प्रतिकरण, सिचाई एवं जल निकास, पौध गृह, फलोद्यान का क्षेत्र व फल वृक्ष लगाना आदि का ध्यान रखना चाहिए।
9. फल लगाने की प्रमुख विधियाँ इस प्रकार हैं— 1. आयताकार पद्धति 2. वर्गाकार पद्धति 3. षटकोण पद्धति 4. पचरोपण पद्धति 5. त्रिभुजाकार पद्धति 6. समोच्यरेखित पद्धति ।
10. पौधों की वृद्धि के लिए मिट्टी के आवश्यक तत्त्व—1. ऑक्सीजन 2. कार्बन 3. नाइट्रोजन 4. गधक 5. फॉस्फोरस 6. पोटाश 7. कैलेशियम 8. लोहा 9. मैंगनीज 10. मैग्निशियम 11. ताँबा 12. जस्ता 13. बोरन
11. फलोद्यान मे भूमि को जोतने के लिए लोहे का हल प्रयोग करना चाहिए।
12. खादों का वर्गीकरण 1. जैविक खादें 2. उर्वरक या रासायनिक खादें। जैविक खादो में—(क) गोबर की खाद (ख) कम्पोस्ट खाद (ग) हरी खाद (घ) खली की खाद (ङ) विष्ठा की खाद (च) पत्तों वाली खाद उर्वरक या रासायनिक खादों में—(क) नत्रजन देने वाली खादें (ख) फॉस्फोरस देने वाले उर्वरक (ग) पोटाश देने वाले उर्वरक ।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1. उद्यान लगाते समय आप कैसी भूमि का चयन करेंगे? उसकी स्थिति चयन में किन-किन बातों का ध्यान रखेंगे? उसका विस्तार से उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 2. फलोत्पादन व जलवायु की दृष्टि से भारत को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है? सविस्तार लिखिए।

प्रश्न 3. अपने विद्यालय की उद्यान योजना बनाते समय किन-किन बातों का ध्यान रखोगे?

प्रश्न 4. फलवृक्ष लगाने की प्रमुख विधियों का सविस्तार उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 5. पौधो की वृद्धि के लिए मिट्टी के आवश्यक तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 6. उद्यान कला में खाद का महत्त्व है? खादें कितने प्रकार की हैं?

हैं ? उनके विषय में संक्षेप में लिखिए।

प्रश्न 7. गोबर की खाद तैयार करने की विधियों का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 8. निम्नलिखित खादों को तैयार करने की विधियाँ लिखिए—
(क) कम्पोस्ट खाद (ख) हरी खाद (ग) पत्तों वाली खाद
(घ) विष्ठा की खाद।

प्रश्न 9. नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम वाले तीन-तीन उर्वरकों के नाम लिखिए।

प्रश्न 10. जैविक और रासायनिक खादों में अंतर स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 11. आलू, मटर, गाजर, मूली, शलगम और भिण्डी के लिए नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटेशियम की मात्रा प्रति हेक्टेयर किलो में बताओ।

प्रश्न 12. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—
(क) उद्यान के लिए…………अच्छी रहती है।
(ख)……जड़ों के रहने से……वृक्षों की……रुक जाती है।
(ग) फलोद्यान में…………का अधिक प्रचलन है।
(घ) जैविक खादें…………भी कहलाती हैं।
(ङ)……की खाद में पौधों के आहार के सभी…… विद्यमान रहते हैं।
(च) फल्य शस्य के उत्पादन के लिए…………का प्रयोग किया जाता है।
(छ) खलियों का प्रयोग…………की पूर्ति के लिए होता है।
(ज) उर्वरक…………प्रकार के होते हैं।
(झ)………… में 46% नत्रजन होती है।
(ञ) सुपर फॉस्फेट में…………फॉस्फोरस होता है।

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. अपने विद्यालय के लिए उद्यान की प्रयोजना तैयार करके उसमें आम, अमरूद, अनार, पपीता और केले के वृक्षों को लगाओ।

प्रश्न 2. अपने विद्यालय के उद्यान के एक भाग में गोबर की खाद तैयार कीजिए।

प्रश्न 3. कम्पोस्ट खाद बनाने के लिए गड्ढे तैयार कीजिए।

प्रश्न 4. पौधों की वृद्धि के लिए मिट्टी के आवश्यक तत्त्व एकत्रित कीजिए।

प्रश्न 5. गृह वाटिका में आलू, मूली और शलगम बोने की तैयारी कीजिए।

3 सिंचाई एवं जल निकास (IRRIGATION & DRAINAGE)

प्रस्तावना (INTRODUCTION)

जल का वर्धी वृद्धि (Vegetative growth) और फलोत्पादन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। फल्य सस्य पौधे भूमि से आहार घोल के रूप में ग्रहण करते हैं। इसलिए यह पौधों का अंश ही है। प्राकृतिक रूप में जल साधारणतः वर्षा, बाढ़ और भूमि की सतह के नीचे के जल-स्रोत से प्राप्त होता है। किन्तु इन साधनों पर पूर्णतया निर्भर नहीं रहा जा सकता और पौधों की वृद्धि हेतु माली को अन्य साधनों द्वारा समय-समय पर जल देना पड़ता है। इस प्रकार पौधों को कृत्रिम साधनों से आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में जल देने की क्रिया ही 'सिंचाई' कहलाती है।

हमारे देश में भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में सिंचाई के विभिन्न साधन अपनाए जाते हैं। इसका मुख्य कारण है कि सम्पूर्ण देश की यहाँ पर कूपों से 30%, नहरों से 42%, तालाबों से 15% और अन्य साधनों से 13% भूमि की सिंचाई की जाती है। सिंचाई की व्यवस्था कुल कृषि भूमि में 19% क्षेत्र में है।

फल्य सस्य की सिंचाई (IRRIGATION OF HORTICULTURAL CROPS)

फल्य सस्य कृषि में जल देने की मात्रा पौधों की जाति व प्रकृति तथा मौसम

पर निर्भर करती है। इसका ज्ञान अनुभव से होता है। जाड़ों के दिनों में प्रातः और गर्मियों में संध्या को ही पौधों को सींचना चाहिए। मध्याह्न के समय सिंचाई इसलिए ठीक नहीं रहती है कि सूर्य के प्रचण्ड ताप से सुकुमार पौधे झुलस जाते हैं। उद्यान वाटिका में जल का समुचित प्रबंध रहना चाहिए ताकि फल-पुष्प पौधों को समय पर उनकी आवश्यकतानुसार जल मिल सके। उद्यान-वेत्ताओं के मतानुसार नित्य दस गैलन जल सौ वर्ग फुट पुष्प क्यारियों को मिलना चाहिए; क्योंकि नव अंकुरित पौधे जड़ जमने तक काफी जल ग्रहण करते है। इनकी जड़ें नमी की ओर बढ़ती हैं। अतः सिंचाई इस विधि से की जाए कि पौधों की जड़ें भूमि में काफी गहराई तक चली जाएँ। इनकी गहराई जितनी अधिक होगी उतना ही पौधा शीत व ग्रीष्म के प्रतिकूल वातावरण से कम प्रभावित होगा।

गृह वाटिका में जो गमले फूल पौधों के रखे रहते हैं या छोटी-छोटी क्यारियों में साग-सब्जियाँ उगाई जाती हैं। उनमें मोटी धार से पानी नहीं देना चाहिए। इससे जड़ों की मिट्टी हट जाने की सम्भावना हो जाती है और पौधे गिर जाते हैं या जल की अधिकता से मर जाते हैं। अतः इनमें फव्वारे से ही जल देना चाहिए। ऐसी स्थिति में जब कि किसी पौधे को गमले से या किसी नर्सरी से लेकर स्थायी स्थान पर लगाया जाए, प्रथम बार काफी जल देना चाहिए। इससे उनकी जड़ों की मिट्टी भली भाँति जम जायेगी। तत्पश्चात् नित्य आवश्यकतानुसार जल से सिंचाई करते रहना चाहिए।

पौधों की सिंचाई के लिए मीठा जल नहर अथवा कूप से लेना चाहिए और खारे जल का कदापि प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त लोहांश मिला जल भी पौधों की सिंचाई के लिए प्रयोग में नहीं लेना चाहिए। यह पौधों को बहुत क्षति पहुँचाता है। जल की समुचित व्यवस्था के लिए उद्यान वाटिका में कूप या ट्यूब वैल का प्रबन्ध अवश्य रहना चाहिए।

सिंचाई की विधियाँ (SYSTEMS OF IRRIGATION)

हमारे देश में सिंचाई की अनेक विधियाँ प्रचलित है; किन्तु फलोद्यान में सिंचाई हेतु कुछ ही विधियाँ प्रयोग में ली जाती हैं। ये विधियाँ उद्यान की स्थिति, जल की मात्रा और फल वृक्षों की प्रकृति पर निर्भर करती है। वास्तव में सिंचाई करने की अच्छी विधि वह होती है जिससे पौधों व वृक्षों की सिंचाई करने में जल की मात्रा की कम से कम क्षति हो। यह क्षति अक्सर तल पर के अपधावन (Surface run off), गहराई तक अविधावन (Leaching), तल पर उद्वाष्पन (Evaporation) और जल का तृणकों (Weeds) के द्वारा उपयोग किए जाने से होती है। इस क्षति को सिंचाई विधि के द्वारा कम किया

जा सकता है। सिंचाई विधियों को निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किय जा सकता है।

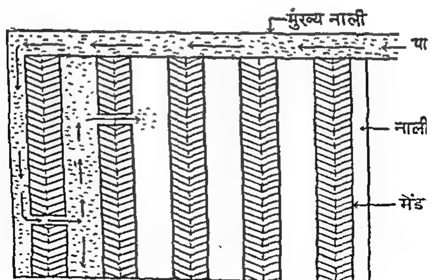
सिंचाई की विधियाँ

1	2	3
धरातल की सिंचाई	धरातल के नीचे की सिंचाई	धरातल के ऊपर की सिंचा

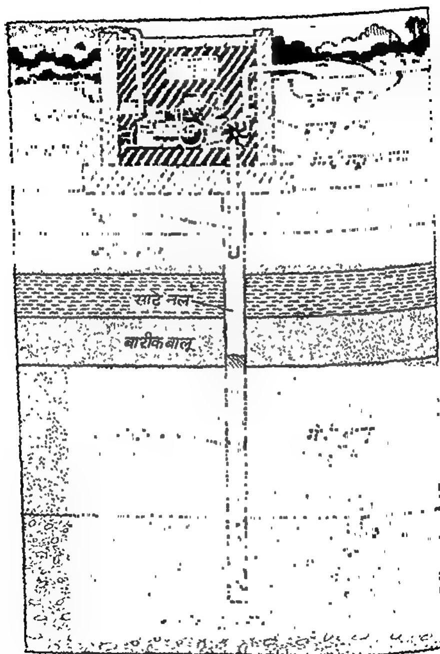
धरातल की सिंचाई (SURFACE IRRIGATION)

सिंचाई के जल को भूमि की ऊपरी सतह पर फैलाने की विधि 'धरातल व सिंचाई' कहलाती है। हमारे देश के अधिकांश उद्यानों में इसी विधि से सिंचा की जाती है। इसके लिए निम्नलिखित पद्धतियाँ अपनायी जाती हैं।

(क) प्रवाह द्वारा सिंचाई की विधि (Flooding) यह विधि नलकूपों नहरों के क्षेत्रों में प्रयोग में ली जा सकती है। इसमें समतल खेत के चारों ओ की मेड़ें मजबूत बनाकर जल को सिंचाई नाली द्वारा उसमें खोल दिया जाता और जल स्वतंत्र रूप से सब जगह फैल जाता है। इस विधि से सिंचाई करने पौधे केवल 20 प्रतिशत जल ही ग्रहण कर पाते हैं और शेष 80% जल उड़ जा है। इसमें जल काफी मात्रा में व्यर्थ जाता है। यह विधि फलोद्यानों के लिए ठीक नहीं है।



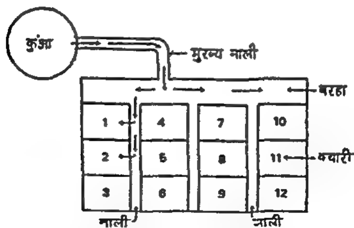
चित्र—क्यारी बनाकर सिंचाई करना



चित्र—नल कूप

(ख) क्यारी बनाकर सिंचाई करना (Bed System of Irrigation) फलोद्यान में या गृह वाटिका में यह सिंचाई विधि अधिक प्रचलित है। इस विधि से सिंचाई करने के लिए फलोद्यान छोटी-छोटी क्यारियों में विभाजित कर लिया जाता है और एक-एक करके सभी क्यारियों में लगाया जाता है। गृह वाटिकाओं अथवा उद्यानों में सब्जियाँ और फल-फूल बोने के पश्चात् मेड़ें बना दी जाती है। इनसे क्यारियाँ, बरहे और सिंचाई की नालियाँ तैयार की जाती हैं। फिर सिंचाई करते समय बरहा में जल छोड़ा जाता है। यह जल नालियों में से होता हुआ क्यारियों में पहुँच जाता है। इसमें जल का बहाव बहुत कम रखा जाता है ताकि बहाव से मिट्टी के कटने का डर न रहे। इस सिंचाई से जल नियन्त्रित रूपमें लगता है इससे जल की क्षति भी नहीं हो पाती है और पौधे भी समान रूप से बढ़ते हैं तथा सिंचाई व्यय भी कम होता है।

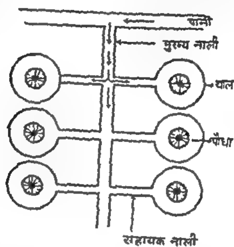
(ग) कूंड बनाकर सिंचाई करना (Furrow Irrigation) इसका प्रयोग कूँडों में बोई गई सब्जियों आलू, शकरकंद, चुकन्दर, शलगम आदि में किया जाता है। इस विधि के द्वारा सिंचाई करते हुए बरहे और क्यारियों को बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसमें जल की एक मुख्य नाली होती है जो उद्यान में जल पहुँचाती है। जल एक कूंड से दूसरे कूंड में होता हुआ पूरी क्यारी में लग जाता है। इस विधि से जल की कम मात्रा लगती है। देखिए चित्र—



चित्र—कूंड बनाकर सिंचाई करना

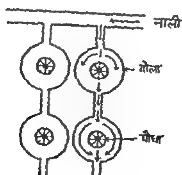
(घ) थालों द्वारा सिंचाई करना (Basin Method of Irrigation) इस विधि का प्रयोग अधिकांशतः फल वाले वृक्षों मे किया जाता है। इसमें वृक्षों के चारों ओर थाले (Basin) बनाकर उनमें जल भर दिया जाता है। ये

वर्गाकार या आयताकार या गोलाकार बनाए जाते हैं। इनका यह आकार भूमि व वृक्ष की किस्म के अनुसार होता है। थालों के मध्य में तने के चारों ओर मिट्टी चढ़ा दी जाती है जिससे तना सीधे जल के सम्पर्क में न आने पाए। वृक्ष की उम्र के साथ ही साथ इनका आकार भी बढ़ाया जाता है। इससे जल की थोड़ी मात्रा में ही अधिक वृक्षों की सिंचाई हो जाती है और हरेक को नियंत्रित मात्रा में आवश्यकतानुसार जल मिल जाता है। देखिए नीचे दिया गया चित्र—



चित्र—थालों द्वारा सिंचाई करना

(ङ) गोल थालों द्वारा सिंचाई करना (Ring Method)—फलदार वृक्षों में इसी विधि द्वारा सिंचाई की जाती है। यह विधि थालविधि से इस बात में



चित्र—गोल थालों द्वारा सिंचाई करना

भिन्न है कि इसमे थालो का आकार केवल गोल ही रहता है। इसमे एक पंक्ति के थालों की सिचाई एक के बाद दूसरे क्रम से हो जाती है। इस विधि से भी कम जल से अधिक वृक्षों की सिंचाई हो जाती है। इस विधि से जल वृक्षों की जड़ों में लगता है। ये दोनों विधियाँ फलोद्यानों की सिंचाई के लिए ज्यादा प्रचलित हैं। देखिए पीछे दिया गया चित्र—

2. धरातल से नीचे की सिंचाई (SURFACE IRRIGATION)

इस विधि के द्वारा पौधों की सिंचाई भूमि के नीचे की सतह की ओर से की जाती है। इस प्रकार की सिंचाई का प्रयोग सुन्दर सजावट वाली गृह वाटिकाओं मे किया जाता है। इस विधि से भूमि की सतह गीली नहीं होती है। इसमें सिंचाई हेतु भूमि में नीचे छिद्रयुक्त पाईप 1 से 11 मीटर की दूरी पर बिछा दिए जाते हैं, जो एक दूसरे के समानान्तर रहते हैं। इन पाईपों के सिरे एक दूसरे से जुड़े रहते है और ये जोड़ भी छिद्रयुक्त (Porous) होते है। इनकी गहराई भूमि मे अनुमानतः 30 सें० मी० रखी जाती है। पाईपों को मिट्टी में बिछाने के बाद मिट्टी से ढक दिया जाता है। ऊपरी धरातल पर एक मुख्य नल लगा रहता है जिसका सम्बन्ध एक नाली द्वारा भूमि मे बिछे सभी नलों से रहता है। जब मुख्य नल से जल छोड़ा जाता है तो वह नाली द्वारा सभी बिछे पाईपों में पहुँच जाता है और इन पाईपों के छिद्रों द्वारा जल पूरी वाटिका में लग जाता है। यह जल पौधों की जड़ों मे पहुँचता रहता है और पौधा आसानी से बढता चला जाता है। इसका प्रचलन हमारे देश मे बहुत ही कम है या बिल्कुल नही है।

3. धरातल के ऊपर की सिंचाई (AERIAL IRRIGATION)

इस प्रकार की सिचाई विधि बहुमूल्य वृक्षों और बहुत सुन्दर वाटिकाओ मे प्रयोग मे लायी जाती है। इसके अन्तर्गत पौधों को सिंचाई का जल ऊपर से वर्षा के समान छोटी-छोटी बूंदों के रूप में दिया जाता है। इस विधि से वाटिकाओं में सतह से कुछ ऊपर पाईप लगी होती है जिसमें नोजिल (Nozzles) लगे होते है। जल अधिक दबाव पर इनमें छोड़ा जाता है तो नोजिल से जल वर्षा के समान छिड़का जाता है। इस विधि के द्वारा सिंचाई करने के लिए प्रयोग में आने वाले यंत्रों को ओवरहेड स्प्रिंकलर (Overhead Sprinkler) भी कहते है। इन्हें चार भागो में विभाजित किया जा सकता है। (i) शक्ति पैदा करने वाला यंत्र (Power generator), (ii) पम्प (Pump), (iii) पाईप लाइन (Pipe Line), और (iv) स्प्रिंकलर (Sprinkler)। इनमें पावर जनरेटर बिजली व मशीन से चलाया जाता है।

छिड़काव यंत्रों में दूसरी प्रकार के यंत्र भी प्रयोग मे आते हैं। इनमें जलफों

अधिक दबाव से बसाने की ज्यादा जरूरत नही पड़ती। जल वाटिकाओं में नलों (Pipes) द्वारा भेजा जाता है, जहाँ से इसे वितरण-नालिकाओं (Distributing pipes) में पहुँचाया जाता है इनके द्वारा छिड़काव निम्न दो तरह के यंत्रों द्वारा किया जाता है:—

(i) घूमकर छिड़काव करने वाले यंत्र (Oscillating) इनमें वितरण नलिकाओं के आगे की ओर नोजिल लगे रहते हैं, जिनके द्वारा जल का छिड़काव होता है। ये नलिकाएं चारों तरफ या अर्द्धवृत्ताकार में घूमकर छिड़काव करती हैं।

(ii) वृत्ताकार चक्कर लगाने वाले यंत्र (Circular)—इनमें नोजिल (Nozzles) एक वृत्त के रूप में चक्कर लगाकर जल की छिड़काव करते हैं।

सिंचाई की इस विधि से जलकी कम मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। घास के मैदान, वाटिका और पोध घर में इस तरह से सिंचाई आसानी से की जा सकती है। इससे पौधों की पत्तियां स्वच्छ हो जाती हैं। उनमें प्रकाश संश्लेषण (फोटोसिन्थेसिस) की क्रिया भली-भांति होती है। भूमि का कटाव नहीं होता है। अधिक खर्चीली होने के कारण हमारे देशों में इस विधि का प्रचलन बहुत ही कम है। पाश्चात्य देशों में इसका बहुत अधिक प्रचलन है।

जल निकास (DRAINAGE)

जिस प्रकार जल के बिना पौधों का जीवित रहना असम्भव है उसी प्रकार आवश्यकता से अधिक जल भी उन पर हानिकारक प्रभाव डालता है। उद्यानों खेतों में से प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक विधियों द्वारा आवश्यकता से अधिक जल निकालने की प्रक्रिया 'जल निकास' कहलाती है। यह सिंचाई की बिल्कुल विपरीत क्रिया है। फिर भी इन दोनों प्रक्रियाओं का पौधों के लिए विशेष महत्व है। जल निकास का सम्बन्ध स्वतल या गुरुत्व (Free or Gravitotional) जल से है। खेत या उद्यान या वाटिका में जब आवश्यकता से अधिक जल इकट्ठा हो जाता है तो वह रन्ध्रकूपों में भर जाता है या भूमि की सतह पर इकट्ठा हो जाता है, जिसके कारण मिट्टी से पौधों का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। इससे अधिकांश पौधे मर जाते हैं।

जल निकास की आवश्यकता—निम्नलिखित कारणों से जल निकास की आवश्यकता महसूस होती है।

1. ऊपरी धरातल पर जल की अधिकता से भूमि में वायु का आवागमन नहीं हो पाता है। इससे पौधों की जड़ें सांस नही ले पाती हैं और उनकी वृद्धि रुक जाती है। ऐसी दशा में लाभदायक कीटाणु भी अपना काम नहीं कर पाते हैं। जिससे पौधों की जड़ें सड़ने लग जाती हैं, अनेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाते

हैं और पौधा मर जाता है या उसकी उपज कम हो जाती है।

2. भूमि के धरातल पर अधिक दिनों तक जल के इकट्ठे रहने से उसका तापक्रम गिर जाता है। इससे पौधों व सूक्ष्म जीवाणुओं की वृद्धि रुक जाती है।

3. भूमि की सतह पर निरन्तर जल के रहने से उसके ऊसर होने की सम्भावना हो जाती है। जल धीरे-धीरे भाप द्वारा उड़ जाता है और इसमें घुले हुए लवण भूमि की सतह पर ही एकत्रित होते जाते हैं। धीरे-धीरे लवणों की मात्रा बढ़ती जाती है और उससे भूमि असर हो जाती है।

4. जल आधिक्य के कारण और वायु के अभाव में पौधा का जड़ें भूमि में गहरी नहीं जा पाती हैं। फलतः उन्हें पर्याप्त मात्रा में अपना आहार नहीं मिल पाता है। इस स्थिति मे उनकी जड़ें उथली रह जाती हैं। फलतः वृक्ष वायु के तीव्र झोकों से उखड़ कर गिर जाते हैं।

5. भूमि पर जल के इकट्ठे रहने से कृषि कार्य समय पर नहीं हो पाते हैं, जिससे फसल को क्षति पहुँचती है।

6. भूमि में अधिक जल के एकत्रित रहने से उसमें काफी नमी आ जाती है। इससे ऑक्सीजन की मात्रा में भी कमी आ जाती है। इस कारण ऑक्सीजन की उपस्थिति काम करने वाले कीटाणुओं (Aerobic bacteria) की कमी हो जाती है और अनुपस्थिति में काम करने वाले कीटाणुओं ((Unaerobic bacteria) की अधिकता होने लगती है। ऐसी स्थिति मे भूमि के जीवांश पदार्थ (Organic matter) भली भांति सड़ गल नहीं पाते हैं। इसके अलावा अन्य आवश्यक आहारीय तत्त्व भी अप्राप्य अवस्था में परिवर्तित होने लगते हैं।

7. अधिक नमी हो जाने से फसलों में फूल झड़ने लग जाते हैं और उपज भी घट जाती है।

8. भूमि पर जल की अधिकता होने से मृदाक्षरण की सम्भावना हो जाती है।

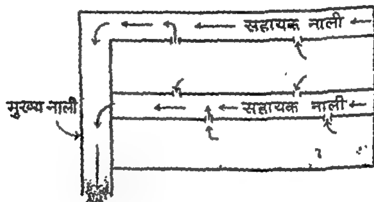
9. इसके कारण भूमि की भौतिक स्थिति (Physical Condition) भी बिगड़ जाती है।

10. इसके कारण भूमि दलदली बन जाती है जिससे पौधे भली भांति अंकुरित नहीं हो पाते हैं।

इन उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट हो जाता है कि जल निकास भी उतना ही आवश्यक है जितनी सिंचाई।

जल निकास की विधियाँ (SYSTEMS OF DRAINAGE)

1. खुली नालियों द्वारा जल-निकास (Open Drain System)—हमारे देश में इसका प्रचलन अधिक है। उद्यान में या वाटिका में आवश्यकतानुसार खुली नालियाँ ऊपरी सतह पर बना ली जाती हैं। इनकी संख्या उद्यान या वाटिका के क्षेत्रफल पर निर्भर रहती है। इनका सम्बन्ध एक मुख्य नाली के साथ रहता है। मुख्य नाली को समीपवर्ती प्राकृतिक नाले अथवा नदी के साथ जोड़ दिया जाता है। ये नालियाँ स्थायी व अस्थायी दोनों प्रकार की बनायी जा सकती है। इनके दोनों किनारे ढालू रखे जाते हैं जिससे उद्यान या वाटिका का जल स्वयं ही इनमें आता रहे। इस तरह उद्यान या वाटिका का फालतू पानी इनके द्वारा आसानी से निकल जाता है। देखिए नीचे दिया गया चित्र—



चित्र—खुली नालियों द्वारा जल निकास

2. बन्द नालियों द्वारा जल निकास (Closed Drain System)—इस तरह की नालियों का निर्माण उद्यान भूमि के भीतर एक निश्चित गहराई पर किया जाता है। इन्हें ऊपर से विभिन्न साधनों द्वारा पाट दिया जाता है। इनमें उद्यान भूमि की ऊपरी सतह से अतिरिक्त जल नीचे की ओर धीरे-धीरे रिसकर आता रहता है और अंत में दूर जाकर किसी बड़े नाले में गिर जाता है। ऐसी नालियों से उद्यान भूमि नष्ट नहीं हो पाती है। कृषि कार्यों में सुविधा रहती है। मृदाक्षरण की समस्या नहीं रहती है। इनकी मरम्मत बार-बार नहीं करानी पड़ती है। ये निम्न प्रकार की बनायी जाती हैं—

(क) पोल ड्रेन्स (Pole Drains)—इनके निर्माण में लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है। ये अधिकांशतः वन के समीप अथवा जहाँ लकड़ी अधिक सस्ती

हो बनायी जाती हैं। इनमें से कुछेक तो आयताकार होती हैं जिनका मुख नीचे को खुला रहता है और कुछ (V) की आकार की होती हैं। लकड़ी के तख्ते भूमि के भीतर एक मीटर की गहाराई पर फिट कर दिये जाते हैं। इनकी चौड़ाई अनुमानत: 30 सें. मी. और गहराई आवश्यकतानुसार रखी जाती है। इनका दोष यही है कि लकड़ी जल में पड़ी रहने से सड़ जाती है। ऐसी स्थिति में यह काम की नहीं रहती है।

(ख) पत्थर की नालियाँ (Stone Drains)—इनमें पत्थर का प्रयोग किया जाता है। ये भी (V) शेप की अथवा आयताकार पत्थर काट कर बनायी जाती हैं। ये अधिक स्थायी नहीं होती हैं; क्योंकि इनमें शीघ्र ही मिट्टी भर जाती है।

(ग) खपरैल की नालियाँ (Tile Drains)—इन नालियों में खपरैल थोड़ी-थोड़ी दूरी पर इस तरह बिछायी जाती है कि दो नालियों के बीच में थोड़ा-सा खाली स्थान बना रहे, जिसमें होकर जल नालियों में इकट्ठा होता रहे। इनमें भूमि के अनुसार ढलाव रखा जाता है। जल के बहाव की उचित व्यवस्था के लिए प्रति 30 मीटर की लम्बाई पर 5 सें. मी. की दर से ढाल दिया जाता है। इन का व्यास 7.5 से. मी. रहना चाहिए।

3. जल उठाने वाले यंत्रों द्वारा—कभी-कभी जल निकास के लिए जल उठाने वाले यंत्रों का भी प्रयोग किया जाता है। ये यंत्र पेट्रोल अथवा डीजल से चलने के कारण महंगे पड़ते हैं। इनके यंत्र भी कीमती होते है। इस कारण हमारे देश में इनके द्वारा जल निकास का कार्य बहुत कम होता है।

सारांश

1. जल फलोद्यान की प्रमुख आवश्यकताओं में से है। फलयशस्य पौधे इसे आहार के रूप में ग्रहण करते हैं। जल देने की मात्रा पौधों की जाति व प्रकृति तथा मौसम पर निर्भर करता है।
2. जाड़ों के दिनों में पौधों की सिंचाई सवेरे और गर्मियों में सध्या को करनी चाहिए।
3. पौधों की सिंचाई के लिए मीठे जल का ही प्रयोग करना चाहिए।
4. सिंचाई की विधियाँ—1. धरातल की सिंचाई 2. धरातल के नीचे की सिंचाई 3. धरातल के ऊपर की सिंचाई।
5. आवश्यकता से अधिक जल पौधों के विकास पर हानिकारक प्रभाव डालता है। अत: जल निकास उद्यान कला में बहुत ही आवश्यक है।
6. जल की अधिकता के कारण पौधों की जड़ें सांस नहीं ले पाती हैं। धरातल का तापक्रम गिर जाता है। भूमि के ऊसर होने की सम्भावना हो

जाती है। पौधों की जड़ें भूमि में गहरी नहीं जा पाती हैं। कृषि कार्य समय पर नहीं हो पाता है। नमी के कारण ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आ जाती है और फसलों के फूल झड़ने लग जाते हैं। भूमि की भौतिक स्थिति बिगड़ जाती है। भूमि दलदली बन जाने के कारण पौधे भली भांति अंकुरित नहीं हो पाते हैं।

7. जल निकास का कार्य खुली नालियों द्वारा, बंद नालियों द्वारा, पोलड्रेन्स, पत्थर की नालियों, खपरैल की नालियों और जल उठाने वाले यंत्रों द्वारा किया जा सकता है।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1. फलोत्पादन में जल का क्या महत्त्व है?

प्रश्न 2. गृहवाटिका की सिंचाई कब और किस प्रकार करनी चाहिए?

प्रश्न 3. हमारे देश मे सिंचाई की कितनी विधियां प्रचलित हैं? उनमें से सर्वोत्तम विधि का सविस्तार उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए—
(क) कूंड बनाकर सिंचाई करना (ख) थालों द्वारा सिंचाई करना
(ग) वृत्ताकार चक्कर लगाने वाले यंत्र (घ) क्यारी बनाकर सिंचाई करना।

प्रश्न 5. जल निकास की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 6. हमारे देश मे जल निकास की कितनी विधियाँ प्रचलित हैं? उनका संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 7. निम्नलिखित में अन्तर स्पष्ट कीजिए—
(क) खुली नालियो द्वारा जल निकास व बंद नालियों द्वारा जल निकास।
(ख) प्रवाह द्वारा सिंचाई की विधि व क्यारी बनाकर सिंचाई की विधि।
(ग) कूंड बनाकर सिंचाई करना व थालों द्वारा सिंचाई करना।
(घ) सिंचाई व जल निकास।

प्रश्न 8. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—
(क) ....को पौधे..........के रूप मे ग्रहण करते हैं।
(ख) सम्पूर्ण देश की भौगोलिक परिस्थितियाँ..........हैं।
(ग) जाड़े के दिनों मे सिंचाई.......... करनी चाहिए।
(घ) गर्मियों के दिनो में सिंचाई..........करनी चाहिए।
(ङ) .... के लिए..........जल नहर या कूप से लेना

चाहिए।

(च) सिंचाई विधियां·········तरह की हैं।

(छ) ·········वृक्षों में·········द्वारा सिंचाई करनी चाहिए।

(ज) ·········द्वारा जल वृक्षों की·········में लगता है।

(झ) ·········जल से·········रोगग्रस्त हो जाते हैं।

(ञ) भूमि पर·········की·········से मृदा क्षण की सम्भावना हो जाती है।

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. अपनी गृह वाटिका में फव्वारे से सिंचाई कीजिए।

प्रश्न 2. अलंकृत पौधों में होज पाईप द्वारा सिंचाई कीजिए।

प्रश्न 3. विद्यालय उद्यान में जल निकास के लिए खुली नालियाँ तैयार कीजिए।

4 | बीज और बीज चयन
(SEED AND SEED SELECTION)

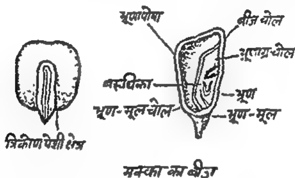
बीज और उसके प्रकार (SEED & ITS TYPES)

बीज किसी पौधे की एक अल्पविकसित सुषुप्त स्थिति होती है। बीज दो प्रकार के होते हैं—(1) एक बीज पत्रीय (2) द्विबीज पत्रीय। एक बीज पत्रीय में एक दाल होती है। इसके अन्तर्गत मक्का, गेहूं, धान और प्याज दाने आते हैं। द्विबीज पत्रीय मे दो दाल होती हैं। इसके अन्तर्गत मटर, अण्डी सेम और चना आदि के दाने आते हैं। इसके विभिन्न भागों का परीक्षण इन्हें एक अथवा दो दिन तक जल मे भिगोने के बाद सरलता से किया जा सकता है। अब यहाँ पर कुछ प्रतिरूपक बीजो का उल्लेख किया जा रहा है, जिससे उनके अंकुरण (Germination) को समझने मे आसानी हो जायेगी।

एक बीज पत्रीय (MONOCOTY LEDONOUS)

मक्का का दाना (*Maize Seed*)—यह प्रायः एक बीज पत्रीय अल्ब्युमिनोयस (Albuminous) बीज कहलाता है पर वास्तव में एक बीज का फल होता है; क्योंकि इसमें बीज आवरण (testa) फल-भित्ति (Fruit wall) के साथ सायुंजित (fused) रहता है। इस कारण यह फल बीज के समान दिखायी देता

है। इसका आकार कुछ चपटा (flattened) और अण्डाकार-सा (oblong) होता है। इसका रंग पीला होता है। इसका पर्यन्ड द्वार (Micropyle) फल के चोल से अच्छी तरह ढका रहता है जिसके कारण वह दिखायी नहीं देता है। इसकी चपटी सतह पर [illegible] (deltoid) क्षेत्र होता है जो कि [illegible] इसका एक अन्वायाम छेद (Longitudinal section) लिया जाये तो ज्ञात होगा कि अष्ठि के भाग भ्रूण व भ्रूणपोषक हैं। इसका भ्रूण बहुत सूक्ष्म होता है।



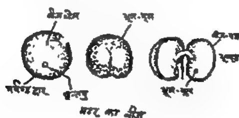
मक्का का बीज

इसकी रचना सिर्फ एक बीज पत्रीय और एक छोटी अक्ष (Axis) की होती है, जिसके विपरीत सिरे भ्रूणाग्र और भ्रूण मूल कहलाते हैं। बीज पत्र का जो भाग आंशिक रूप से अक्ष को घेरे रहता है वरुथिका कहलाता है। यह वर्म सदृश (Shield like) होता है और भ्रूणपोषक के पास सम्पर्क में होकर उससे आहार शोषण कर पाचन करता है। भ्रूणमूल की एक तरह की कंचुक (Jacket) से रक्षा होती है जो कि उसे घेरे रहती है। यह कचुक मूल रक्षक (Coleorhiza) कहलाती है। इसी तरह भ्रूणाग्र भी एक तरह के भ्रूणाग्र चोल से रक्षित होता है जोकि भ्रूणाग्र कंचुक(Coleoptile) कहलाता है। देखिए ऊपर दिया गया चित्र।

द्विबीज पत्रीय (DICOTYLEDONOUS)

मटर का बीज (Peas Seed)—यह प्राय: गोल होता है। इसका बाहरी आवरण 'बीज आवरण' (Seed Coat) कहलाता है और भीतरी आवरण अन्तर चोल (tegmen) तथा यह विशेषत: मटर के बीज में ही मौजूद होता है। मटर के बीज की एक ओर एक तरह की लम्बी-सी आकृति होती है, जो कि वृन्तग्रु (Hilum) कहलाती है। इसी जगह पर बीज अपने वृन्त से जुड़ा रहता है। वृन्तग्रु के किनारे पर एक छोटा-सा छेद होता है, जो पर्यन्ड द्वार (Micro-

pyle) कहलाता है। पर्यन्ड द्वार के द्वारा जल बीज के भीतर प्रवेश कर जाता है। उदाहरणतः मटर के भिगोये हुए बीज को दबाया जाए तो पर्यन्ड द्वार से ही जल बाहर निकलता हुआ दिखाई देगा। बीज आवरण के हटने पर जो एक पीला-सा भाग बीज में दिखाई देता है, यही भ्रूण (Embroy) है। यह शिशु पौधा होता है। अगर इस पीले भाग को दबाया जाए तो यह दो भागों में बंट जाता है। ये दोनों भाग गोदंमय (Fleshy) होते हैं। वास्तव में ये ही बीज पत्र (Cotyledous) हैं। ये पीछे की तरफ एक छोटी दण्डाकार (Rod Like) आकृति से लटके रहते हैं, जो कि अक्ष (Axis) कहलाती है। अक्ष का जो किनारा दो बीज पत्रों के बीच होता है और छोटी पत्तियों से ढका रहता है भ्रूणाग्र (Plumule) कहलाता है। यही इसके भविष्य का प्ररोह (Shoot) है। इसके विपरीत का बाहरी किनारा जो नग्न रहता है, भ्रूणमूल (Radicle) कहलाता है। यही इसके भविष्य की मूल होती है। अक्ष का जो भाग बीज पत्रों के जुड़ने के स्थान के मध्य में होता है, उपरि बीज पत्र (Epicotyle) कहलाता है। भ्रूणमूल और बीज पत्तों के मध्य का भाग अधोबीज पत्र (Hypocotyle) कहलाता है। देखिए नीचे दिया चित्र।



मटर का बीज

बीजों का अंकुरण (GERMINATION)

बीज रचना के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि हरेक बीज में एक भ्रूण (Embroy) होता है जो कि बीज के भीतर सुषुप्त स्थिति में रहता है और जब बीज को अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती हैं तो वह क्रियाशील होकर बढ़ने लगता है। भ्रूणीय पौधे की यह सुषुप्त स्थिति से जागृत होकर बढ़ने की क्रिया ही अंकुरण (Germination) कहलाती है। इस अंकुरण के लिए निम्नलिखित तीन परिस्थितियों का होना आवश्यक है—

(1) जल अथवा आर्द्रता

(2) तापमान अथवा

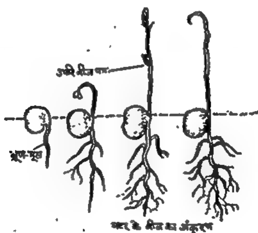
(3) वायु अथवा ऑक्सीजन

इनमें से किसी एक के अभाव में भी बीज का अंकुरण असम्भव है। यह अंकुरण दो प्रकार का होता है :—

(1) अधोभूमिक (Hypogeal)

(2) उपरिभूमिक (Epigeal)

(1) अधोभूमिक (Hypogeal)—इसमें बीज पत्र सदा बीज चोल के भीतर रहते हैं और वे कभी भी भूमि की सतह के ऊपर नहीं आते हैं। इसका कारण यह है कि उपरि बीज पत्र (Epicotyl) की लम्बाई में वृद्धि होने से वह भ्रूणाग्र को ऊपर की तरफ धकेलता है जिसके कारण बीज पत्रों की मौलिक स्थिति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता है। इस तरह का अंकुरण मटर, मक्का, चना और आम आदि में होता है। देखिए चित्र।

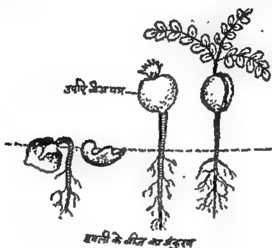


मटर के बीज का अंकुरण

(2) उपरिभूमिक (Epigeal)—इसमें बीज पत्र कभी भी बीज चोल के भीतर नहीं रहते हैं और बाहर आकर भूमि की सतह के ऊपर आ जाते हैं। इसका कारण यह है कि अधोबीजपत्र (Hypocotyl) की लम्बाई में यथाशीघ्र वृद्धि होने से बीज पत्रों को उपरि दिशा में धक्का लगता रहता है जिससे उन्हें मौलिक स्थिति बदलनी पड़ती है। इस प्रकार का अंकुरण इमली, लौकी, प्याज और रेंडी आदि में होता है।

अब आप ऊपर दिए गए चित्र में देखिए कि जब मटर के बीज में अंकुरण के लिए पीछे बतायी गई तीनों अवस्थाएं अनुकूल रहती हैं तो सबसे पहले वह बीज फूलता है और इसके बाद वह चोल पर्यन्ड द्वार पर फूटता है। सबसे पहले भ्रूण

मूल प्रकट होकर उग्रता से नीचे की ओर बढ़ता है और मिट्टी के निकट पहुंचने पर वह एक प्रधान मूल का उत्पादन करता है। इससे ही अन्य दूसरी और तीसरी मूल निकलती हैं। ये मूल अग्राभिवर्धीक्रम (Acropetal) से निकल कर मूलों की विधि (Root System) का निर्माण करते हैं। भ्रूणमूल जैसे जैसे विकसित होता जाता है वैसे वैसे उपरि बीज पत्र की वृद्धि होती जाती है। यह साधारणतः एक पाशी (Loop) के आकार में निकलता है और बाद में सीधा हो जाता है तथा भ्रूणाग्र को बीज पत्रों में से बाहर की तरफ खींच लेता है। तत्पश्चात् भ्रूणाग्र



इमली के बीज का अंकुरण

शीघ्रता के साथ बढ़ता है और स्तम्भ (Stem) और पत्तियों (Leaves) को बनाता है। इससे धीरे-धीरे प्ररोह विधि (Shoot System) की स्थापना होती है। जब तक अंकुरण की क्रिया चलती रहती है तब तक बीज पत्र बीज खोल के भीतर ही रहते हैं और मिट्टी की सतह के ऊपर नहीं आ पाते हैं। इस तरह का अंकुरण अधोबीज पत्रीय (Hypocotyl) अंकुरण कहलाता है। फिर धीरे-धीरे बीज पत्र छोटे आकार में परिवर्तित होकर और सूख कर गिर जाते हैं।

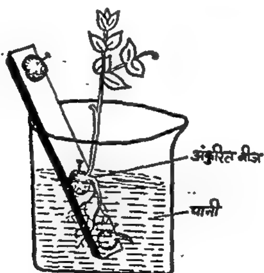
अब लीजिए ऊपर दिया गया चित्र इमली के बीज का उपरिभूमिक अंकुरण। इसमें कुछ अन्य भिन्नताएं होती हैं। जब सभी अनुकूल अवस्थाएं विद्यमान होती हैं तो इमली के बीज में भ्रूण मूल पहले उगता है और मूल विधि का निर्माण होता है। प्रारम्भिक अवस्था में एक मुख्य मूल अन्य मूलों के साथ स्पष्ट दिखायी देती है। मूल विधि के साथ साथ अधोबीज पत्र भी जल्दी जल्दी लम्बाई में बढ़ता है, एक पाशी (Loop) के रूप में निकलता है और फिर सीधा हो जाता है जिससे

बीजपत्र मिट्टी की सतह के काफी ऊपर आ जाते हैं। तत्पश्चात् बीज आवरण ढीला होकर छोटे छोटे टुकड़ों मे टूटने के बाद गिर जाता है। बीजपत्र सूर्य की किरणों से हरे हो जाते हैं और आहारीय पदार्थों का थोड़े और समय तक निर्माण करते हैं। तत्पश्चात् बीजपत्र या तो अलग हो जाते हैं अथवा कभी कभी चिपके ही रह जाते हैं। भ्रूणाग्र भी जल्दी ही लम्बा होता जाता है और प्ररोह विधि का निर्माण करता जाता है। फिर धीरे-धीरे बीजपत्र छोटा आकार लेकर अन्त में गिर जाते हैं।

अंकुरण सम्बन्धी प्रयोग (EXPERIMENT TO VERIFY THE REQUISITIES OF GERMINATION)

हर प्रकार के बीज अंकुरण के लिए आर्द्रता, तापमान और ऑक्सीजन की उचित मात्रा में आवश्यकता होती है। इसे प्रमाणित करने के लिए यहाँ पर तीन बीजों वाला प्रयोग दिया जा रहा है। इस प्रयोग के लिए मटर, चना, मक्का और सेम में से किसी के तीन जीवित सूखे बीज लीजिए।

यहाँ पर हमने तीन मटर के जीवित सूखे बीज लिए हैं। अब एक इंच चौड़ी और बारह इंच लम्बी लकड़ी की पट्टी लीजिए। फिर मटर के तीनों बीजों को



तीन बीजों वाला प्रयोग

ऊपर दिए गए चित्रानुसार लकड़ी की पट्टी में पिन की सहायता से लगा दीजिए। फिर इस पट्टी को एक बीकर में रखिये। उसमें जल इतना भर दीजिए कि पट्टी के

बीच में लगा हुआ मटर का बीज आधा ही डूबे। इसके बाद भी बीकर में समय-समय पर जल देते रहना चाहिए। कुछ दिनों के बाद हम देखेंगे कि लकड़ी की पट्टी में लगा बीच का मटर का बीज उचित विधि से अंकुरित हुआ है। इसका कारण यह है कि इसे आर्द्रता, तापमान और ऑक्सीजन तीनों ही चीजें उचित मात्रा में मिली हैं। पट्टी में सबसे नीचे के बीज को जल में डूबे रहने के कारण ऑक्सीजन नहीं मिली जिसके कारण वह ठीक तरह से अंकुरित नहीं हो सका। पट्टी में लगे ऊपरी बीज को आर्द्रता नहीं मिल सकी जिसके कारण वह अंकुरित नहीं हो सका। इससे यह स्पष्ट हो गया कि किसी भी बीज को ठीक प्रकार से अंकुरित होने के लिए उचित आर्द्रता, तापमान और ऑक्सीजन की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

बीज की अंकुरण शक्ति को प्रतिशत में ज्ञात करना (TO FIND OUT GERMINATION PERCENTAGE OF SEEDS)

किसी भी फल्य शस्य के बीज खरीदने से पूर्व उनके अंकुरण की क्षमता का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। इससे हमें यह पता लग जाता है कि कितने प्रतिशत बीज उगने वाले हैं और कितने प्रतिशत बीज व्यर्थ जायेंगे। बीजों के कीड़े, रोग, प्रतिकूल मौसम इत्यादि बीज के जमने की क्षमता घटा देते हैं।

मान लीजिए आप मटर के बीजों की अंकुरण शक्ति का ज्ञान करना चाहते हो तो उसके ढेर में से कुछ बीजों को ले लीजिए। इसके बाद निकाले हुए बीजों को मिला करके मोटे कपड़े की दो तहों के बीच अथवा दो स्याही चूसों के बीच में रख दीजिए। इन दोनों को हमने इस लिए लिया है कि इनमें जल को सोखने की क्षमता रहती है। बीजों वाले कपड़े या स्याही चूस को ऐसे स्थान पर रख देना चाहिए जहाँ पर सूर्य ताप और ऑक्सीजन आसानी से बीजों को मिलता रहे। इसके साथ ही बीजों को नित्य सवेरे और संध्या को जल से गीला करते रहना चाहिए। सप्ताहन्त तक इन बीजों में अंकुरण होने लग जाएगा। अब मान लीजिए आपने 300 मटर के बीज लिए थे। उनमें से 240 बीज अंकुरित हो सके, तो अब हम अंकुरण प्रतिशत इस प्रकार निकालेंगे।

$$\text{अंकुरण प्रतिशत} = \frac{\text{अंकुरित बीजों की संख्या}}{\text{अंकुरण के लिए कुल बीजों की संख्या}} \times 100$$

$$= \frac{240}{300} \times 100 \quad = \frac{24000}{300} \quad = \frac{240}{3}$$

$$= 80\%$$

इस प्रयोग को करते समय निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए :—

1. जब तक कुल बीजों का अंकुरण न हो जाए तब तक बीजों को उचित मात्रा में आर्द्रता मिलती रहनी चाहिए।

2. इसके अलावा बीजों को सूर्यताप व ऑक्सीजन भी उचित मात्रा में मिलता रहना चाहिए।

3. परीक्षण के लिए बीज उठाते समय किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं करना चाहिए। इसके लिए विभिन्न जगहों से बीज उठाना ठीक रहता है।

4. इस बीज परीक्षण प्रयोग की आवृत्ति होनी चाहिए।

बीज चयन (SEED SELECTION)

फलोद्यान या गृह वाटिका में अच्छे फल-फूल लेने के लिए अच्छे बीजों का चयन करना आवश्यक है। यदि बीज अच्छे नहीं निकले तो फलोद्यान या गृह-वाटिका में बरती गई सभी सावधानियों के बावजूद भी उत्पादन में अच्छा नहीं हो पाया। पैसा और श्रम दोनों ही व्यर्थ चले जायेंगे और साथ में निराशा हाथ लगेगी। अतः इनके लिए जैसे स्थान, जल और जलवायु का ध्यान रखा गया था वैसे ही अच्छे उत्पादन के लिए अच्छे बीजों का चयन करना होगा। इसके लिए निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए :—

(1) बीज सदा उन्नतिशील जाति का ही चयन करना चाहिए जो नया, नीरोग, मोटा और भारी हो।

(2) बीज देखने में सुन्दर व चमकीले होने चाहिए।

(3) पुराने बीजों का चयन नहीं करना चाहिए। इनमें अंकुरण शक्ति कम हो जाती है।

(4) कच्चे बीजों का भी चयन नहीं करना चाहिए। इनमें भी अंकुरण ठीक प्रकार से नही हो पाता है।

(5) बीजों में किसी प्रकार की मिलावट आदि नहीं रहनी चाहिए।

(6) बीज कटे फटे नही होने चाहिए।

उन्नतिशील जाति के बीजों के प्रयोग से लाभ—इनके प्रयोग से निम्नलिखित लाभ हैं :—

1. फल फूलों का उत्पादन अधिक होता है।
2. इन पर रोगाणुओं व कीटाणुओं का आक्रमण कम होता है।
3. बुवाई के समय बीजों की मात्रा भी कम डालनी पड़ती है।
4. इन पर बुवाई अगेती और पिछेती भी की जा सकती है।
5. फल फूलों का मूल्य अधिक मिलने से आर्थिक लाभ भी होता है।
6. फल फलों में विशेष आकर्षण आ जाता है।

बीजों का रखरखाव (STORAGE OF SEEDS)

आरम्भ से ही बीजो के रखरखाव का समुचित प्रबंध करना चाहिए। बाजार से बीज खरीदने की अपेक्षा अपनी वाटिका या उद्यान मे ही उन्हें तैयार करना चाहिए। इसके लिए इस बात का विशेषतौर पर ध्यान रखना चाहिए कि बीज लेने वाले पौधे पूर्णतया स्वस्थ हों और उनकी क्यारी में दूसरे प्रकार के पौधे न लगे हुए हों। इसके लिए हर जाति के पौधों को अलग-अलग ही उखाड़ना चाहिए ताकि बीजो में मिश्रण न हो सके। इसके बाद पौधों से बीज निकालने चाहिए। बीजों को सुखाकर और साफ़ करके उन्हें सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए। ऐसी स्थिति में ही इन्हें तभी घुन, फफूंदी और अन्य कीड़ों से बचाया जा सकता है। ऐसे बीजों को उद्यान में बोने से अच्छी और स्वस्थ पैदावार होती है।

वानस्पतिक या वर्धी प्रचारण (VEGETATIVE PROPAGATION)

पीछे तुम्हें बताया जा चुका है कि बीज द्वारा नए पौधों की किस प्रकार उत्पत्ति होती है और वे किस प्रकार अपनी वृद्धि कर पाते हैं। बीज द्वारा पौधों की उत्पत्ति का कार्य लैंगिक प्रचारण (Sexual Propagation) कहलाता है। अधिकांश फल-फूल वाले पौधों में यही क्रिया अपनायी जाती है। किन्तु कुछ वृक्षों मे अलैंगिक या वर्धी (Asexual or Vegetative Propagation) प्रचारण द्वारा नए-नए पौधे तैयार किए जाते हैं। इन वर्धी प्रजनित पौधों मे आपस में अगण्य व उपेक्ष्य भेद होते है। इस विधि द्वारा तैयार पौधे उनके पैतृक गुणों के अनुरूप होते हैं। इसके द्वारा पौधे थोड़े समय में अधिक सख्या मे तैयार किए जा सकते हैं। इन पर फल फूल एक साथ कम आयु मे ही आ जाते हैं। इससे आर्थिक लाभ भी पहुँचता है। यह विधि विशेष रूप से केले की सभी उत्कृष्ट जातियों, अंगूर और संतरो आदि के लिए उपयोगी है। इन वर्धी प्रचारित पौधों को तीन वर्गों मे विभाजित कर सकते हैं :—

1. विभाजन से प्रचारित (Division)—इसमें पौधे के किसी एक हिस्से को पितृपौध (Parent plant) से पृथक् कर देना पड़ता है और उसके बाद वह हिस्सा बिना किसी प्रकार की सहायता के ही दूसरे पृथक् पौधे के रूप में उगने लग जाता है। इसका अधिकांशत: प्रयोग केला व खजूर तथा बहुत से बहुवर्षजीवी शाकीय पौधों (Perennial herbaceous plants) के लिए किया जाता है।

2. मूल सम्बन्धित प्रचारण (Rootage)—इसमें पौधों को पितृपौध की मूल से प्रजनित किया जाता है। बहुत से वृक्ष इसके अन्तर्गत अपनी मूलो या जड़ों द्वारा उगाये जाते हैं।

3. उपरोपण (Graftage)—इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की कलिका बंधन ((Budding) और उपरोपण (Grafting) विधियाँ आती हैं। इसमें स्तम्भ (Stem) का वह भाग जो उपरोपिका (Scion) कहलाता है किसी अन्य मूल सहित पौधे के भाग से जोड़ा जाता है। यह मूल सहित पौधे का भाग मूल स्तम्भ (Root stock) कहलाता है। इसके द्वारा उपरोपिका वाले भाग से ही वृक्ष का फलोत्पादन कार्य होता है।

मूल स्तम्भों का प्रचारण स्तम्भ (Stem) की कलम (Cutting) और दाब-कलम (Ground Layering) विधि द्वारा किया जाता है। इसके लिए स्तम्भ को छोटे-छोटे हिस्सों में काट कर उगाये जाने वाले स्थान में लगा दिया जाता है, जहाँ उनमें से जड़ें निकलकर नया वृक्ष उगने लग जाता है। जैसे गुलाब की पौध इस क्रिया से शीघ्र ही उगती है। आलुबुखारा, अंगूर, अंजीर, नींबू आदि फल भी हमारे देश में इसी तरह पैदा किए जाते हैं। दूसरे देशों में तो सभी फलों के लिए उपरोपण प्रक्रिया को ही मान्यता दी जाती है। कलमों का अधिकांशतः प्रयोग शोभा क्षुपों (Ornamental Shrubs) में होता है।

कुछ पौधों की पत्तियाँ भी कभी-कभी कलमों के रूप में लाई जाती हैं। फिर भी स्तम्भों का ही प्रयोग अधिकांश रूप में किया जाता है। ये क्षुपों अथवा काष्ठी पौधों (Woody Plants) के होते हैं। प्रपाती वृक्षों की कलमें इन वृक्षों की सुपुप्तावस्था (Dormant stage) में लगाई जाती हैं। ठंडे प्रदेशों में ऐसी कलमें शरद् ऋतु से पूर्व ही ले ली जाती हैं और वसन्त ऋतु में इन्हें यथा-स्थान लगा दिया जाता है। सदाबहार (Evergreen) पौधों में यथा नींबू-प्रजाति के फल वृक्षों में कलमें हमेशा ही लगायी जा सकती हैं। पर विशेष सफलता वसन्त ऋतु में लगाने में मिलती है। पेंसिल के बराबर व्यास वाली शाखाएँ ही कलम लगानेकी क्रिया के लिए ठीक रहती हैं। इनकी लम्बाई 10 सें० मी० से लेकर 30 सें० मी० तक की होनी चाहिए। कलम पर पत्तियाँ भी रहनी चाहिए; क्योंकि इन में स्थित न्यासर्ग (Hormone) से कलम पर मूल निकालने में काफी मदद मिलती है। कहीं-कहीं पर इस कार्य के लिए बलुई मिट्टी का भी प्रयोग किया जाता है। पोटेशियम परमैंगनेट, मैंगनीज सल्फेट, सलफ्यूरिक एसिड और चीनी के विलयन (Sugar solution) आदि रासायनिक पदार्थों के प्रयोग से भी कलमों से मूल या जड़ें निकाली जाती हैं।

न्यासर्ग (Harmone) का प्रयोग—यह वृद्धिकारक पदार्थ है। इससे कलमों का इलाज आसानी से किया जा सकता है। इसके लिए कलम का एक भाग जलीय विलेय मे 24 घंटे के लिए भिगोया जाता है। न्यासर्ग का 0·2% विलेय ही साधारणतः काफी लाभदायक रहता है। बाद में इन्ही कलमों को बलुई मिट्टी मे लगा दिया जाता है। परिणामतः इनमें जड़ शीघ्र ही फूटने लग जायेगी। इस

विधि के अलावा भी न्यासर्ग (Harmone) सिंचाई जल के साथ दिया जा सकता है और धूसन (Dusting) के साथ भी इसे पौधों पर डाला जा सकता है। कुछेक निंबू जाति के फल लीची, चीकू, अमरूद आदि में न्यासर्ग के उपयोग से जड़ के निर्माण में विशेष सफलता मिली है।

दाब कलम (Ground Layering) — इसमें शाखा को पितृ पौधों से पृथक् करने से पूर्व मूल उसमें से निकालने दी जाती है। इसका फायदा यह होता है कि शाखा काफी समय तक लगती रहती है और उसमें मूलों की संख्या भी विशेष हो जाती है। इस तरह पितृ पौधे से उस शाखा को पृथक् करने के बाद पौधा आसानी से स्वयं को नई जगह पर स्थापित कर सकता है। इस तरह का वर्धी प्रचारण उन फ़स्य सस्यों के लिए ठीक रहता है जिनका प्रचारण कलम से नहीं हो सकता है। यदि काफी बड़ी शाखा ली जाए तो पेड़ जल्दी तैयार हो जाता है और वृक्ष यथाशीघ्र ही फल देने लगता है। इस विधि से रोपणिकों (Nurserymen) को विशेष लाभ पहुंचता है। बेरी (Berry) जैसे पौधे तो स्वाभाविक रूप से धरती को छूती शाखा में मूल निकालने लगते हैं। दाब कलम विधि में पौधे के इसी गुण को उत्प्रेरित किया जाता है। इसके लिए किसी भी शाखा को नीचे भूमि तक खींच लिया जाता है फिर उसे अच्छी तरह बंद करके आर्द्र मिट्टी से ढक दिया जाता है। इसमें आर्द्रता सर्वदा बनी रहनी चाहिए। जब तक कि मूल निकलना शुरू होता है और नए पौधो को सुगमता से पृथक् किया जा सके। मूलों के विकास को बढ़ाने के लिए छाल का लगभग 1½ सें० मी० चौड़ाई का एक वलय (Ring) निकाला जाता है। यह उस भाग से ही निकाला जाना चाहिए जो आर्द्र मिट्टी से ढका जाता है।

स्तूप भूमरना (Mound Layering) — इसका प्रचलन भारत में अधिक नहीं है। इसके अनुसार पौधे का शिर कर्तन (Heading) कर दिया जाता है ताकि वह पौधा धरती के काफी पास ही रहे। इसके बाद जब प्ररोह (Shoots) निकल जाएं तब उनके ऊपर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। इस प्रकार दबे हुए प्ररोह (Shoots) जो मूलें निकलती हैं उन्हें कुछ मास के बाद हटा कर दूसरे स्थान पर लगाया जा सकता है। यह प्रक्रिया सेब के पौधे को वर्धी प्रचारण से उत्पादित करने के लिए विशेष रूप से संतोषजनक है। आम तथा अमरूद में भी इसका प्रयोग होता है।

खात भूमरना (Trench Layering) — इस विधि का उपयोग उस समय किया जाता है कि जब कि पौधे छोटी स्थिति में हों और उनमें भूमि में झुकाई जाने वाली शाखाओं का अभाव हो? इसमें पौधे की एक ओर हल्की-सी खाई खोद ली जाती है फिर पौधा उस ओर झुकाकर खाई में खूंटे के सहारे बांध दिया जाता है। इसके साथ ही नए प्ररोहों को आर्द्र मिट्टी से दबा दिया जाता

है। यह प्रक्रिया करौंदा, नींबू, नारंगी, चकोतरा, अमरूद, कटहल, इमली और कुछ उपयोगी अन्य फलों के लिए विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली में किए गए प्रयोगों से यह पता चला है कि इस विधि का प्रयोग नाशपाती के मूल-स्तम्भों (Rootstock) जैसे कंध का भी इस विधि द्वारा प्रचारण (Propagation) किया जा सकता है। किन्तु इसमें शीर्ष-कर्तित (Headed back) स्तम्भों से निकले प्ररोहों को मिट्टी में दबाने से पहले उनके निचले भाग में 5mm चौड़ी वलय बनाने चाहिए। इसके बाद उनके ऊपर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। इस प्रकार से 80% प्ररोहों में जड़ें निकल आती हैं। यदि मिट्टी दबाने के पहले इन वलय या छल्लों के ऊपरी भाग 600 पी० पी० एम० इन्डोल बुटारिक एसिड लैनोलिन लेई (पेस्ट) के साथ लगा दें तो उनके जड़ों में और भी सुधार हो जाएगा। यह कार्य जून मे किया जाता है। अगस्त में पौधों को पितृ पौधे से अलग करके खेत में लगा दिया जाता है।

गूटी या अंटा बांधना (Air Layering)—इस विधि में चिकनी मिट्टी को बोरी अथवा टाट के टुकड़े अथवा किसी भी मजबूत मोटे कपड़े पर लपेट कर बांध दिया जाता है। फिर कोई छोटा-सा गमले का टुकड़ा तोड़ कर शाखा पर बांधने के बाद चिकनी मिट्टी से भर दिया जाता है और इसी में शाखा को दबाया जाता है। इस पर नित्य जल देना पड़ता है। यह प्रक्रिया गूटी (Gootee) भी कहलाती है। यह प्रक्रिया नीबू, चकोतरा, अनार और लीची के उत्पादन के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

कलिका बंधन (Budding)

इसमें उपरोपिका एक कलिका (Bud) होती है। इसका विशेष रूप से प्रयोग सतरे व निंबू जाति (Citrus) फलों में तथा गुलाब के प्रचारण में किया जाता है। इसमे कलिका काष्ठ को परिपक्व एवं गोलाकार होना चाहिए। इसका वार्धक्य होना अनुचित है। यदि कलिका के ऊपर पत्तियां हों तो बहुत ही अच्छा रहता है? किन्तु इनका होना आवश्यक नहीं। कलिका बंधन के समय पत्ती का फलक (Blade) इस प्रकार काटना चाहिए कि उसके पर्णवृन्त (Petiole) ही रह जाए। यह कलिका को पकड़ने के लिए एक तरह के हत्थे का काम करता है। इसके लिए तेज चाकुओं का प्रयोग करना चाहिए। कलिका बंधन में यह भी आवश्यक होता है कि वल्क (छाल) को सुगमता के साथ काष्ठ से अलग होना चाहिए। यह स्थिति उस समय होती है जब कि पौधों में ओजस्व के साथ बढ़ोतरी (Vigorous growth) होती है। हमारे देश के उत्तरी क्षेत्र में इसका सर्वोत्तम समय बसन्त ऋतु है; क्योंकि इस ऋतु मे पौधों में बढोतरी का समारम्भ हो जाता है। यह

प्रक्रिया वर्षा ऋतु मे भी की जा सकती है। कलिकाओं को सदैव पूरी तरह भरा हुआ होना चाहिए (फूला हुआ)। ऐसी कलिकाओं का किसी भी स्थिति मे भूल कर भी चयन नहीं करना चाहिए, जिनमें बढ़ोतरी का आरम्भ हो रहा हो। कलिका काष्ठ (Bud wood) को कुछ समय तक संग्रह करके हरिता के अन्दर अथवा आर्द्र लकड़ी के बुरादे में रखा जा सकता है। इनमें रखने से कलिका काष्ठ सूखने नहीं पाती है। इस रूप मे इनका निर्यात भी किया जा सकता है। कलिका बंधन निम्नलिखित विधियों से किया जा सकता है :—

(क) वर्म कलिका बंधन (Shield Budding)

(ख) वलय कलिका बंधन (Ring Budding)

(ग) खण्डक कलिका बंधन (Patch Budding)

(घ) विशाख कलिका बधन (Forkert Budding)

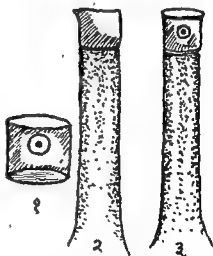
(क) वर्मकलिका बंधन(Shield Budding)—यह सर्वाधिक सामान्यप्रकार का होता है। इसमें सबसे पहले एक खड़ीदरी (Vertical slit) वल्क या छाल (Bark)मे से विघटित की जाती है। मूल स्तम्भ पर यह खड़ीदरी 2.5 सें.मी. से 4 सें. मी. लम्बी बनायी जाती है। इसकेसिर पर एक ओर 1·5 सें. मी. की क्षितिज-दरी (Horizontal slit)बनायी जाती है। अगर जरूरत पड़े तो वल्क को काष्ठपर से थोड़ा-सा ढीला भी किया जाता है। यह कार्य चाकू के फलक से किया जाना चाहिए। कली को निकालने के लिएउसके नीचे से चाकू के फलक को दबाकर चलाना चाहिए ताकि एक-एक सें०मी०में वर्म कलिका(Shield) वल्क सहित निकल आए


वर्म कलिका बंधन

और इससे थोड़ा अधिक चौड़ा भाग फलक का निकल आए। इस प्रक्रिया में थोड़ा-सा काष्ठ का भाग भी निकल आएगा। तत्पश्चात् इस कली को तत्काल ही मूल-

स्तम्भ में बनी खड़ी दरी के भीतर प्रवेश करना चाहिए। अच्छा तो यह रहता है कि कलिका या आँख निकालने के बाद पानी के अन्दर डाल दें और मूल-स्तम्भ पर उसके अनुरूप चीरा लगाने के बाद उसे पानी में से निकालकर मूल स्तम्भ के ऊपर बनाये गये चीरे में अच्छी प्रकार बिठा दें। फिर उसे मजबूती के साथ मूल स्तम्भ में ही मोम के भिगोए धागे से लपेट देना चाहिए ताकि वह निश्चित दशा में रह सके और दरी का भाग आर्द्र बना रहे। इस लपेटने की प्रक्रिया से दरी के भीतर की हवा भी बाहर निकल आएगी। अब देखना यह है कि अगर कलिका अनुमानतः दो सप्ताह तक हरी भरी स्थिति में है तो उसका मूल स्तम्भ से अच्छी तरह मेल होना समझ लेना चाहिए। यह कलिका बंधन समुद्र भवन के नाम से भी प्रसिद्ध है।

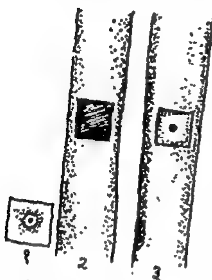
(ख) वलय कलिका बंधन (Ring Budding) इस विधि का भी हमारे देश में विशेष प्रचलन है। इसके द्वारा उत्तम कलिका को ही उपरोपिका (Scion) के लिए ढीला करके वल्क (Bark) का एक 2·5 सें॰ मी॰ वलय (Ring) निकाला जाता है। यह किसी भी उचित शाखा के एक किनारे से काट कर निकाला जा सकता है। उसी तरह मूल-स्तम्भ की अपनी शिखा को काट कर उसमें से भी उसी रूपाकार का वलय निकाला जाता है। तब उपरोपिका कलिका को मूल स्तम्भ के वल्क रहित जगह पर थोड़ा-सा नी चेकी ओर दबा कर रोप दिया जाता है ताकि कलिका का वल्क मूल स्तम्भ के वल्क के साथ अच्छी तरह से जुड़ सके। यह उस स्थिति तक करना चाहिए जब तक कि अन्वायुवित रूपेण में (Circuler way) वलय की गति रोधित न हो जाए। तत्पश्चात् कटे हुए भागों को (कलिका को छोड़कर) अच्छी तरह लपेट कर बाँध देना चाहिए। यह विधि बेर में अधिक सफल है। यह कार्य जून के माह में जबकि शाखाओं के अन्दर रसों का अधिक से अधिक स्राव हो, करना चाहिए।



वलय कलिका बंधन

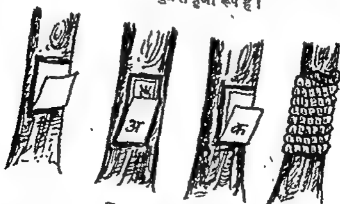
(ग) खण्डक कलिका बंधन (Patch Budding) यह विधि भी वलय कलिका से मिलती जुलती ही है। इसमें से वर्गाकार अथवा आयताकार खण्ड निकाला जाता है। यह खण्ड उपरोपिका कलिका के साथ दूसरे पौधे में से उतना ही

वड़ा खण्डक निकाल कर वहाँ रोपित किया जाता है। इसके बाद कलिका सावधानी के साथ बाँध दिया जाता है। यह विधि बेर के उत्पादन के लिए वि रूप से उपयोगी है।



खण्डक-कलिका बंधन

(घ) विशाख कलिका बंधन (Forkert Budding) इस विधि में खण्डक बहुधा 2·5 सें० मी० लम्बा और ·8 सें० मी० चौड़ा बनाया जाता है; किन्तु वल्क का पल्लव (Flap) निचले भाग पर जुड़ा रहना चाहिए। इसके बाद अब वल्क के उस खण्ड को जिसमें कि कलिका उपरोपिका है, पल्लव के नीचे की ओर घुसा दिया जाता है और यह मूल स्तम्भ के छिपे हुए भाग को काट कर उसमें बैठ जाता है। फिर इसे पहले दी गई विधि के अनुसार बाँध देना चाहिए। इस विधि का उपयोग आमों के उत्पादन के लिए किया जाता है। यह खण्डक कलिका बंधन का सुधरा हुआ रूप है।



विशाख-कलिका-बंधन

प्रतिरोपण अथवा कलम लगाना (Grafting)—यह क्रिया प्रपाती पौधों (Deciduous Plants) की सुषुप्त अवस्था में ही की जाती है। इससे उपरोपित ने पानी न पोषित तत्वों की आवश्यकता होने के समय से पहले ही उसमें वस्तुओं का प्रवाह हो चुका होता है। प्रतिरोपण अथवा कलम लगाने के सरल-


शिरोबन्धन

सम रूप में उपरोपिका और मूल स्तम्भ दोनों की ही शाखाएँ ·6 सें० मी० से 1·3 सें० मी० तक के व्यास की होनी चाहिए। इन दोनों में 3·8 सें० मी० लम्बा एक ही आकार का विकर्णकर्तन (Diagonal Cutting) बनाया जाता है। तत्पश्चात् दोनों को आपस में जोड़कर अच्छी तरह बांध दिया जाता है और मोम को पिघला कर ढक दिया जाता है। यह विधि शिरोबंधन अथवा कृसांग उपरोपण भी कहलाती है।

जिह्वा उपरोपण (Tongue grafting)—यह विधि शिरोबंधक अथवा कृसांग उपरोपण का सुधरा हुआ रूप है। वैसे तो दोनों की आरम्भ की विधि समान-सी है; किन्तु अन्तर केवल इतना है कि जिह्वा उपरोपण में उपरोपिका (Scion) और मूल स्तम्भ (Root Stock) दोनों के ही विकर्ण कर्तन (Diagonal Cutting) में उपरि सिरो से 1·3 सें० मी० एक दरी (Slit) बना ली जाती है। तत्पश्चात् दोनो को हल्का-सा दबा कर इस तरह मिलाया जाता है कि एक की जिह्वा दूसरे की दरी में आपस में प्रवेश कर जाए। इसके बाद मोम का लेप कर दिया जाता है। इसमें केम्बियम कोशिकाएँ (Cambium Cells) एक दूसरे को अधिक मात्रा में स्पर्श करते हैं। अतः यह शिरोबंधन की अपेक्षा अधिक दृढ़ होती है। शिरोबंधन और जिह्वा उपरोपण विधियों का उपयोग मूलों के प्रतिरोपण (Root Grafting) के लिए किया जाता है, जिनमें कि बीजू जाति के पौधे की मूल अथवा मूल का एक हिस्सा मूल स्तम्भ (Root Stock) के समान उपयोग किया जाता है।


जिह्वा उपरोपण

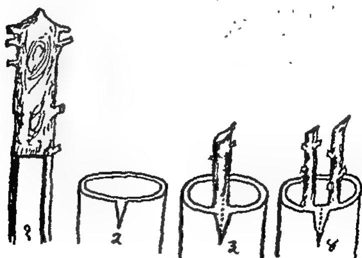
पल्याण उपरोपण (Saddle Grafting)—यह विधि मोटी गूदेदार अति (Thick Fleshy Tissues) वाले वृक्षों में काम में ली जाती है। यह पपीतों के उत्पादन के लिए बहुत अच्छी है। इसमें मूल स्तम्भ और उपरोपिका के उपरि सिरों को दोनों ओर से काटकर स्फनाकार (Wedge Shaped) बना लिया जाता है। फिर इन दोनों को इस प्रकार दृढ़ता से जोड़ा जाता है कि वे आपस में ठीक प्रकार से बैठ (Fit) जाएं। तत्पश्चात् इन्हें अच्छी तरह बांधकर मोम से लेप दिया जाता है।

स्फनाकार प्रतिरोपण (Wedge Grafting)—यह विधि उस स्थिति में लाभकारी रहती है जबकि मूल स्तम्भ (Root Stock) मूल का ही हिस्सा हो। इसमें उपरोपिका के निम्न भाग के किनारे को स्फनाकार (Wedge Shoped) बनाया जाता है और इसे मूल स्तम्भ के ऊपर उसी के अनुरूप कटे भाग में ठीक से जोड़ दिया जाता है ताकि केम्बियम कोशा (Cabium Cells) एक दूसरे से मिल जाएं। तत्पश्चात् उन्हें अच्छी तरह से बांधकर मोम का लेप कर दिया जाता है। यह विधि शीर्ण प्रतिरोपण भी कहलाती है।



शीर्ष प्रतिरोपण

पार्श्व प्रतिरोपण (Side Grafting)—इस विधि का उपयोग उस स्थिति में किया जाता है जबकि मूल स्तम्भ (Root stock) मोटा हो और उपरोपिका पतली। इसमें मूलस्तम्भ के सिर को काटने की आवश्यकता नहीं पड़ती है अपितु उपरोपिका के निम्न भाग को इस तरह से स्फनाकार बनाया जाता है कि उसकी एक ओर दूसरी ओर से थोड़ी रहे ? तत्पश्चात् मूलस्तम्भ के एक पार्श्व में विकर्तन अनुमानतः 20 अंश का कोण बनाते हुए उपरोपिका बैठा दी जाती है। इसकी गहराई इतनी होनी चाहिए कि उपरोपिका का स्फन इसके भीतर अच्छी तरह से बैठ जाए। अंत में इस पर मोम का लेप कर देना चाहिए। देखिये नीचे दिया गया चित्र।



पार्श्व-प्रतिरोपण

शीर्षक प्रक्रिया (Top working)—बड़े वृक्षों में किसी विशेष जाति के फल वृक्ष के उपरोपण के लिए विभिन्न प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है। इनमें मुख्य शाखाओं को मध्य से काटकर उनको ऊपर से इतना छोड़ दिया जाता है कि स्कन्ध से (Trunk) से कुछ ही फुट ऊपर रह जाए। इनसे जो नये प्ररोह (New Shoots) निकलते हैं। उनमें से कुछ एक को छोड़कर शेष का कलिका बंधन कर दिया जाता है। व्यर्थ के प्ररोहों को निकालकर फेंक दिया जाता है। इसकी दूसरी विधि में शाखाओं को काटने के बाद थोड़ा-सा फाड़ दिया जाता है। फिर पेंसिल की मोटाई के अनुरूप उपरोपिका काट करऔर उसे स्फनाकार बना कर इसमें इन्हें घुसा दिया जाता है। बस, इस प्रक्रिया में ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि उपरोपिका केम्बियम कोशा मूल स्तम्भ केम्बियन कोशा के स्पर्श में आ जाए। यह विधि दीर्ण प्रतिरोपण (Crown grafting) कहलाती है। जब कभी स्कन्ध अधिक मोटा होने की स्थिति में नहीं होता तब उसे धरती से 30 सें० मी० अथवा 60 सें० मी० ऊपर ही काट दिया जाता है। यदि स्कन्ध व्यास में केवल 5 सें० मी० अथवा 7·5 सें० मी० मोटा हो तो उसमें यही क्रिया की जा सकती है। यदि स्कन्ध मोटा हो तो उसमें वल्क प्रतिरोपण प्रक्रिया ठीक रहती है। इस तरह के प्रतिरोपण में उपरोपिका को विकर्ण प्रकार काटकर बनाया जाता है जैसा कि पीछे शिरोबंधन उपरोपण में किया गया है। तत्पश्चात् इन्हें काष्ठ व वल्क के मध्य में घुसा दिया जाता है। यह प्रक्रिया शल्क प्रतिरोपण (Bark Grafting) कहलाती है।

पीछे दी गई प्रतिरोपण विधियों का उपयोग सदा हरित-वृक्षों के लिए नहीं करना चाहिए। दूसरे हमारे देश के मध्य के समतलीय भागों में भी इनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। हमारे यहाँ तो चापोरोपण या भेंट कलम विधि का ही विशेष रूप से प्रचलन है। इस विधि में उपरोपिका किसी श्रेष्ठ वृक्ष में से लेकर बीज जाति के मूल स्तम्भ के ऊपर इस तरह से मिलाकर जोड़ी जाती है कि उनका अच्छी तरह से सम्मिलन हो जाए। इस सम्मिलन क्रिया के होने तक उपरोपिका को अपने पितृवृक्ष पर रहना पड़ता है। इस तरह के सम्मिलन में काफी समय लगता है। वैसे चापोरोपण (Enarching) विधि बहुत ही सरल है। इसके लिए एक ऐसा गमला लीजिए जिसमें बीज जाति का उगा हुआ पौधा हो। इसे इच्छित प्रकार के वृक्ष की इतनी ही मोटाई के आकार की शाखा के पास ले जाना चाहिए। उक्त वृक्ष की शाखा का शीर्ष ऊपर की दिशा में उगता हुआ होना चाहिए। यदि किसी इच्छित प्रकार के वृक्ष की शाखाएँ धरती पर ही आ गई हों तो बीजू जाति के मूल स्तंभ को भी धरती में ही उगाना चाहिए अथवा उन्हें धरती के ऊपर निकटवर्ती ऊँचाई पर रखना चाहिए। यदि इस प्रकार की शाखाएँ नहीं हैं तो बीज जाति के पौधों के गमलों को

बना कर भी रखा जा सकता है। तत्पश्चात् तेज चाकू द्वारा उससे वल्क की 4 सें० मी० से 5 सें० मी० तक की लम्बाई की पतली परत मूल स्तम्भ के एक ओर से निकाल ली जाती है। इस परत को मूल स्तम्भ के कुल व्यास का अनुमानतः 2/3 होना चाहिए। इसी तरह की एक पतली परत उपरोपिका में से भी निकाल लेनी चाहिए ताकि दोनों को ही साथ खींचकर इन स्थानों पर मिलाकर अच्छी तरह बाँधा जा सके। इस प्रक्रिया में यह बात ध्यान रखने योग्य है कि दोनों की पतली परतों की लम्बाई एक समान होनी चाहिए। यदि मूल स्तम्भ और उपरोपिका समान लम्बाई के नहीं हैं तो इनमें से जो छोटा हो उसकी पतली परत को तनिक अधिक गहरा कर देना चाहिए ताकि कैम्बियम कोशा का पारस्परिक मिलन ठीक प्रकार से हो सके। इसमें उपरोपिका को सावधानी के साथ ठीक स्थान पर इस तरह बांधना चाहिए ताकि उसके और मूल स्तम्भ के मध्य में कोई रिक्त स्थान न रहे। फिर इस स्थिति में इन्हें कई सप्ताह तक छोड़ देना चाहिए। बीच-बीच में उपरोपिका की अवश्य देखभाल करते रहना चाहिए कहीं वह सूख न जाए। इससे स्पष्ट है कि इस बीच मूल स्तम्भ का पूर्णतया स्वस्थ रहना नितांत आवश्यक है। जब सम्मिलन काल पूरा हो जाए तो उपरोपिका को पितृवृक्ष में से काटना शुरू कर देना चाहिए। यह कार्य ठीक जोड़ के नीचे से ही किया जाना चाहिए। इसके साथ ही मूलस्तम्भ का शीर्ष भी काट देना चाहिए। इस विधि मे ठीक यही रहता है कि दोनों की कटाई तीन या चार बार में धीरे-धीरे पूरी करनी चाहिए। इसमे अन्तर कम से कम एक सप्ताह का अवश्य होना चाहिए। नई उपरोपिका को पृथक् करके काफी दिनो तक छाया मे रखना चाहिए और इसके बाद ही उसका रोपण करना चाहिए। यह रोपण क्रिया तीन माह से एक वर्ष के भीतर हो जानी चाहिए। यह विधि सभी प्रतिरोपण से तैयार किए गए आम्र वृक्षों के लिए उपयोग मे लाई जाती है। यह संतरा, अमरूद और कुछ अन्य फलोत्पादन के लिए भी ठीक है।

यद्यपि चापोरोपण (Enarching) अति व्ययी है। दूसरे इससे उपरोपिका व मूलस्तम्भ बहुत कमजोर हो जाता है और कई मास तक यह डर बना रहता है कि ये कभी भी पृथक् हो सकते हैं। इस डर के कारण ही उनका बंधन कई मास तक बंधा रहने दिया जाता है। तीसरे यह विधि इसलिए भी अधिक व्ययी है कि इसका उपयोग उन स्थितियों में किया जाता है जहाँ पर अन्य विधियाँ काम नहीं आ पाती हैं।

उपरोपिका और मूल स्तम्भ का परस्पर प्रभाव (Influence of Scion and Root Stock) 1. इन दोनों के परस्पर सम्मिलन के आकार, आकृति और फल वृक्ष की अवस्था पर प्रभाव पड़ता है।

2. इनके सम्मिलन से फलों की मात्रा, पकने का समय, फलों का आकार,

रंग और किस्म पर भी प्रभाव पड़ता है।

3. ओजस्वी (Vigorous) उपरोपिका फूलों के लिए आहार तैयार करने व देने के लिए उपयुक्त है।

4. इनके सम्मिलन से निकलने वाली शाखाओं से यह ज्ञात हो जाता है कि मिट्टी के भीतर मूलों का विकास किस तरह से हो रहा है ?

5. निंबु प्रजाति की ट्राइफोलियेट-ओरेंज का मूल वृन्त अक्सर अपने ऊपर लगाए गए उपरोपिका को ज्यादा सख्तपन (Hardiness) प्रदान करता है।

6. बीमारी व कीट पतंग प्रतिरोध (Resistance) भी मूल स्तम्भ (Root Stock) कई अवस्थाओं पर अपनी उपरोपिका को प्रदान करते हैं यथा अमेरिका की देशी अंगूर की जातियाँ कई प्रकार के क्षति पहुँचाने वाले कीटों से स्वभावतः ही मुक्त होती हैं और फ्रांस की जातियों में यह बात नही हुआ करती है।

7. कभी ऐसा भी होता है कि यदि मीठे संतरे की उपरोपिका बेल के मूल स्तम्भ पर लगाने से फल वृक्ष तीन वर्ष पूर्व ही फल देना आरम्भ कर देता है और उनकी उपज भी दूसरे मूल स्तम्भों की अपेक्षा अधिक हो जाती है।

बीज बोना (SEED SOWING)

बीज कैसा होना चाहिए (Type of Seed)—फल्य सस्य उत्पादन में दाने ही बीज नहीं होते हैं, अपितु इनके अंग भी बीज होते हैं, यथा अर्वी, आलू और गन्ने के टुकड़े आदि। गृह वाटिका अथवा उद्यान के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला बीज भारी, रोग रहित, कीट रहित और अन्य बीजों से मिश्रण रहित तथा अखण्ड होना चाहिए। पौधों के अंग जो लगाने के लिए चुने गए हों कीट और रोग रहित होने चाहिए। गृहवाटिका या उद्यान में डालने से पूर्व दानेवाले बीज की अंकुरण क्षमता का भली भाँति परीक्षणकर लेना चाहिए। जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि कुछ बीज भिगोकर गीले ब्लाटिंग पेपर के बीच मे दबाकर अंधेरे में रख देने चाहिए। इस स्थिति में एक-दो दिन रखने से अधिकांश बीज अंकुरित हो जाते हैं। इनकी गणना के द्वारा यह निकाल लेना चाहिए कि इनमें अंकुरण क्षमता कितने प्रतिशत है ? बुवाई के लिए कितने बीजों की आवश्यकता पड़ेगी।

बीज बोने की रीति (Method of Seed Sowing)—गृह वाटिका अथवा उद्यान में बीज बोते समय कई बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। ये हाथ से और औजारों से बोए जाते हैं। गृहवाटिका में साग-सब्जी के बीज किसी खूंटी से छिद्र करके बोए जाते हैं। क्यारियों में, मेड़ पर अथवा कूडे में हाथ से ही बोए जाते हैं। पौध भी हाथ से ही लगायी जाती हैं। साग-सब्जी के कन्द भी हाथ से ही लगाए जाते हैं।

गृह वाटिका और कहीं-कहीं उद्यान में बीज पत्तियों मे अथवा छिटकवाँ

बोये जाते हैं। इससे बीज वितरण बराबर नही होता है। छोटे व महीन बीजों का वितरण बराबर करने के लिए बालू या मिट्टी में मिलाकर छिटकना पड़ता है। इनके ऊपर 1·3 सें० मी० से 4 सें० मी० की पत्ती खाद की हल्की परत डाल देनी चाहिए। वास्तव में मिट्टी डालने का कार्य बीज के आकार के अनुसार ही होना चाहिए। आम, काजू आदि के बड़े बीजों को अधिक गहरा बोना चाहिए। वर्षा ऋतु में बोए गए बीजों को बहने से बचाने के लिए केले के पत्ते अथवा अन्य किसी वस्तु से ढक देना चाहिए। बीजों के अंकुरण स्थिति में आते ही इन्हें हटा देना चाहिए। क्यारियों में सदा आर्द्रता बनी रहनी चाहिए। यदि एक ही स्थान पर किसी भी कारणवश पौधे ज्यादा उग आए हों तो उनमें से कुछ एक को उखाड़ फेंकना चाहिए। सख्त छिलको के बीजों को गोबर के घोल में तीन-चार दिन भिगोने के बाद बोना श्रेयस्कर रहता है। सूर्य के तीव्र ताप व वर्षा से क्यारियों को बचाने के लिए सिरकी या फूस की टट्टी का समुचित प्रबन्ध रहना चाहिए। पौध के बड़ी हो जाने पर क्यारियों को खुला छोड़ देना चाहिए ताकि उसमें धूप, सर्दी व वर्षा सहन करने की क्षमता आ सके। खरपत वारों को भी फल्य सस्य से निकलते रहना चाहिए। यदि बीज गमलों में बोए गए हों तो उन्हें छायादार स्थान में रखना चाहिए; किन्तु समय-समय पर उन्हें ताप में भी रखना चाहिए।

बोने की रीतियाँ

(क) छिटकवां रीति से बीज की बुवाई।

(ख) ड्रिल्लर से बीज की बुवाई।

(ग) पंक्तियों में बीज की बुवाई।

(क) छिटकवां रीति से बीज की बुवाई—जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि इस रीति में फल्य-सस्यों के बीजों को हाथ से क्यारियों में बिखेरते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि इनका वितरण समान हो। यदि क्यारी का क्षेत्रफल छोटा है तो ऐसी स्थिति में मिट्टी पर हाथ फेर कर बीज को दबा देना चाहिए। यदि क्षेत्रफल बड़ा है तो देशी हल द्वारा एक बार जुताई करके पटेला चला देना चाहिए। क्यारियों की मिट्टी में आर्द्रता बनी रहनी चाहिए ताकि बीज आसानी से उग सकें।

छिटकवा रीति से बीज की बुवाई से हानियाँ—1. इससे समान बीज वितरण करने में काफी असुविधा होती है। क्यारियों में बीज अधिक मात्रा में पड़ जाते हैं। इससे कहीं कम और कहीं अधिक पौधे उगते हैं।

2. कुछ प्रतिशत बीज भूमि में न मिल सकने के कारण पक्षियों द्वारा उठा लिए जाते हैं।

3. इसमें निराई-गुड़ाई के लिए अच्छे कृषि यंत्रों का प्रयोग नहीं किया जा सकता है। यह कार्य खुरपी से किए जाने के कारण समय और व्यय अधिक लगता है।

छिटकवां रीति से बीज की बुवाई से लाभ—1. बीज बुवाई में समय कम लगता है।

2. पौध घरों के लिए यह रीति विशेष प्रकार से उपयोगी है।

(ख) **ड्रिलर से बीज की बुवाई**—इसके द्वारा बुवाई करने से बीज की मात्रा कम लगती है और वह समुचित दूरी पर बोया जाता है। इससे बुवाई करने से पूर्व पलेवा करना चाहिए। इसका अधिकांशतः प्रयोग थोड़े क्षेत्र की बुवाई के लिए ही किया जाता है। बड़े क्षेत्र में इसके द्वारा बुवाई करने से व्यय अधिक बढ़ जाता है।

ड्रिलर से बीज की बुवाई करने से लाभ—1. बीज की मात्रा कम लगती है और बीज-अंकुरण बहुत अच्छा होता है।

2. हैण्ड हो की मदद से निराई सुगमता से की जा सकती है। इससे समय श्रम की बचत होती है।

(ग) **पंक्तियों में बीज की बुवाई**—इसमें हाथ या यंत्र द्वारा पंक्तियों में बीज की बुवाई की जा सकती है। इसकी निम्नलिखित रीतियां प्रचलित हैं—

1. तिफण की सहायता से बीज डालना।

2. बीज ड्रिल की सहायता से बीज डालना।

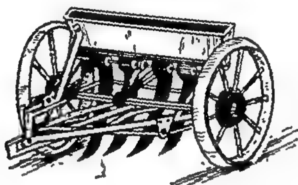
तिफण की सहायता से बीज डालना—इसके द्वारा तीन पंक्तियां एक साथ बोई जा सकती हैं। इसमें यदि बीज का नल बंद कर दिया जाए तो उससे दो पंक्तियां बोई जा सकती हैं। इसके तीनों नल मुख के ऊपर एक लकड़ी के तीन छिद्र वाले कुप्पे में रहते हैं। इसमें एक ही व्यक्ति बीज गिराता है और तीनों पंक्तियां बो दी जाती हैं। देखिए नीचे दिया गया चित्र।



तिफण

4. **बीज ड्रिल की सहायता से बीज डालना**—इसका प्रयोग बड़े-बड़े क्षेत्रों

में बीज की बुवाई के लिए किया जाता है। बीज ड्रिल की पेटी में बीज डाल दिए जाते हैं और बैलों द्वारा या ट्रैक्टरों द्वारा इसकी खिंचाई की जाती है। इससे बीज समान दूरी पर गिरते जाते हैं। इस पेटी में एक धुरी रहती है, जिसमें लोहे के तवे जैसे टुकड़े रहते हैं और उन के किनारे पर छोटे चम्मच रहते हैं। जब ये धुरीवाले टुकड़े धुरी के घूमने से घूमते हैं तो चमचों में बीज जाकर कुप्पियों में गिर जाते हैं तथा पेरनियों से भूमि में चले जाते हैं। इससे कार्य यथाशीघ्र होता



बीज ड्रिल

है। बैलवाली बीजड्रिल से पाँच पंक्तियाँ और ट्रैक्टर वाली बीज ड्रिल से दस बारह पंक्तियों में एक साथ बोई जाती हैं। इनमें ट्रैक्टर वाली बीज ड्रिल बहुत उपयोगी होती है। इसमें पंक्तियों की दूरी घटाने-बढ़ाने की व्यवस्था भी रहती है।

सारांश

1. बीज किसी पौधे की एक अल्प विकसित सुषुप्त स्थिति होती है। बीज दो प्रकार के होते हैं—1. एक बीज पत्रीय 2. द्विबीज पत्रीय।
2. एक बीज पत्रीय में एक दाल होती है। इसके अन्तर्गत मक्का, गेहूँ, धान और प्याज आदि के दाने आते हैं। द्विबीज पत्रीय में दो दाल होती हैं। इसके अन्तर्गत मटर, अंडी, सेम और चना आदि के दाने आते हैं।
3. हरेक बीज का भ्रूण जो कि उसमें सुषुप्तावस्था में रहता है, आर्द्रता मिलने ही वह क्रियाशील होकर बढ़ने लग जाता है। यह क्रिया अंकुरण कहलाती है।
4. अंकुरण के लिए नम अथवा आर्द्रता, तापमान अथवा उष्णता और वायु अथवा ऑक्सीजन का होना अत्यन्त आवश्यक है। इनमें से किसी एक के

अभाव में अंकुरण असम्भव है।

5. अंकुरण अधोभूमिक और उपरिभूमिक रूप में हो सकता है।
6. बीज सदा उन्नतशील जाति का स्वस्थ और मोटा चयन करना चाहिए। इसका भार ठीक होना चाहिए। बीज सुन्दर व चमकीला और रोग रहित फसल से लेना चाहिए। पुराने व कच्चे बीजों का चयन नहीं करना चाहिए। बीज कटे-फटे नहीं होने चाहिए।
7. बीजों को सुखाकर व साफ़ करके सुरक्षित स्थान पर रखना चाहिए।
8. बीज द्वारा पौधों की उत्पत्ति का कार्य लैंगिक प्रचारण कहलाता है। अधिकांश फल-फूल पौधों में इसी क्रिया का प्रयोग किया जाता है।
9. वर्धी प्रचारित पौधे-विभाजन से प्रचारित, मूल सम्बन्धित प्रचारण और उपरोपण के अन्तर्गत विभाजित किए जा सकते हैं।
10. मूल सम्बन्धित प्रचारण में स्तम्भ, कलम ही सामान्य विधियाँ हैं।
11. न्यासर्ग से कलमों का उपचार आसानी से किया जा सकता है।
12. कलिका बंधन इन विधियों से किया जा सकता है—वर्म कलिका बंधन, वलय कलिका बंधन, खण्डक कलिका बंधन, विशाख कलिका बंधन।
13. प्रतिरोपण इन विधियों से किया जा सकता है—जिह्वा उपरोपण, पल्याण उपरोपण, स्फनाकार प्रतिरोपण, पार्श्व प्रतिरोपण और शीर्षक प्रक्रिया।
14. बीज की छिटकवां रीति से, ड्रिल्लर से और पंक्तियों में बुवाई की जा सकती है।
15. पंक्तियों में बीज की बुवाई के लिए ये रीतियाँ प्रचलित हैं—1. देसी हल के पीछे हाथ से बीज डालना 2. तिफण की सहायता से बीज डालना 3. बीज ड्रिल की सहायता से बीज डालना।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1. बीज किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार का होता है ?

प्रश्न 2. अंकुरण किसे कहते हैं और उसके लिए कौन-कौन सी अवस्थाओं का होना आवश्यक है ? अंकुरण सम्बन्धी कोई प्रयोग करके दिखाओ।

प्रश्न 3. बीज की अंकुरण शक्ति को प्रतिशत में किस प्रकार ज्ञात करोगे ?

प्रश्न 4. (क) बीज चयन करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

(ख) उन्नतिशील जाति के बीजों के प्रयोग से क्या लाभ हैं ?

(ग) बीजों की सुरक्षा किस प्रकार की जा सकती है ?

प्रश्न 5. वर्धी प्रचारण से क्या अभिप्राय है ? इससे प्रचारित पौधों को कितने

भागों में विभाजित किया जा सकता है ? सविस्तार लिखिए।

प्रश्न 6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए—
(क) न्यासगं (ख) दाबकलम (ग) स्तूप भूमग्ना (घ) आकाश-मृदावरण या गूटी बांधना (ङ) खाति भूमग्ना (च) जिह्वा उपरोपण (छ) शीर्षक प्रक्रिया।

प्रश्न 7. कलिका बंधन का प्रयोग कहाँ किया जाता है ? इसकी कितनी विधियां हैं ? सविस्तार लिखिए।

प्रश्न 8. उपरोपिका और मूलस्तम्भ के पारस्परिक प्रभाव पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 9. बुवाई के लिए बीज कैसा होना चाहिए ?

प्रश्न 10. गृह वाटिका में बीज बोने के लिए कौन-सी रीति उत्तम रहती है ? उसका सविस्तार उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 11. पंक्तियों में बीज की बुवाई के लिए कौन-कौन सी रीतियाँ प्रचलित हैं ? उनका सविस्तार वर्णन कीजिए।

प्रश्न 12. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—
(क) ....का प्रयोग बड़े-बड़े खेतों में..........की बुवाई के लिए किया जाता है।
(ख) तिफण की सहायता से..........पंक्तियाँ एक साथ बोई जा सकती हैं।
(ग) ....में.......को हाथ से क्यारियों में बिखेरा जाता है।
(घ) फल्य सस्य उत्पादन में..........उसकी..........होती है।
(ङ) शीर्षक प्रक्रिया को..........भी कहते हैं।
(च) ....स्थूल गोदेल ऊति वाले वृक्षों में काम में ली जाती है।
(छ) ....कलिका बंधन का हमारे देश में विशेष प्रचलन है।
(ज) ....से कलमों का इलाज आसानी से हो सकता है।
(झ) बीज द्वारा पौधों की उत्पत्ति का कार्य..........कहलाता है।
(ञ) बीज सदा..........का ही लेना चाहिए।

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. अपनी गृह वाटिका में विभिन्न प्रकार की क्यारियाँ बनाकर विभिन्न विधियों से बुवाई कीजिए।

प्रश्न 2. क्षुद्र सेम के भीगे हुए बीजों को लकड़ी के गीले बुरादे में अंकुरित कीजिए और उनकी अवस्था में नित्य-प्रति हुए परिवर्तन को अपनी

उत्तर पुस्तिका में नोट कीजिए ।

प्रश्न 3. विभिन्न प्रकार के उन्नतिशील बीजों को एकत्रित कीजिए और उनमें से एक बीज पत्रीय और द्विबीज पत्रीय बीजों को अलग-छाँटकर सूची तैयार कीजिए ।

प्रश्न 4. अपने विषय अध्यापक के कृत्रिम वानस्पतिक विधियाँ सीखकर नये-नये पौधे अपनी गृह वाटिका के लिए तैयार कीजिए।

प्रश्न 5. ड्रिल्लर से बीज बोने का अभ्यास कीजिए ।

5 गमला संवर्धन एवं जल संवर्धन (POT CULTURE & WATER CULTURE)

गमला संवर्धन (POT CULTURE)

उद्यान कला में गमलों का विशिष्ट स्थान है। कोई ऐसा आधुनिक गृह नहीं है जिसमें इनका प्रयोग नहीं होता हो। वास्तव मे गृह वाटिका व कक्ष की शोभा ही इनसे बढ़ती है। इसके अलावा इनमें अधिकांश अलंकृत पौधे और वानस्पतिक प्रसारण से तैयार होने वाले पौधों के मूल स्तम्भ की पौध तैयार की जाती है।

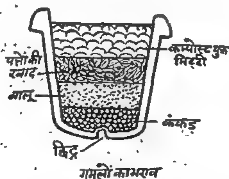
1. गमला संवर्धन
2. खादों का मिश्रण
3. स्थानान्तर रोपण
4. जल सवर्धन
5. जल सवर्धन में सस्य उत्पादन से लाभ
6. सारांश

इन्हें आवश्यकता पड़ने पर अवांछित वातावरण से बचाया जा सकता है। ये सीमेण्ट व मिट्टी के बने होते हैं। इनके अलावा विभिन्न-प्रकार के तार, टीन व बाँस आदि के गमलो से भी कक्षों व द्वारों को सजाया जाता है। गमला संवर्धन मे निम्नलिखित प्रक्रियाएँ मुख्य रूप से सम्मिलित हैं:—

1. गमलों का चयन (Selection of Pots)—गमलो का चयन स्थान व पौधों के आकार के अनुसार ही करना चाहिए। यदि नर्सरी में पौध तैयार करनी हो तो इसके लिए 30 सें० मी० अथवा 35 सें० मी० वाले मिट्टी के गमलो का प्रयोग करना चाहिए। यदि विद्यालय के प्रांगण, गृह वाटिका या प्रांगण, कार्यालय अथवा सार्वजनिक उद्यानों में अलंकृत पौध लगानी हैं तो इनके लिए सीमेण्ट के बने हुए उथले गमलों को प्रयोग में लाना चाहिए; क्योंकि ये काफी मजबूत तथा वजन में भारी होते हैं। अतः ये आसानी से न तो टूट सकते हैं और न आसानी से उठाये ही जा सकते हैं। इस तरह चोरी होने से भी बच जाते हैं। इन पर इच्छित व वातावरण के अनुकूल रंग दिया जा सकता है। यदि फल वृक्षों को गमले मे लगाना हो तो भी सीमेण्ट के बड़े गमले ही अधिक उपयोगी होते हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली में किए गए शोध कार्यों से यह सिद्ध हो गया है कि अंगूर की बौनी जातियाँ जैसे 'ब्यूटी सीड लेस' और 'कार्डिनल' को सीमेण्ट के गमलों मे सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। कुछ अलंकृत पौधे जैसे बाउगेनविलिया (बगन विलास) या स्टेण्डर्ड गुलाबों तथा हालीहॉक इत्यादि बड़े पौधों के लिए भी सीमेण्ट के बड़े गमले ही उपयोगी सिद्ध होंगे। इनके अलावा द्वारों, बरामदो और खिड़कियों मे लटकाने के लिए टीन, तार व बाँस के बने हुए छोटे गमलों का चयन पौधों को आकार के अनुसार ही करना चाहिए। इन्हें भी विभिन्न रंगों में आवश्यकतानुसार सजाया जा सकता है। नए गमलों को प्रयोग करने से पूर्व पानी आदि से भली-भाँति साफ कर लेना चाहिए।

2. गमलों का भराव (Pot Filling)—गमलों का भराव करते समय कई विशेष बातों का ध्यान रखना चाहिए। इनमें सबसे पहले सफ़ाई के बाद तलहटी में कंकड़ अथवा मिट्टी के टूटे हुए गमलों के टुकड़े भरने चाहिए। फिर इन्हें बालू से ढक देना चाहिए। ऐसा करने से गमले में जल-निकास अच्छा हो जाता है; अन्यथा मिट्टी के गमले की पेंदी में बने छिद्र को पूर्ण रूप से भर देगी और जल गमले के बाहर नही निकल पाएगा जो पौधों के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। तत्पश्चात् गमले के $\frac{1}{3}$ भाग को पत्तो की खाद अथवा कम्पोस्ट खाद से भरना चाहिए। शेष $\frac{2}{3}$ भाग दोमट मिट्टी, चारकोल व चूना समान रूप में मिलाकर भर



गमलों का भराव

देना चाहिए। कच्चे गोबर की खाद का प्रयोग नही करना चाहिए; क्योंकि इससे कई प्रकार के खरपतवार व दीमक लगने का भय होता है। कुछ मौसमी फूलों अथवा विशेष प्रकार के पौधों को हरा भरा व खुशनुमा बनाए रखने के लिए मिट्टी व पत्तों की खाद के साथ पिसा हुआ कोयला और रेत मिला देना चाहिए। यदि कभी गमलो के पुनः भराव की आवश्यकता पड़ जाए तो उसकी ऊपरी पुरानी मिट्टी किसी वस्तु से निकाल देनी चाहिए और फिर उसकी भराई नए सिरे मे उपर्युक्त क्रमानुसार की जानी चाहिए। गमलों में पौध लगाते समय

निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान देना चाहिए—

(क) स्वच्छ गमलों का प्रयोग (To use of clean Pots)—पौध लगाने वाले गमलों को सर्व प्रथम कपड़े आदि से अच्छी प्रकार साफ़ कर लेना चाहिए। पुराने गमलों की सफ़ाई नारियल के रेशों से रगड़ कर करनी चाहिए। तत्पश्चात् इन्हें गरम जल से धोना चाहिए। नए मिट्टी के गमलों को 3-4 घंटे तक जल में डुबो देना चाहिए। इससे गमले उसको सोख लेते हैं। हानिकारक कीट, फंजाई मोस आदि हट जाते हैं। फिर इन्हें धूप में सुखा लेना चाहिए। अच्छी प्रकार से सूख जाने के बाद ही इनमे मिट्टी व पत्तो की खाद भरनी चाहिए। गीले गमलों में भराई करने से मिट्टी उनकी दीवारो से चिपक जाती है। इससे हवा के संचालन में बाधा पड़ती है।

(ख) गमलों में स्वच्छ कंकड़ों का प्रयोग—इनकी तलहटी मे स्वच्छ कंकड ही रखने चाहिए। मिट्टी में सने हुए कंकड़ों को स्वच्छ जल में भिगो कर स्वच्छ कर लेना चाहिए। इससे पौधों को रोगादि लगने का भय जाता रहेगा।

(ग) गमलों में उचित मिट्टी का प्रयोग—गमलों में पौधों की आवश्यकतानुसार ही 1/3 भाग दोमट मिट्टी या रेत का और 1/4 भाग पत्तों की खाद का भरा जाना चाहिए।

(घ) गमलों में मिट्टी दबाना—गमलों में मिट्टी की भराई इस तरह दबाकर करनी चाहिए ताकि पौधा आसानी से बाहर न निकाला जा सके। मिट्टी का बहुत सख्त दबाना भी ठीक नही रहता है; क्योंकि इसमें पौधों की जडें ठीक प्रकार से विकसित नही हो पाती हैं।

(ङ) गमलों में जल के लिए स्थान छोड़ना—गमलों में मिट्टी भरते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि जल के लिए भी आवश्यक स्थान छूटा रहे। यह पौधो के अकारण उनकी जल की मांग के अनुसार 2 सें० मी० से 5 सें० मी० तक रखना चाहिए।

(3) गमलों की सिंचाई (Watering of Pots)—इनमें लगे हुए चाहे अलकृत पौधे हो अथवा वानस्पतिक प्रसारण से तैयार होने वाले पौधों के मूल स्तम्भ की पौध। इनकी सिंचाई आवश्यकतानुसार सवेरे या संध्या समय करनी चाहिए। इनमें पानी की उचित मात्रा का होना नितान्त आवश्यक है; क्योंकि अधिक जल दिए जाने से पौधों की जड़ें सड़ जाती हैं और अपर्याप्त जल से पौधो के सूख जाने की सम्भावना होती है। अतः जल की मात्रा पर ही पौधो की बढ़ोतरी व विकास निर्भर रहता है। जल की कमी के कारण उसे पूर्ण आहार नहीं मिल पाता है। जिन पौधों की बाढ तीव्रता ले रही हो उनमें जल प्रचुर मात्रा में दिया जाना चाहिए और इसके अलावा पौधों में जल की मात्रा केवल इतनी ही रहनी चाहिए जितनी उन्हें जीवित रख सके। सिंचाई का कार्य भूलकर भी दिन

में जबकि तीव्र धूप खिली हो नहीं करना चाहिए; क्योंकि मिट्टी गर्म होती है और जब उसमें पानी पड़ता है तो पानी गर्म वाष्प के रूप में ऊपर उड़ता है, जो पत्तियों के सम्पर्क में आते ही उन्हें झुलसा देता है। यह स्थिति पौधों के लिए बहुत ही हानिकारक होती है। सप्ताह में दो बार सिंचाई के लिए फव्वारे का प्रयोग भी कर लेना चाहिए। इससे पौधों के पत्ते स्वच्छ रहते हैं। उनकी श्वसन क्रिया सुचारू रूप से होने लगती है। यदि गमलों में हल्के व महीन बीज बोए गए हैं तो उनके अंकुरित होने तक जल गमलों में फव्वारे द्वारा हल्के रूप से लगाना चाहिए। इससे आवश्यकतानुसार आर्द्रता बनी रहेगी और बीजादि न बह सकेंगे।

4. गमलों की देखभाल—जब गमलों में आवश्यकतानुसार पौधे लगा दिए जाएँ तब उन्हें पूर्णतया जड़ पकड़ने तक छाया में रखना चाहिए और बाद में धूप में। इनमें फव्वारे से जल देना चाहिए। इनमें जहाँ तक सम्भव हो सके द्रव खाद का ही प्रयोग करना चाहिए; क्योंकि इसे पौधों की जड़ें आसानी से शोषित कर लेती हैं। दीमक, केंचुआ और भूमिगत कीट ग्रस्त आदि से पौधों की रक्षा करनी चाहिए। ये उनकी जड़ों को नष्ट कर देते हैं। इससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं और पौधा मर जाता है। बचाव के लिए या तो हाथ से इन्हें पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए या उनमें कीट नाशक दवाइयों का प्रयोग करना चाहिए अथवा सावधानी के साथ मिट्टी को बदलकर दूसरी मिट्टी भर देनी चाहिए। पौधों को बदलने से पूर्व पौध लगे गमलों में दो घण्टे पूर्व आवश्यकतानुसार थोड़ा-थोड़ा जल दो तीन बार में डाल देना चाहिए। इससे मिट्टी गीली हो जाएगी और पौधे आसानी से गमले में से निकल जाएँगे।



छोटे बीजों को पानी देना

नर्सरी (NURSERY)

फल्य सस्य उत्पादन में सबसे पहला व आवश्यक कार्य उद्यान में नर्सरी तैयार करना है; क्योंकि इसमें अधिकांशतः पौधे आरम्भ मे नर्सरी में ही तैयार किए जाते हैं। इन पौधों को उनकी बुवाई के समय के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) शीतकालीन—ये पौधे सितम्बर मास से अक्टूबर मास तक बोने के बाद शरद् ऋतु में ही बड़े होते हैं और फूलते हैं। जैसे—चुकन्दर, बंदगोभी,

गाजर, फूलगोभी, गांठ गोभी, प्याज, मूली, शलगम आदि सब्जियाँ और गुलाब कैना, श्राइजेन्थमम हालीहाक, सनफ्लावर, कैलनडुला, एन्टीराइनम आदि फूल पौधे।

(2) ग्रीष्मकालीन—ये पौधे दिसम्बर मास से जनवरी मास तक उत्तरी भारत के क्षेत्रों में बोये जाते हैं और पर्वतीय क्षेत्रों में मार्च मास से मई मास तक बोए जाते हैं। कठोर प्रकार के वार्षिक पौधे अगस्त मास से अक्टूबर मास तक अथवा बसन्त ऋतु में बोए जाते हैं। जैसे—जीनिया, कोचिया, सूर्यमुखी पोर्टचुलाका, गैलार्डिया आदि फूल पौधे तथा सब्जियों में शिमला मिर्च, पूसा परपिल लॉग (बैंगन) और खरबूजा आदि।

(3) वर्षाकालीन—ये पौधे अन्य समय में बोये जाने वाले पौधों की अपेक्षा अधिक जल व गर्मी सहन कर लेते हैं और वर्षा ऋतु में ही खूब फलते फूलते हैं। इन्हें अधिकांशतः अप्रैल मास से मई मास तक बोया जाता है। जैसे—एमरेन्थस बीलसम, जीनिया, कोसमास, टिटहोनिया, गैलार्डिया आदि पौधे।

नर्सरी तैयार करने के लिए निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए :—

(क) मिट्टी (Soil)—नर्सरी के लिए ऐसी बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम रहती है जिसका बयन (Texture) खुला हो। इसमें अंकुरण अच्छा होता है। चिकनी मिट्टी का भूलकर भी प्रयोग नहीं करना चाहिए। अच्छी नर्सरी के लिए मिट्टी का अच्छा बयन तथा जलोत्सारण की क्षमता दोनों ही भरपूर होनी चाहिए।

(ख) नर्सरी की तैयारी (Preparation of Nursery)—इसके लिए वर्षा काल के तुरन्त बाद ही सबसे पहले मिट्टी को लगभग डेढ़ फुट गहरा खोद लेना चाहिए। फिर इसे बारीक चूर्ण की तरह कर लेना चाहिए। इसमें सिल्ट (Slit) और गोबर की खाद (F. Y. M.) या गली पत्तियों को समान मात्राओं में मिलाकर मिट्टी में मिला देना चाहिए। इस रोपण-क्यारी को भूमि से 15 सें० मी० 23 सें० मी० तक ऊँचा रखना चाहिए। क्यारी बनाने के लिए लम्बे तख्ते के द्वारा बिल्कुल मुलायम सतह तैयार कर ली जाती है। क्यारियों की आपसी दूरी 60 सें० मी० रहनी चाहिए। इससे क्यारी की निराई गुड़ाई करने में आसानी रहती है। इसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर होनी चाहिए ताकि पौधों को आवश्यकतानुसार छाया मिल सके।

(ग) बीज बोना (Seeding)—बीजों को 10-15 सें० मी० की दूरी पर पंक्तियों में बोना चाहिए। इनकी गहराई बीज के आकार पर निर्भर करती है। पुष्प पौधों के छोटे बीजों को 1·5 सें० मी० गहरा ही डालना चाहिए। इनको 40 या 50 गुना बालू में मिलाकर छिटकना चाहिए ताकि बोते समय ये जमीन में अधिक सघन (Crowded) न हो जाए। बीजों को बोने से पूर्व किसी

भी तांबायुक्त कवक नाशक दवाई (Copper Fungicide) के साथ 5 किलोग्राम बीजों में 1 औंस के अनुसार भलीभांति मिला लेना चाहिए। बुवाई के बाद बीजों को बराबर रूप से मिट्टी से ढक देना चाहिए। यह कार्य लकड़ी के तख्ते से करना ठीक रहता है। क्यारियों में नित्य जल फव्वारे द्वारा देना चाहिए। अधिक तेज जल की धार से बीज मिट्टी के ऊपर आ जाते हैं। सिंचाई के जल को भूलकर भी किसी एक स्थान पर एकत्र नहीं होने देना चाहिए। पाला, तीव्र वर्षा और कड़ी धूप से बचाने के लिए क्यारियों को घास-फूंस अथवा बांस और घास की टट्टियाँ (Screens) बनाकर ढक देना चाहिए। इस छादि (Cover) को उस समय हटाना चाहिए जबकि बीजों का अंकुरण समुचित रूप से हो जाए। यदि बीजजात पौधे किसी कारणवश अधिक घने निकल आयें तो अंकुरण के तुरन्त बाद ही इनका विरलन (Thining)कर देना चाहिए। इसके लिए अवांछित पौधों को हाथ से निकाल लेना चाहिए और फिर अन्यत्र लगा देना चाहिए।

(घ) निराई गुड़ाई (Weeding & Hoeing)—नर्सरी से अवांछित तृणकों को दूर रखने के लिए और साथ ही मिट्टी के वातायन को ठीक तरह से कायम रखने के लिए क्यारियों की निराई गुड़ाई निरन्तर करते रहना चाहिए ताकि पौधों का विकास ठीक प्रकार से होता रहे। निराई गुड़ाई के यंत्रों में खुली रैक, हैंड कल्टीवेटर, हैंड फोर्क वीडर और हैंड फोर्क आदि का उपयोग किया जाता है। इनका विस्तार से उल्लेख अगले अध्यायों में किया गया है।

(ङ) बीजजात शिशु रोपण की देखभाल (To Care of nursery bed) नर्सरी प्रक्रिया में यह कार्य भी सबसे महत्त्वपूर्ण होता है; क्योंकि बीजजात शिशु पौधे ही पौधों के जीवन चक्र का सबसे ज्यादा कोमल भाग होता है। इन पर अकस्मात् ही आर्द्रता, उष्णता व वातायन का प्रभाव पड़ जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है जबकि अधिक जल से क्यारी काफी नम हो जाती है परिणाम स्वरूप कई प्रकार के कवक या फफूंदी (Fungi) शिशु पौधों को रोगग्रस्त कर देते हैं। इनकी जड़ें गलने लग जाती हैं। ऐसी दशा में कम जल देने से और बोर्डो घोल की 3 : 3 : 50 के अनुपात के छिड़काव करने से पौधों को काफी सीमा तक बचाया जा सकता है। दूसरे प्रकार के लिए भी तांबे की कवक नाशक दवाइयों (Copper Fungicides) का प्रयोग किया जा सकता है। बुवाई से पूर्व अगर ऐग्रोसन 'जी' का 1/4 अंश 5 किलोग्राम बीजों में मिला दिया जाए तो इससे भविष्य में पौधों में होने वाली बीमारियाँ रोकी जा सकती हैं। फलतः अंकुरण भी जल्दी हो जाता है। आर्द्रगलन की बीमारी उस स्थिति में अधिक होती है जबकि भूमि में पानी का निकास अच्छी तरह से न हो। अतः क्यारियों की मिट्टी हल्की, रंध्री (Porous) और उप मिट्टी (Sub Soil) भी खुली होनी चाहिए। इससे जल का यथाशीघ्र ही परिस्रवन (Percolation) हो जाता है। चीटियाँ भी रोपण

प्रक्रिया में काफी क्षति पहुँचाती हैं। ये बीजों को खा जाती हैं अथवा उठाकर ले जाती हैं। इसे रोकने के लिए रोपण में डी० डी० टी०, की धूलन (Dusting) करना चाहिए।

(घ) पौध तैयार करना (Seedling)—यह सदा वर्षाकाल में तैयार करनी चाहिए; क्योंकि इस समय लगाई गई पौध को जमने में केवल दो तीन सप्ताह का ही समय लगता है।

खादों का सम्मिश्रण (MIXING OF MANURES)

सभी खादों अथवा उर्वरकों को एक दूसरे के साथ नहीं मिलाना चाहिए। इससे कभी-कभी ऐसी रासायनिक प्रक्रियाएँ होने लग जाती हैं जो पौधों को क्षति पहुँचा सकती हैं अथवा उर्वरक का मूल रूप ही मिटा डालती हैं। अतः इनके मिश्रण के विषय में ये बातें अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए।

1. चूने वाली खादें, यथा कैलशियम साइनामाइड, कैलशियम नाइट्रेट, कैलशियम ऑक्साइड या राख आदि को एमोनियम सलफेट, यथा नाइट्रोजन वाले खाद के साथ कदापि नहीं मिलाना चाहिए; क्योंकि इस मिश्रण को रखने से नाइट्रोजन की कुछ मात्रा उड़ जाती है।

2. सुपर फॉस्फेट के साथ भी चूने वाले खाद न मिलाएँ। राख को भी कभी मिलाकर नहीं रखना चाहिए; क्योंकि सुपर फॉस्फेट का घुलनशील फॉस्फोरस अघुलनशील रूप धारण कर लेता है।

डॉ० ऑस्टियड (Dr. Anstiad) के मतानुसार भी कुछ विशेष प्रकार के उर्वरकों को किसी भी दशा में परस्पर नहीं मिलाना चाहिए। यदि मिश्रण की आवश्यकता ही समझी जाए तो उसे उद्यान में डालते समय ही मिलाना चाहिए।

पौधों के द्वारा खाद की मांग व चिह्न—पौधों की विभिन्न स्थितियों में उनकी मांग के अनुसार ही खाद देनी चाहिए। पौधों के अन्दर किसी भी तत्व की कमी या उसकी अधिकता को समझना एक कठिन समस्या है; किन्तु साधारण रूप में उनके लक्षणों को समझने के लिए निम्न तालिका का अवलोकन किया जा सकता है।

पौधों के द्वारा खाद की माँग के चिह्न	माँग
1. अवरोधी बाढ़	चूना व फॉस्फोरस पेंटाक्साइड
2. कमजोर बाढ़, पीले पत्ते और बाद में पौधों का सूखना	नत्रजन
3. कमजोर बाढ़ और भूरा रंग	फॉस्फोरस पेंटाक्साइड
4. गहरे हरे पत्तों का मुड़ना	चूना
5. देरी से पकना	अधिक नत्रजन और फॉस्फोरस पेंटाक्साइड की कमी
6. पकने से पूर्व पत्ते झड़ना	नत्रजन, फॉस्फोरस पेंटाक्साइड और पोटैशियम ऑक्साइड
7. पत्तों का झुलसना	चूने की मात्रा अधिक
8. पत्तों में हरापन बराबर नहीं होना	पोटैशियम ऑक्साइड
9. फलों का झुलसना	नत्रजन
10. फलो का आकार बिगड़ा हुआ	पोटैशियम ऑक्साइड
11. बिल्कुल नही पकना	पोटैशियम ऑक्साइड की कमी

स्थानान्तर रोपण (TRANSPLANTING)

पौधों को बीज प्रसारण क्षेत्र से उठाकर उचित स्थानों पर लगाना 'स्थानान्तर रोपण' प्रणाली कहलाती है। इसके लिए पहले से ही तैयार की हुई योजना के अनुसार 3-4 मास पूर्व गड्ढे उनके स्थान के लिए तैयार कर लेने चाहिए। इन गड्ढों की चौडाई व गहराई कम से कम चार-चार सें० मी० मीटर होनी चाहिए। इन्हें अप्रैल मास में खोदना चाहिए। तत्पश्चात् अगले दो मासों मे इनकी मिट्टी निकाल कर उन्हें धूप में अच्छी प्रकार सुखाना चाहिए। फिर जून मास मे उस सुखी हुई मिट्टी मे 5:1 के अनुपात से गोबर की सड़ी हुई खाद अथवा कम्पोस्ट खाद मिलाकर गड्ढों को भर देना चाहिए। वर्षा की कुछ ही बौछारों से यह मिट्टी अच्छी तरह बैठ जाती है। अब इनमें बड़े-बड़े फल वृक्षादि आसानी से लगाए जा सकते हैं।

फलादि के वृक्ष लगाने का सर्वोत्तम समय जनवरी-फरवरी अथवा जुलाई से सितम्बर तक का होता है। इस समय में सिंचाई की असुविधा नहीं होती है। पतझड़ी वृक्ष सर्दियों में लगाने चाहिए। इस समय वे सुप्तावस्था में रहते हैं और

पुरानी पत्तियाँ झड़ती रहती हैं। अतः इनकी खुदाई करते समय हानि की सम्भावना नही के बराबर रहती है। पावस ऋतु मे सदा बहार व अर्द्ध पतझड़ी पौधे लगाना ठीक रहता है। सिंचाई की सुविधाएँ होने पर ये फरवरी के अंत में भी लगाये जा सकते हैं। इन्हें वसन्तकालीन वृद्धि से विशेष-लाभ पहुँचेगा और वर्षा ऋतु तक ये अच्छी प्रकार से जम चुके होंगे। पर इस बात का ध्यान रहे कि फरवरी मास मे वृक्षारोपण संध्या समय ही होनी चाहिए। वर्षा ऋतु में वृक्षारोपण ऐसे दिन होना चाहिए जबकि पानी की बौछारें पड़ रही हों या बादल छाए हुए हों।

फूल तथा सब्जियों के पौधों का स्थानान्तर रोपण उस स्थिति में ही करना चाहिए जब कि वे 12 सें० मी० से 20 सें० मी० तक ऊँचे हो गये हों। इन्हें उखाड़ने से पूर्व बीज प्रसारण खेत को सींच लेना चाहिए ताकि उखाड़ते समय इनकी जड़ों को कम-से-कम हानि पहुँच सके। इन्हें उखाड़ने से पूर्व इनकी एक तिहाई पत्तियों की छंटाई कर देनी चाहिए। फिर इन्हें क्यारियों मे इच्छित दूरी पर लगाना चाहिए। ऐसा करने से पौधे की जड़ों तथा पत्तियों का अनुपात ठीक हो जाता है। फलतः पत्तियों द्वारा वाष्पीकृत पानी की मात्रा जड़ों द्वारा शोषित जल की मात्रा से अधिक नही हो पाती है। इस प्रकार से अधिक-से-अधिक पौधे जड़ पकड़ लेते हैं। बाहर भेजे जाने वाले पौधों की नीचे से आधी पत्तियाँ और ऊपर की नई पत्तियाँ छाँट देनी चाहिए, इससे वाष्पीकरण की प्रक्रिया कम हो जाती और पौधों को लाभ पहुँचता है। इनकी जड़ों को गीली घास लपेटकर टाट या बोरी अथवा अलकाथीन से बाँध देना चाहिए। फिर इन्हें डलियों या बक्सों में रखकर बाहर भेजना चाहिए।

प्रायः देखा गया है कि घरों में छोटे-छोटे गमलों में पुष्प पौधे लगे रहते हैं। इन्हें बढ़ने पर तत्काल ही बड़े गमलों में अथवा गृह वाटिका की क्यारियों मे लगा देना चाहिए ताकि इनकी जड़ो को आवश्यकतानुसार स्थान, मिट्टी व खाद मिल सके। यदि ऐसा किसी प्रकार भी सम्भव न हो सकता हो तो कुछ समय बाद छोटे गमलों की मिट्टी बदल देनी चाहिए और नई खाद मिश्रित मिट्टी भर देनी चाहिए। इससे भी पौधो को उचित मात्रा मे आहार तत्त्व मिल जाता है। गमला बदलते समय पौधों की जड़ों मे लगी हुई मिट्टी को अलग नहीं करना चाहिए। इस स्थिति मे पौधे के तने को बायें हाथ के अगूठे व दूसरी उंगली के मध्य में हथेली फैलाकर पकड़ना चाहिए और गमले को दाहिने हाथ से उठाकर उलट देना चाहिए। इससे गमले की ऊपरी मिट्टी हथेली पर रहेगी। इसके बाद गमले की कोरों को धीरे-धीरे मजबूत तख्ते पर ठोकना चाहिए। इससे थापी नीचे खिसकने लगेगी। आवश्यकता पड़ने पर गमले के छिद्र द्वारा भी धक्का लगाया जा सकता है। फिर गमले से निकली हुई थापी को बायें हाथ की हथेली खोजिए और दायें हाथ से

गमले को उठा लीजिए। इसके बाद सावधानी से थापी की थोड़ी मिट्टी व नीचे की रेत आदि को हटा दीजिए। पौधों की बढ़ी हुई जड़ों को भी सावधानी के साथ काट देना चाहिए। फिर बड़े गमले के बीच मे थापी को रखकर नई खाद मिश्रित मिट्टी से दबा देना चाहिए। यदि पौधों का रोपण क्यारियों में करना है तो उनकी जड़ों का मूल भाग धरातल के नीचे रखना चाहिए। इसके लिए पौधे लगाये जाने वाले स्थान की भूमि को गहरा खोद लेना चाहिए ताकि उनकी जड़ें नीचे तक चली जाएं। फिर पौधों को चारों ओर से मिट्टी से दबा दें। रोपण वाले गमलों को पानी देने के बाद कुछ समय तक छायादार स्थान में रखना चाहिए। इसी प्रकार रोपण वाले स्थान में सिंचाई करने के बाद छाया का प्रबंध कर देना चाहिए।

जल संवर्धन (WATER CULTURE)

जल संवर्धन वह विधि है जिसके द्वारा पौधे जल में उगाये जाते हैं और उनकी वृद्धि के सभी आवश्यक तत्त्व (N,P,O, Ca, S, mg, Fe, Cu, Zn, C, H_2, Mn, Ci, O_2, B, Mb) उस जल में मिले होते हैं। इस विधि में पौधों को मिट्टी की आवश्यकता नही रह जाती है तथा ऐसा ध्यान रखा जाता है कि उनकी वृद्धि के लिए उचित मात्रा में ऑक्सीजन भी मिलती रहे। हर प्रकार के फल्य सस्य पौधों को उगने के लिए किसी न किसी तरह के माध्यम की आवश्यकता पड़ती है जैसे मिट्टी, रेत और पानी नीदरलैंड व इजरायल आदि देशों में जन संख्या के अनुपात में भूमि कम है और दलदल वाली है। ऐसी स्थिति में सस्यों का उत्पादन एक विकट समस्या बन जाती है। इसके समाधान के लिए वैज्ञानिकों ने खोज की, जिनमें से डॉ० डब्ल्यू० एफ० गैरीड (Dr. W. F. Gerid) अग्रणी वैज्ञानिक हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बिना मिट्टी के सस्य उत्पादन जल, बालू और ग्रेवल आदि का संवर्धन तैयार करके किया जा सकता है तथा वे इस नए शब्द 'Hydroponles' के जन्मदाता कहलाए। इसके द्वारा सब्जियों व पुष्पों का उत्पादन अधिक मात्रा में किया जा सकता है।

जल संवर्धन में पौधे उगाना (Techniques of Water Culture)—इस प्रक्रिया के लिए सबसे पहले जल का घोल तैयार करना पड़ता है। इसमें पौधों की बढ़ोतरी के सभी उपर्युक्त आवश्यक तत्त्व उचित मात्रा में मिलाये जाते हैं। इस घोल को बारह इंच लम्बी कांच की टब मे भरकर इसे मोटे गत्ते से ढक देना चाहिए जिसके बीच मे इतना बड़ा छेद हो, जिसमें छोटा पौधा आसानी से निकल सके। फिर इसमें से छोटे पौधे को घोल में इस प्रकार लटकाना चाहिए कि उसकी जड़ें घोल में डूबी रहें। इस विधि में निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए :—

1. घोल में हवा का आवागमन सुचारू रूप से रहना चाहिए ताकि पौधा आसानी से ऑक्सीजन ग्रहण कर सके।

2. पौधे की वृद्धि के लिए जल घोल का मूल्य pH 5.5 से 6.5 के बीच रहना चाहिए। इसके लिए प्रयोग किए जाने वाले जल में गंधक का अम्ल (Sulphuric Acid) थोड़ी मात्रा में मिला देना चाहिए। जब कभी जल अम्लीय होने के कारण उसकी *pH value 5.5* से भी कम हो तो उसमे कॉस्टिक सोडा (Sodium Hydroxide) अथवा कॉस्टिक पोटाश (Potassium Hydroxide) मिलाकर जल की pH value को 5.5 से 6.5 के बीच में क़ायम रखा जा सकता है।

pH का परीक्षण—इसके परीक्षण के लिए एक कागज को सूचक (इन्डीकेटर) में डुबो लेना चाहिए। यह सूचक क्षार में नीला तथा अम्ल में रंग लाल देता है। कागज के सूचक में डूबते ही उसका रंग बदल जाता है। इस रंग को मानक चार्ट से मिलाने से यह पता लग जाता है कि इसमे कितनी अम्लीमता है।

जल घोल को 15 दिन के अन्तर से बदलते रहना चाहिए। इससे फफूंदी (Fungus) नहीं लगने पाती है। यह ताजा बना रहता है और पौधे आवश्यक तत्त्व आसानी से लेते रहते हैं।

इस प्रकार के पौधे उगाने से पूर्व इनके बीजों को सर्वप्रथम मिट्टी में अंकुरित करना पड़ता है। जब इनमे जड़ें फूट जाती हैं तब इनकी पुनः वृद्धि के लिए घोल मे परिवर्तित (Transfer) कर देते हैं। इनके लिए कंकरीट, ग्रीट, मेटल और लकड़ी के बने हुए टैंक होते हैं। इनमें ही रासायनिक घोल भरे जाते हैं और यथा समय घोल में ऑक्सीजन देने के लिए इनके पास एक पम्प और एक खाली टैंक का भी आयोजन होता है।

जल घोल तैयार करना—यह पौधों की प्रकृति के अनुसार तैयार किया जाता है। सब से पहले उन पौधों के तत्त्वों की जानकारी हासिल की जाती है, जिनके लिए घोल तैयार किया जाता है। फिर उन्हें विशेष अनुपात में मिलाया जाता है। इसमें तत्त्व की मात्रा को PPM (Port Par million) में क्रिया जाता है। जल घोल तैयार करने में सिर्फ़ कैल्सियम, लोहा और मैंग्नीसियम को ही विशेष महत्त्व दिया जाता है। अधिकांशतः नगरों के जल में क्लोरीन मिली रहती है; किन्तु जब तक इसकी मात्रा 10 PPM से ज्यादा न हो तक पौधों की वृद्धि को यह प्रभावित नहीं करती है। यहाँ पर एक विशेष प्रकार के घोल तैयार करने की विधि दी जा रही है—

तत्वों के नाम	संकेत	तत्वों की मात्रा PPM
आयरन	Fe	5 ppm (Part per million)
कैल्सियम	Ca	250 ppm (" " ")
कॉपर (तांबा)	Cu	$\frac{1}{3}$ ppm (" " ")
जिन्क	Zn	$\frac{1}{2}$ ppm (" " ")
नाइट्रोजन (नत्रजन)	N	200 ppm (" " ")
पोटैशियम	K	200 ppm (" " ")
फॉस्फोरस	P	65 ppm (" " ")
बोरॉन	B	1 ppm (" " ")
मैग्नीसियम	Mg	50 ppm (" " ")
मैंगनीज	Mn	1 ppm (" " ")

जल संवर्धन में सस्य उत्पादन से लाभ

जल संवर्धन में सस्य उत्पादन से निम्नलिखित लाभ हैं—

1. शहर में रहने वाले जिनके पास भूमि नहीं है, सब्जियाँ तथा फूल छतों पर उगा सकते हैं।
2. साधारण कृषि की अपेक्षा जल कम लगता है।
3. सस्य पौधे खरपतवार तथा बीमारियों के आक्रमण से बचे रहते हैं। अतः कृषि क्रियाओं में काफी कमी हो जाती है।
4. पौधों को सभी आवश्यक तत्वों की उपलब्धि सही-सही अनुपात में होने से पौधों में समुचित रूप से वृद्धि होती है तथा सब्जियों तथा फूलों के गुणों में काफी सुधार हो जाता है।
5. पौधों के पास-पास उगने के कारण प्रति एकड़ उपज अधिक होती है।
6. उर्वरकों की कम मात्रा लगती है।
7. जीवांश खाद की आवश्यकता नहीं रहती है।
8. प्राकृतिक प्रकोप के ऊपर अच्छी प्रकार नियंत्रण रखा जा सकता है।
9. बिना मौसमी सब्जियाँ उगायी जा सकती हैं, बाजार से उनको ऊँची कीमत पर बेचा जा सकता है।

जल संवर्धन में सस्य उत्पादन से हानियाँ

जल संवर्धन में सस्य उत्पादन से निम्नलिखित हानियाँ हैं—

1. यह तकनीकी प्रणाली है। हरेक कृषक की समझ से बाहर की बात है। अतः हरेक कृषक इस विधि में सफल नहीं हो सकता है।
2. इस प्रकार के सस्य उत्पादन के लिए टैंक बनवाने में अधिक व्यय करना पड़ता है। इस कारण यह साधारण कृषि की उपेक्षा काफी महंगी पड़ती है।

सारांश

1. गृहवाटिका व कक्ष शोभा के लिए गमलों का विशिष्ट स्थान है।
2. गमलों का चयन पौधों के आकार के अनुसार करना चाहिए।
3. गमलों को पहले सफ़ाई करनी चाहिए फिर उनकी तलहटी मे कंकड़ या मिट्टी के टुकड़े, बालू, दो तिहाई भाग पत्तों की खाद, एक तिहाई भाग में दोमट मिट्टी चारकोल व चूना मिलाकर भरनी चाहिए।
4. सिंचाई के लिए फव्वारे का प्रयोग करना चाहिए।
5. गमलों की देखभाल अच्छी तरह करनी चाहिए—(i) सूर्य के ताप से बचाना चाहिए (ii) द्रव खाद का प्रयोग करना चाहिए (iii) दीमक, केंचुआ और भूमिगत कीट ग्रस्त आदि से पौधों की रक्षा करनी चाहिए।
6. नर्सरी के तीन वर्ग हैं—(i) शीतकालीन नर्सरी (ii) ग्रीष्मकालीन नर्सरी (iii) वर्षाकालीन नर्सरी।
7. नर्सरी में मिट्टी, बीज बोना, निराई-गुड़ाई, बीज जात शिशु रोपण की देखभाल और पौध तैयार करना आदि बातों का ध्यान रखा जाता है।
8. सभी खादों व उर्वरकों को एक साथ नही मिलाना चाहिए।
9. पौधों को बीज प्रसारण क्षेत्र से उठाकर उचित स्थानों पर दोबारा लगाना स्थानान्तर रोपण कहलाता है।
10. जल सवर्धन विधि मे पौधे जल घोल मे उगाए जाते हैं।
11. पौधों की वृद्धि के लिए जल घोल का मूल्य pH 5.5 से pH6.5 के बीच रहना चाहिए।
12. सूचक में कागज डुबोने से अलग-अलग रंग दर्शाता है।
13. रंग को मानक चार्ट से मिलाने से उसकी अम्लीयता का पता चल जाता है।
14. जल घोल को 15 दिन के अन्तर से बदलते रहना चाहिए।
15. जल घोल के बदलते रहने से फफूंदी नही लगने पाती है।

16. जल संवर्धन में पौधे उगाने से पूर्व उनके बीजों को सर्वप्रथम मिट्टी में अंकुरित करना पड़ता है।
17. जल संवर्धन सस्य उत्पादन के लिए कंकरीट, शीट, मेटल और लकड़ी के टैंक तैयार करने पड़ते हैं।
18. जल घोल पौधों की प्रकृति के अनुसार ही आवश्यक तत्वों के मिश्रण से तैयार किया जाता है।
19. जल घोल तैयार करने में कैल्सियम, लोहा और मैग्नीसियम को ही विशेष महत्त्व दिया जाता है।
20. किसी विशेष प्रकार का घोल तैयार करने में तत्वों की मात्रा इस प्रकार रहनी चाहिए—आयरन 5PPm, कैल्सियम 250PPm, कौपर $\frac{1}{2}$ PPm, जिन्क $\frac{1}{2}$PPm, नाइट्रोजन 200PPm, पोटैशियम 200 PPmm फॉस्फोरस 65PPm, बोरॉन 1 PPm, मैग्नीसियम 50PPm मैगनीज।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1. उद्यान कला में गमलों का क्या महत्त्व है? ये कितने प्रकार के होते हैं?

प्रश्न 2. (क) गृह वाटिका के लिए गमलो का चयन किस प्रकार करोगे?
(ख) गमलों का भराव किस प्रकार करोगे?
(ग) गमलो में पौधे लगाते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

प्रश्न 3. (क) वार्षिक समय के विचार से नर्सरी को कितने भागों में बाँटा जा सकता है?
(ख) नर्सरी तैयार करने के लिए किन-किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

प्रश्न 4. खादों के सम्मिश्रण से क्या अभिप्राय: है?

प्रश्न 5. स्थानान्तर रोपण प्रणाली के विषय में क्या जानते हो?

प्रश्न 6. जल संवर्धन से क्या अभिप्राय: है? इसमें सस्य उत्पादन किस प्रकार किया जा सकता है?

प्रश्न 7. जल संवर्धन के घोल तैयार करने की विधि बताइए?

प्रश्न 8. जल संवर्धन में सस्य उत्पादन से क्या-क्या लाभ व हानियाँ हैं?

प्रश्न 9. रिक्त स्थानों को भरिए :—
(क) ···का चयन···के आकार के अनुसार ही रहना चाहिए।
(ख) गमलों का···भाग···अथवा···खाद से भरना चाहिए।
(ग) गमलों की सिंचाई···से करनी चाहिए।

(घ) ···की क्यारियों में···निरंतर करनी चाहिए।

(ङ) ···जैसा छोटा जीव भी···प्रक्रिया में हानि पहुँचाता है।

(च) पौधों को···प्रसारण क्षेत्र से उठाकर उचित स्थानों पर दोबारा लगाना···प्रणाली कहलाता है।

(छ) ···विधि के द्वारा···जल में उगाए जाते हैं।

(ज) ···क्षार व अमल में अलग-अलग···दर्शाता है।

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. विद्यालय के प्रांगण में नर्सरी तैयार करो और उसकी समुचित देख-भाल करो।

प्रश्न 2. अपनी गृह वाटिका के लिए अलंकृत पौधों के गमले तैयार कीजिए।

प्रश्न 3. विद्यालय के प्रांगण में क्यारियाँ तैयार करके नर्सरी में से पौधों का स्थानान्तरण कीजिए।

प्रश्न 4. विभिन्न प्रकार की फूल-पत्तियाँ एकत्रित करके एलबम तैयार कीजिए।

प्रश्न 5. जल सवर्धन का घोल तैयार कीजिए।

उद्यान की देखभाल | 6
(CARE AND UPKEEP OF A GARDEN)

प्रस्तावना (INTRODUCTION)

उद्यान लगाने के बाद उसकी देखभाल करना बहुत ही आवश्यक है। वृक्षों के पूर्णफलन के लिए समय-समय पर वृक्षों तथा उनकी जड़ों की काट-छाँट अत्यन्त आवश्यक होती है। इसके अलावा पौधों की सुरक्षा हानिकारक कीट व रोग, खरपतवार, ओले, पाला, लू, तीव्रवर्षा और सूर्य के तीव्र ताप आदि से करना भी आवश्यक होता है। समय पर सिंचाई एवं निराई-गुड़ाई करना और कभी-कभी वृक्षों या पौधों के ऊपर हारमोन (Hormone) इत्यादि का छिड़काव करना भी आवश्यक हो जाता है। हरा-भरा उद्यान तथा उससे प्राप्त होने वाली अच्छी उपज इन उपर्युक्त प्रक्रियाओं का ही परिणाम है।

भू-परिष्करण (INTER CULTURE)

किसी भी सस्य के उत्पादन के लिए खेत में जुताई, पाटा चलाना, हैरो अथवा कल्टीवेटर का प्रयोग करके बीज बोने की क्रियाएँ की जाती हैं। इन बीजों के अंकुरण के बाद उनकी वृद्धि हेतु जो कृषि कार्य किए जाते हैं,

वे भू-परिष्करण (Inter Culture) कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में भू-परिष्करण से अभिप्रायः उन समस्त क्रियायों से है जो बीज अंकुरण से लेकर पौध के कटने तक की जाती हैं। इन क्रियाओं का उद्यान कला में विशेष महत्व है; क्योंकि फल वाले पौधे और अलंकृत पौधों के बीज बोने के बाद से ही उनकी विशेष रूप से देखभाल करनी पड़ती है। भू-परिष्करण के अन्तर्गत निम्नलिखित चार प्रकार की क्रियाएँ की जाती हैं :—

(क) भूमि की गुड़ाई
(ख) घास-पात की निराई
(ग) मिट्टी चढ़ाना
(घ) अवरोध परत बनाना

(क) भूमि की गुड़ाई—भू-परिष्करण की इस पहली प्रक्रिया का उद्यान कला में विशेष महत्व है; क्योंकि वाटिका में लगायें गए अलंकृत पौधों को अपनी जड़ें फैलाने के लिए बहुत ही अधिक भुरभुरी मिट्टी की आवश्यकता पड़ती है। ये अलंकृत पौधे अत्यन्त कोमल होने के कारण सख्त धरती में फैलने में असमर्थ रहते हैं। इस क्रिया से इन्हें फैलने व बढ़ने मे सुविधा हो जाती है। खुर्पी या खुदाली आदि से भूमि की गुडाई हो जाने से अलकृत पौधों को इच्छित मात्रा में अपना आहार मिल जाता है और हवा भी आसानी से भूमि के भीतर पहुँच जाती है भूमि नमी को अधिक सोख लेती है।

(ख) घासपात की निराई—भू-परिष्करण की यह दूसरी क्रिया भी पहली के साथ-साथ ही चलती रहती है। इससे अभिप्रायः यह है कि गुड़ाई करते समय माली या गुड़ाईकर्ता क्यारियों में से घास-पात निकालता रहता है। घास-पात की निराई करना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि यह क्यारियो में आने के बाद पौधों का आहार स्वयं लेते रहते हैं। इससे पौधों को समुचित आहार नहीं मिल पाता है। इस कारण उनकी वृद्धि रुक जाती है। दूसरे क्यारियों में उगे हुए आस-पास अलंकृत पौधों को बढ़ने व फैलने में भी रुकावट डालते हैं। अतः इनको निकालकर फैंक देने में ही हित हैं। यह कार्य खुर्पी आदि हाथ के औज़ार से करना चाहिए ?

(ग) मिट्टी चढ़ाना—कुछ फल वाले बड़े पौधे ऐसे होते हैं, जिन्हें सीधे खड़े रहने के लिए मिट्टी का सहारा चाहिए। ऐसे फल वाले पौधो की इस प्रक्रिया द्वारा मिट्टी चढ़ायी जाती है। फूलगोभी, आलू, ईख और मक्का आदि।

(घ) अवरोध परत बनाना—भू-परिष्करण में इस क्रिया का भी विशिष्ट स्थान है। इसकी निर्मिति भूमि से मृदा जल को उड़ने से बचाने के लिए की जाती है। गृह वाटिका भी उद्यान में पौधों को लगाने के बाद और बीज बोने के बाद सिंचाई की जाती है। यह सिंचाई जल कुछ एक पौधों द्वारा और कुछ उद्यान

या वाटिका की मिट्टी द्वारा शोषित कर लिया जाता है और कुछ का भाग नष्ट होता रहता है। यह जल निम्नलिखित दो प्रकार से नष्ट होता है:—

(i) उत्सवेदन क्रिया द्वारा

(ii) वाष्पीकरण क्रिया द्वारा

(i) उत्सवेदन क्रिया द्वारा—इसमें पौधे अपनी पत्तियों द्वारा जल को भाप के रूप में बाहर निकालते रहते हैं। यह जल पौधों के तापक्रम को नियमितता देने में और रसारोहण (Ascent of sap) में मदद पहुँचाता है और अधिक जल इस क्रिया के द्वारा बाहर निकल जाता है।

(ii) वाष्पीकरण क्रिया द्वारा—इसमें भूमि से मृदा जल (Soil Water) सूर्य के ताप से भाप बनकर उड़ता रहता है, इसे रोकने के लिए भूमि की सतह पर एक पतली-सी परत पुवाल, घास या अल्कथीन कागज आदि की बनायी या बिछायी जाती है। यह परत अवरोध परत कहलाती है। इसका निर्माण दो रूपों में किया जाता है—

(क) कृत्रिम अवरोध परत

(ख) प्राकृतिक अवरोध परत

(क) कृत्रिम अवरोध परत—इसे बनाने के लिए पौधों की क्यारियों में सूखी पत्तियाँ अथवा घास-फूस की एक पतली-सी तह बिछा दी जाती है। इससे सूर्य की किरण सीधी भूमि की सतह पर नहीं पड़ती है और मृदाजल कम भाप बनकर उड़ पाता है। इससे क्यारियों में नमी बनी रहती है।

(ख) प्राकृतिक अवरोध परत—जब उद्यान या गृह वाटिका में जुताई के उपरांत पाटा चलाया जाता है या गुड़ाई के उपरांत मिट्टी को भुरभुरा बना लिया जाता है तब इस मिट्टी की ऊपरी परत सूखकर एक बिछाली का कार्य करने लग जाती है। यह ऊपरी परत ही प्राकृतिक अवरोध परत कहलाती है। यह भी मृदाजल को भाप बनाने से रोकती है और नीचे की नमी सुरक्षित बनी रह जाती है।

खरपतवार (तृणक) और उनका नियंत्रण
(WEEDS AND THEIR CONTROL)

खरपतवार (तृणक) पौधों को विकसित नहीं होने देता है। इस कारण आदि काल से ही मनुष्य इस प्रकार के अवांछित पौधों की उत्पत्ति का विरोध करता रहा है। 'ऐसे अवांछित पौधे (Plants) जो हानिकारक होते हैं, इस कला के विकास में भी कृषि कार्य में बाधक हैं, खर्च बढाते हैं और उपज को कम कर देते हैं। इस प्रकार के अवांछित एवं हानिकारक पौधे जो बिना बोए अपने आप ही उग जाते हैं, खरपतवार या तृणक (Weeds) कहलाते हैं। भूमि में

मौजूद प्राय: दस लाख पौधों की जातियों के चौथे भाग के अलावा कुल पौधे इस प्रकार के होते हैं जिनके खरपतवार लक्षण होते हैं। ये असंख्य पौधे आकार, रूप व गुणों के भिन्न होने के अलावा भी धरातल के हर कोने में मिलते हैं। इनमें से कुछेक खाद्यान्न होने के कारण हमारे लिए लाभदायक भी होते हैं।

फलोद्यान में खरपतवारों से हानि सिर्फ तभी अधिक होती है जबकि फल पौधे छोटी अवस्था में रहते हैं। इनसे हुई हानि उपज के अनुसार कुल व्यय का प्राय: २० प्रतिशत तक होता है। जहाँ पर सिंचाई की विशेष सुविधाएँ रहती हैं वहाँ खरपतवार जल की अपेक्षा पौष्टिक तत्त्वों का अधिक शोषण करते हैं। इससे फल पौधे अपने महत्त्वपूर्ण आहार से वंचित रह जाते हैं। ये नए लगाये गए पौधों की वृद्धि में रुकावट पैदा करते हैं और इस अवस्था में भी निस्संदेह दोनों प्रकार के पौधों में जल के लिए स्पर्धा (Competition) हो जाता है। खरपतवार अन्यान्य कई प्रकार से शिशु पौधों को हानि पहुँचाते हैं। अतः इन पर नियंत्रण रखना आवश्यक हो जाता है। यहाँ पर खेतों में होने वाले वार्षिक और वर्षानुवर्षगत घास-पात की तालिका दी जा रही है—

वार्षिक और वर्षानुवर्षगत घास-पात तालिका

वैज्ञानिक नाम	हिन्दी नाम
वार्षिक खरपतवार	
1. एमरेन्टस स्पाइनोसस	जंगली चौलाई
2. एनेगेलिस आॅरवेंन्सिस	कृष्णनील
3. एस्कोडेलस टेन्यूकोलियस	प्याजी
4. आरजिमोन मेक्सीकाना	सत्यानाशी
5. आयपोमिया हेडेरेसिया	कलदाना
6. इंडीगोफेरा एनुअपतिस्ता	गलफुलन
7. क्लीमो विस्कोसा	हुलहुल
8. कन्वालवुलस आॅरवेन्सिस	हिरनखुरी
9. कनाइकस आॅरवेन्सिस	गोखरू
10. कारथेमन आॅक्सीएकेन्था	पोहली
11. कोरकोरस ट्रिडेन्स	जंगली जूट
12. गाइनेनड्रोप्सिस पेन्टाफोलिया	हुलहुल

13. चिनोपोडियम एल्बम	बथुआ
14. चिनोपोडियम मूरेल	खर बथुआ
15. ट्राएन्थिम मोनोगाइना	पत्थर चट्टा
16. ट्राएन्थिम पैंटेड्रा	विष खपरा
17. डेटूरा	धतूरा
18. डेसमोडियम ट्राइल्फोरम	तिपतिया
19. डायजेरिया आरवेन्सिस	लेहसुवा
20. फ्यूमेरिया पर्विफ्लोरा	पित पापड़ा
21. प्लुचिया लेंसिओलेटा	बायसुरी
22. पपेवर रिआज	लाल पोस्त
23. पेगेनम हरमल	हरमल
24. पोरचुलाका ओलेरेसिया	कुलफा
25. पोरचुलाका क्वाड्रिफिडा	खट्टे चावल
26. बोरहेविया रेपन्स	इटसिट
27. मेडिकेगो डेंटिक्युलेटा	मेना
28. मेलीलोटस इंडिका	सेंजी
29. मेलीलोटस एल्बा	सेंजी
30. यूफोर्बिया हिर्टा	दुधी
31. यूफोर्बिया थायमिफोलिया	छोटी दुद्धी
32. सटेरिया ग्लौका	बन्दरा बन्दरी
33. सीडा कार्डिफोलिया	बाला
34. सोलेनम नाइग्रम	मकोय
35. सोलेनम जेन्थोकार्पम	कन्डमारी
36. विथानिया सोमनीफेरा	अकसन
37. विसिया हिरस्युटा	मुनमुना
38. हेलियोट्रोपियम सुपिनम	ऊँट कटरा

बर्षानुवर्षगत खरपतवार

1. कैलोट्रापिस प्रोसेरा	आक, मदार
2. जीजीफस जुजुबं	बेरी
3. जीजीफस रोटेंडिफोलिया	झरबेरी
4. सायनोडान डेक्टिलान	दूब
5. सेकेरम स्पान्टेनियम	कांस
6. सोरघम हेलिपेंस	बरूघास

निम्न बातों की ओर ध्यान देना चाहिए :

(क) अवरोध परत द्वारा खरपतवारों की रोकथाम करना।

(ख) भू—परिष्करण द्वारा खरपतवारों को रोकना।

(ग) खरपतवारों को जल द्वारा नष्ट करना।

(घ) सस्य चन्द्र पद्धति को अपनाना।

(3) जैविक विधियाँ—इन विधियों के द्वारा खरपतवारों की रोकथाम के लिए कीटों, रोगाणुओं और अनेक प्रकार की वनस्पतियों का प्रयोग किया जाता है। इनका प्रचलन हमारे देश में नहीं हैं; किन्तु कुछ देशों मे ऐसे कीटों को प्रोत्साहन दिया जाता है जो खरपतवारों (तृणकों) को नष्ट कर देते हैं। यथा ऐग्रोमाइजा लैनटिनी नामक कीट की सुंडी लैनटिनी केमरा घास को रोकती है। यह हवाई द्वीप में होता है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया में नागफनी की रोकथाम केक्टोब्लासटिस नामक कीट की सुंडी के द्वारा की जाती है। दक्षिण भारत में खरपतवार नामक कीट को नष्ट करने के लिए डैक्टईलोपियस टेमन्टोपास कीट का प्रयोग किया गया है। इसमें काफी सफलता भी मिली है।

(iv) रासायनिक विधियाँ—इन मे खरपतवारों को नष्ट करने के लिए कई प्रकार के रसायनों का प्रयोग किया जाता है। जो दो प्रकार के होते हैं।

(1) सलेक्टिव हरबीसाइड

(2) नॉन सलेक्टिव हरबीसाइड

(1) सलेक्टिव हरबीसाइड—उनका प्रयोग खड़ी फसल पर चौड़ी पत्तियों वाले खरपतवारों को खत्म करने के लिए किया जाता है। इन्हे तीन उप विभागों मे बांटा सकता है :—

(क) स्ट एप्लीकेशन—इसमें रसायनों को धरती में छिड़ककर खरपतवारो की जडों को खत्म कर दिया जाता है। यथा 2,4-डी, टी० सी० ए०, आई० पी० सी० आदि।

(ख) कान्टेक्ट हरबीसाइड—इनके अन्तर्गत पोटेशियम साइनेड, पैट्रोलियम तेल, कॉपर सल्फेट, फ़ेरस सल्फेट, सल्फ्यूरिक एसिड साइनेमाइड और कैलशियम आदि आते हे। ये अपना प्रभाव तभी दिखाते हैं जब पौधे पौधो के सम्पर्क में आने वाले खरपतवार के भागों को नष्ट कर के सम्पर्क में आते हैं।

(ग) ट्रान्सलोकेटेड हरबीसाइड—इनमे 2,4 डी, एम० सी० पी० ए० आदि उल्लेखनीय हैं। ये पत्तियो की कोषाओं में प्रवेश कर खरपतवारों को नष्ट कर देते हैं।

(2) नॉन सलेक्टिव हरबीसाइड—इनके अन्तर्गत सोडियम आर्सेनाइड, डाईनाइ-ट्रोफीनोल्स, पी० सी० पी० आदि आते हैं। जो पौधों के ऊपरी भाग को स्पर्श करने के बाद उन्हें मार देते हैं।

कीट (INSECTS)

ईश्वरीय रचना में कुछ ऐसे कीट हैं जो मनुष्य के मित्र हैं; परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनके द्वारा सस्यों को हानि पहुँचती है। तुलनात्मक दृष्टि से सस्यों को लाभ पहुँचाने वाले कीटों की अपेक्षा हानिकारक कीटों की संख्या अधिक है। अतः सस्यों की रक्षा हेतु इनका ज्ञान आवश्यक हो जाता है—

1. कीटों की उत्पत्ति अण्डों से होती है। इनके छह पैर और चार पंख होते हैं। किसी किसी कीट जाति में पंखों का कायान्तर हो जाता है, यथा मक्खी में दो नीचे के पंखों के स्थान पर छोटी कील के आकार के 'हाल्टर' बन जाते हैं। किसी-किसी कीट जाति में बालकीट, इल्ली के पैर अवश्य ज्यादा होते हैं; किन्तु अगले छह पैर के सिवाय बाकी सब झूठे होते हैं। तरुणावस्था में इनका बिल्कुल लोप हो जाता है। खटमल जैसी कीट जाति के सभी पंखों का बिल्कुल लोप हो जाता है।

2. खान-पान की प्रकृति की दृष्टि से कीटों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—(i) कृतक (ii) चूषक। कृतक कीट वे होते हैं जो सस्यों के अंगों को काट कर खाते हैं। जैसे टिड्डे, टिड्डी, इल्ली आदि। चूषक कीट वे होते हैं जो सस्यों का रस चूस कर पोषण करते हैं जैसे मत्कुण खटमल व पतंग आदि। कुछ कीट ऐसे भी होते हैं जिनमें दोनों ही चीजें पायी जाती हैं।'

खान-पान की रीति के ज्ञान से कीट-नियंत्रक में विशेष रूप से मदद मिलती है। कृतक कीट के लिए इस प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया जाता है, जिन्हें खाकर वे मर जाएँ। इन औषधियों में से किसी एक को सस्यों के ऊपर छिड़क दिया जाता है। चूषक कीटों पर इन औषधियों का लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता है, क्योंकि ये कीट अपनी सूंडों को पौधों के अंगों में डालकर ही उनका रस चूसते हैं। इनको मारने के लिए 'स्पर्शज विष' का प्रयोग किया जाता है। इसके बदन पर गिरने मात्र से ही चूषक कीट नष्ट हो जाता है, यथा खटमल की देह पर मिट्टी के तेल की बूंद गिरते ही वह धनुषाकार होकर मर जाता है।

3. कुछ ऐसे भी कीट होते हैं जिनके जीवनकाल में एक तरह का ऐसा परिवर्तन आ जाता है कि युवा कीट के रूप से बिलकुल अनोखा होता है। इनके खान-पान का ढंग भी बदल जाता है, यथा तितली के बाल कीट कृतक होते हैं तो कायान्तर उपरांत पतंग व तितली चूषक हो जाती है। ऐसे कीट कायान्तरी कहलाते हैं और यह क्रिया कायान्तरण कहलाती है। इस कायान्तरी कीट में अलग-अलग वर्ग के बाल कीट के नाम अलग-अलग होते हैं। तितली वर्ग के बाल कीट 'इल्ली', भृंग के 'ग्रब' व मक्खी के 'मेगट' कहलाते हैं।

इन तीनों के बाल कीट 'डिम्भ' व अवस्था 'डिम्भी' कहलाती है। अकायांतर कीट के बाल कीट 'निम्फ' कहे जाते हैं। अकायान्तर कीटों के बदन पर निर्मोक बनते हैं और फटते रहते हैं। यह क्रिया निर्मोचन कहलाती है।

4. कीट दिनचर व रात्रिचर दो तरह के होते हैं। (1) दिनचर कीटों जैसे तितलियों और (2) रात्रिचर कीट जैसे पतंग।

5. कुछ एक कीटों में ज्यादातर शीत पार करने की क्षमता होती है। ये बिना खान-पान के ही इस स्थिति को पार कर जाते हैं। यह क्रिया शीत-निष्क्रमण कहलाती है।

6. जिस कीट का मुख्याहार जिस जाति का पौधा होता है, वह पोषक कहलाता है।

हानिकारक कीटों का वर्गीकरण (INSECT PEST)

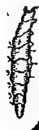
सस्यों को क्षति पहुँचाने वाले कीटों को निम्नलिखित दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(i) कायान्तर कर्ता कीट

(ii) अकायान्तर कीट

कायान्तरकर्ता कीट (LAPIDOPTERA)

(क) तितलीवर्ग—इसके अन्तर्गत दिनचर व रात्रिचर दोनों प्रकार के कीट आते हैं। मादा कीट सस्यों के पत्तों व अन्य अंगो पर अण्डे देती हैं। फिर उन अण्डों से इल्लियाँ निकल कर पौधों पर हमला कर देती हैं। डिम्भी अवस्था के पूर्ण होने पर अपने ऊपर कोष बना कर इल्लियाँ अपना कायान्तर किया करती हैं।



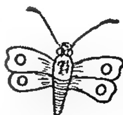
इल्ली



कोष



पतंग



तितली

चित्र—तितली वर्ग

और फिर तितली अथवा पतंग का रूप धारण कर लेती हैं। इनके कृतंक बाल कीट बहुत क्षति पहुँचाते हैं। इनका अंत अण्डे चुन कर अथवा आमाशय विष द्वारा किया जा सकता है। युवा कीट सस्यों के पुष्पों का रस चूसते हैं, अतः अपरोक्ष रूप से क्षति तो नहीं पहुंचाते; किन्तु अण्डे देकर वंश वृद्धि अवश्य करते हैं। इस प्रकार परोक्ष रूप से हानिकारक हुए। तितलियों का अंत हाथ जालो से पकड़ कर व पतंगों को प्रकाश पर आकर्षित करके किया जा सकता है।

(ख) भृंग वर्ग(Coleoptera)—ये कीट कवचपंखी कहलाते हैं। इनके ऊपरी पर बहुत सख्त होते हैं। इनकी मादा कीटपौधों के भीतर अण्डे देती है, जिनसे ग्रब निकलकर सस्यों के पौधों के भीतरी भाग को खाते रहते हैं। इससे पौधा सूखता चला जाता है। इस प्रकार के सूखे पौधों को जलाकर नष्ट करने में ही लाभ है।

(ग) मक्खी वर्ग (Diptera)—यह भी अन्य कीटों के समान सस्यों को क्षति पहुँचाता है। इस वर्ग की मक्खी घरेलू मक्खी से आकार में कुछ छोटी होती है। यह छोटी मक्खी फलों की मक्खी कहलाती है। इस वर्ग की मादा मक्खी फलो के छिलकों के नीचे अण्डे देती है। फूल के फल मे कभी-कभी काफी सख्या में 'मैगट' हिलते हुए दिखाई देते हैं। ये मैगट ही वास्तव में मक्खी के बाल-कीट होते हैं। पूर्णतया बढ़ जाने पर मैगट मिट्टी में गिरकर रूपान्तर किया करते हैं और मक्खियों का रूप धारण कर लेते हैं। इनका अंत करने का सबसे सरल उपाय यही है कि कीट वाले फल को नष्ट कर देना चाहिए अन्यथा मक्खियों को मारने के लिए प्रलोभिका विष का प्रयोग करना पड़ेगा।

अकायान्तर कीट

(क) टिड्डा-टिड्डी वर्ग(Orthoptera-Locust)—ये कीट मिट्टी में अण्डे देते हैं, जिनमें से 'निम्फ' निकलकर सस्यों के पौधों पर हमला कर देते हैं। यह कीट सब से खतरनाक होता है। यह सारी की सारी सस्यों का खात्मा कर देता है। इसके निम्फ काफी संख्या मे होते हैं। ये खेतों में फुदकते रहते हैं। ये 'फाका' भी कहे जाते हैं। इनका अन्त करने के लिए जगह-जगह पर एक फुट गहरी खाइयाँ खोदी जाती हैं और इन्हे एक ओर से हकारा जाता है। इस तरह ये आगे बढ़ कर खाइयों में गिर जाते हैं और उनमें से बाहर नही निकल पाते हैं। तत्पश्चात् औषध छिड़कर इनका अन्त कर दिया जाता है। इन्हें फ्लेम थ्रोवर से जलाकर भी मारा जा सकता है। कहीं-कही पर उनके मारने के लिए प्रलोभिका



टिड्डी

विप का भी प्रयोग किया जाता है।

(ख) दीमक वर्ग (Isoptera)—इस वर्ग के कीट सूखे काष्ठ अथवा सूखे कूड़ा करकट में ज्यादातर लगते हैं और जिन सस्य पौधों में जलकी कमी होती है, उन्हें भी क्षति पहुँचाते हैं। इनके हमले से गन्ना सफ़ेद पड़ जाता है। गेहूँ के पौधे सूख जाते हैं। इस वर्ग के टीलों में चार तरह के कीट रहते हैं—रानी, नर, सैनिक व श्रमिक। नरों के सम्पर्क से रानी सहस्रों की संख्या में अण्डे दिया करती है और श्रमिक उन्हें ले जाकर टीले के किसी क्षेत्र में रखकर पालन करते हैं। दीमक रानी इंच-डेढ़ इंच लम्बी छोटी उँगली जितनी मोटी होती है और एक ही स्थान पर पड़ी रहती है। इसके खान-पान की व्यवस्था भी श्रमिक ही करते हैं। इन श्रमिकों के द्वारा ही विशेषतः फसलों को क्षति पहुँचती है। इन्हे नष्ट करने के लिए टीलो में विषैली गैस छोड़नी चाहिए। इसके अलावा टीले को खोदकर रानी दीमक को मार देना चाहिए ताकि भविष्य में इनकी वंशवृद्धि न हो सके। सस्यों पर डी० डी० टी० का छिड़काव करने से भी दीमक कीट से रक्षा की जा सकती है।


नर


रानी


सैनिक


श्रमिक

दीमक

(ग) मत्कुण वर्ग (Hemiptera)—इस वर्ग के कीट कपास व भिण्डी आदि का रस चूसते हैं। ये 'निम्फ' अवस्था से ही क्षति पहुँचाने लगते हैं। इनका अन्त चुनकर किया जा सकता है।

(घ) लाही वर्ग (Homoptera)—इस वर्ग के कीट चंवली व सरसों के पौधों पर विशेष रूपसे पाये जाते हैं। इनके कारण फलियाँ काली-सी नजर पड़ती हैं। इनसे बचाने के लिए फलियों पर सूखी राख अथवा मिट्टी के तेल में भीगी हुई राख छिड़क देनी चाहिए। इन्हें तम्बाकू के काढ़े से भी मारा जा सकता है।

सब्जियों व फलों के हानिकारक कीट व नियंत्रण तालिका

क्र सं.	सब्जियों के प्रकार	सब्जियों या फलों के नाम	हानिकारक कीट व प्रभाव	नियंत्रण के उपाय
1.	कद सब्जियाँ	(क) आलू	टोबेको केटरपिलर, ग्रीजी सरफेस केटर पिलर और पतंग वर्ग के कीट की इल्लियां पौधों के पत्तों को खाकर नष्ट कर देती हैं।	(क) प्रलोभिका विष के द्वारा इल्लियों को नष्ट कर देना चाहिए। युवा कीट पतंग को प्रकाश की ओर आकर्षित करके मार देना चाहिए।
		(ख) पोटेटोमाथ	पतंग कीट का मादा आलू की आँखों में अण्डे देती है, जिनमें से इल्लियां निकलकर गोदाम में रखे आलुओं में सड़ान्ध पैदा कर देती है।	(ख) आलुओं को गोदामों में रखते समय रेत अथवा कोयले का चूर्ण मिला देना चाहिए अथवा ठंडे गोदामों का प्रयोग करना चाहिए।
		(ग) मकरकंद	इसे भृंग वर्ग के कीट का ध्व नष्ट कर डालता है।	खेतों में सकरकंदों को मिट्टी से ढककर रखना चाहिए।
2.	पत्ते, डंडी, फूल, व फलवाली सब्जियाँ	(क) हरी सब्जियाँ	पतंग वर्ग के कुछ कीटों की इल्लियां, साही, टिड्डे और भृंग वर्ग के कुछ कीट क्षति पहुँचाते हैं।	चुन कर नष्ट कर देना चाहिए या पौधों पर मिट्टी के तेल में भीगी हुई राख छिड़ककर नष्ट कर देना चाहिए अथवा प्रलोभिका विष का उपयोग करना चाहिए।

1	2	3	4	5
		(ख) तम्बाकू	छोटे पौधों को टिड्डे नष्ट कर डालते हैं। पतंग वर्ग की इल्लियाँ पत्ते खा जाती हैं।	बड़ी थैली घुमा घुमाकर खेतों में से टिड्डों को पकड़कर मार देना चाहिए। इल्लियों को चुन-चुन कर नष्ट कर देना चाहिए। युवा पतंग कीटों को प्रकाश पर आकर्षित करके मार देना चाहिए।
		(ग) ईख	पतंग जाति की इल्लियाँ इसकी जड़ तने और बढ़ती हुई कोपलों में छिद्र करके नष्ट कर डालती हैं। जड़वेधक से ईख का पौधा खत्म हो जाता है। तना वेधक से गन्ना बिगड़ जाता है और अगोलावेधक से बाढ आदि रुक जाती है।	जड़ वेधक इल्लियों को नष्ट करने के लिए उनके शत्रु कीट ट्रायकोग्रामा को ईख के खेतों में छुड़वाना चाहिए। अगोला वेधक से बचाने के लिए ईख को ऐसे समय पर बोना चाहिए ताकि बरसात आने तक पौधे काफी मजबूत हो जाएँ।
		(घ) पायरेला	मुत्कुण वर्ग के डिम्ब व हरे रंग के छोटे-छोटे युवा कीट इसके पत्तों का रस चूस लेते हैं और वे मुरझा जाते हैं।	प्रभावित पत्तों को छील देना चाहिए।
3.	कद्दूवर्गीय सब्जियाँ	(क) कद्दूवर्गीय	12 व 28 धब्बेवाले एपिलेकना नामक भृंग वर्गीय कीट क्षति पहुँचाते हैं।	चूने और तम्बाकू के चूर्ण का मिश्रण छिड़क देना चाहिए।
4.	फल	(क) खरबूजा व फूट	मक्खियों के मैगट्स क्षति पहुँचाते हैं। मक्खी मादा फलों पर छिलके के नीचे अण्डे देती है।	प्रभावित फलों को तत्काल जला देना चाहिए। प्रलोभिका विष द्वारा

1	2	3	4	5
				फल मक्खियों को नष्ट कर देना चाहिए।
		(ख) अंगूर	पतंग वर्ग के ऐसे कीट की इल्ली जिसकी दुम पर एक सींग का आकार होता है, पत्तों को खाकर नष्ट कर देती है।	ऐसी इल्लियों को चुनकर नष्ट कर देना चाहिए।
		(ग) अनार	एक तितली वर्ग की मादा अनार के पेंदे में जहाँ पर फूलों की पंखुडियाँ होती हैं अण्डे दे देती है। इल्लियाँ निकलकर फलों में प्रवेश कर फल सड़ा देती हैं।	सड़े हुए अनारों को फौरन जला देना चाहिए। शेष फलों पर कागज की थैलियाँ बाँध देनी चाहिए।
		(घ) आड़ू	काली पीलीधारी वाली मादा मक्खी आड़ू के छिलके में अण्डे देती है।	कीट वाले आड़ुओं को तत्काल जला देना चाहिए।
		(ङ) आम	धड़ छेधक भृंग वर्गीय कीट की इल्ली क्षति पहुँचाती है।	कीट के छिद्र में तारकोल गर्म करके डाल देना चाहिए अथवा क्लोरोफार्म व क्रियोसोट के बराबर मिश्रण में रुई का फोहा भिगोकर और उसे कीट के छिद्र में रखकर बंद कर देना चाहिए।
		(च) नीबू, संतरा	तितली की इल्ली इनकी कोपलों को खा कर नष्ट कर डालती है।	चुनकर नष्ट कर देना चाहिए।
		(छ) नारियल	भृंगवर्गीय कीट वृक्षों पर क्षति पहुँचाता है।	नारियल के वृक्ष का कोई घाव खुला नहीं छोड़ना चाहिए। उस पर गर्म करके तारकोल लगाना चाहिए।

सब्जियों व फलों के हानिकारक कीट व नियंत्रण

पिछले पृष्ठों में कंद सब्जियों, कद्दूवर्गीय सब्जियों, पत्ते, डंठी, फूल व फल वाली सब्जियों और फलों को हानि पहुँचाने वाले कीट व उनसे बचने के उपाय तालिका के रूप में दिए गये हैं—

कीट नियंत्रक उपचार व कीट नाशक औषधियाँ

विभिन्न प्रकार से कीट नियंत्रक उपचार किए जा सकते हैं। इन सब को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :—

(1) जैविक उपचार (2) रासायनिक उपचार (3) कर्षण उपचार (4) यांत्रिक उपचार (5) प्राकृतिक उपचार

(1) जैविक उपचार—इसके अन्तर्गत परजीवी द्वारा सस्य पौधों को क्षति पहुँचाने वाले कीट का नाश किया जाता है। इस श्रेणी में ट्रायकोग्रामा द्वारा गन्ने के मूल वेधक कीट से मुक्ति पाई जाती है।

(2) रासायनिक उपचार—इसमें जिन औषधियों का उपयोग किया जाता है, वे इस प्रकार हैं:—

(क) निकोटीन सल्फेट—इसका एक अंश जल के सहस्र भाग में अर्थात् 1/1000 में मिलाकर कीट नाश के लिए उपयोग किया जा सकता है।

(ख) तम्बाकू का काढ़ा—इसे तैयार करने के लिए एक किलो तम्बाकू को आध घंटे तक दस किलो जल में उबालकर छानना पड़ता है। तत्पश्चात् इसमें 250 ग्राम साबुन मिला देना चाहिए। उपयोग करते समय इस मिश्रण में सात गुणा जल और मिला देना चाहिए।

(ग) तेल साबुन मिश्रण—इस मिश्रण को तैयार करने के लिए ½ किलो साबुन दस किलो जल में उबालना चाहिए। फिर इसमें दस किलो मिट्टी का तेल धीरे-धीरे मिला देना चाहिए। इसमें भी उपयोग करते समय बीस गुणा जल और मिला लेना चाहिए। यह मिश्रण पत्तों में छिद्र कर देने वाले कीटों को मारने के लिए उत्तम है।

(घ) आमाशय विष—इसे तैयार करने के लिए एक भाग लेड आर्सीनेट का लेकर उसमें ढाई सौ भाग जल मिला देना चाहिए। इसे सस्य पौधों पर पम्प द्वारा छिड़कना चाहिए।

(ङ) प्रलोभिका विष—इसका प्रयोग टिड्डियों और फल मक्खी के लिए अलग-अलग करना पड़ता है। टिड्डी के लिए एक हिस्सा सोडियम सिलिकेट, दो हिस्से चोया और तीन हिस्से चोकड़ को जल से गीला करके खेतों में अलग-अलग ढेरियाँ बनाकर रखना चाहिए। टिड्डियाँ उन ढेरों पर जाकर बैठेंगी

और मुंह लगाते ही मर जायेंगी। फल मक्खियों को मारने के लिए २५० ग्राम लेड आर्सनिट, तीन किलो गुड़ और चालीस किलो जल में मिश्रण तैयार करके तथा तख्तों पर लगाकर उन्हें फल वृक्षों पर टांग देना चाहिए।

(च) गैस वाले विष—इनका प्रयोग आहारीय अन्नों के लिए ठीक रहता है। इनके धुएं से कीट मर जाते हैं। अतः इन्हें अन्न के गोदामों को कीट रहित करने के लिए अथवा अन्न को कीट रहित करने के लिए उपयोग में लिया जाता है।

(छ) अन्य विष—कॉपर कार्बोनेट की गणना भी विषों में ही की जाती है। इसके साथ रखने से बोने वाले बीज सुरक्षित रहते हैं। सौ भाग अन्न में आधा भाग दवा मिलानी चाहिए।

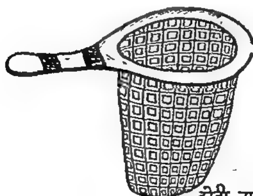
(ज) फौराथियान—इससे बीट लीफ होपर और बिहार हेमरी कैटर पीलर नामक शत्रु कीट नष्ट किए जा सकते हैं।

(झ) मैलाथियान—इसका 0.25 प्रतिशत (5 मि० लि० दवा प्रति लिटर) का छिड़काव करने से कीट आहार (तूरप्लुम माथ) को नष्ट किया जा सकता है।

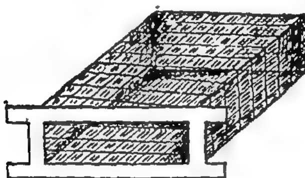
(ञ) इन्ड्रीन—0·04 प्रतिशत का छिड़काव करने से जूट से मी लूपर नामक कीट नष्ट किया जा सकता है। यह कीट जूट के पौधे के ऊपरी भाग को नष्ट कर देता है।

(3) कर्षण उपचार—इसके अन्तर्गत सस्य क्षेत्रों और उसके आस-पास की धरती को खरपतवार से वंचित रखा जाता है। कीट और उसके अंडों को मारने के लिए गर्मी के दिनों में भूमि की जुताई करा देनी चाहिए।

(4) यांत्रिक उपचार—इसका अधिकांशतः उपयोग टिड्डियों के आक्रमण से हरी भरी खेती को बचाने के लिए किया जाता है। जब टिड्डियों का झुण्ड


छोटी जाली

आता हुआ दिखायी दे तो ढोल, टीन या अन्य प्रकार की आवाज द्वारा उन्हें उतरने से रोकना और भगा देने का भरसक प्रयास करना चाहिए। इसके अलावा हाथ जालियों से पकड़कर भी टिड्डियों को मारा जा सकता है, यह जालियाँ दो प्रकार की होती हैं। छोटी जाली जालीदार कपड़े की होती है। इसका हत्था पकड़कर हाथ से झटका देने से जाली फूल जाती है और उड़ती हुई टिड्डियाँ आदि उसमें घुस जाती है। बड़ी जाली आयताकार बनायी जाती है। इसमे जालीदार या बिना जाली का कपड़ा लगाया जा सकता है। बड़े-बड़े खेतों में इसी का प्रयोग किया जाता है। इसके दोनों छोरों को पकड़कर जब खेतों पर काम करने वाले श्रमिक भागते हैं तो इसमें लगा कपड़ा फूल जाता है और फुदकने वाले कीट उसमें घुस जाते हैं। देखिए निचे दिया गया चित्र।



बड़ी जाली

(5) प्राकृतिक उपचार—(क) ये उपचार वे होते हैं, जिनमें प्रकृति सस्य कीटों को मारने में पूरी मदद देती है, जैसे तीव्र वर्षा। इससे सस्य के सभी कीट आसानी से मर जाते हैं।

(ख) ट्रायकोग्रामा—यह कीट जड़ बेधक इल्लियों को खा जाता है। अतः इसे ईख के खेतों में छुड़वाना चाहिए।

गृहवाटिका के पेड़ पौधों के रोग और उनका उपचार

गृहवाटिका के पेड़-पौधों में मुखतया निम्नलिखित रोग देखे जाते हैं :—

(क) आर्द्रगलन—यह रोग नर्सरी में काफी दिखाई देता है। वार्षिक पौधों को ज्यादातर प्रभावित करता है। इसमें उनके नव-बीजांकुरो की जड़ो में या तनों के निचले भाग में फफूंद लग जाती है जिसके फलस्वरूप वे सिकुड़कर खत्म हो जाते हैं। इन खत्म होने वाले पौधों में कार्नेशन, एस्टर, स्टाक, फूलमटर, लार्कस्पर, क्लार्किया आदि जाति के वार्षिक पौधे आते हैं। इस रोग से इन पौधो

को बचाने के लिए बीजों की गहरी बुवाई व सिंचाई अधिक करनी चाहिए। इसके अलावा एमोनियम कार्बोनेट ताजा 2 हिस्से और कॉपर सल्फेट 2 हिस्से मिलाकर 24 घंटे तक रखिए। फिर इस मिश्रण में से 30 ग्राम लेकर उसे 2 गैलन जल में घोलकर नर्सरी की मिट्टी पर अच्छी तरह छिड़काव करा देनी चाहिए। यह मिश्रण चेस्टनट कम्पाउण्ड कहलाता है इससे भी आर्द्रगलन रोग पर नियन्त्रण पाया जा सकता है।

(ख) जड़ विगलन—यह रोग अधिकांशतः एन्टीहाईनम, गुलाब, नेस्टर-शियम, फूलमटर, चेखेरा, और निकोटियाना जाति के पौधों में ज्यादातर देखा जाता है। इसका जन्म भी मिट्टी में पैदा होने वाली कई तरह की फफूंद से होता है। इसके नियन्त्रण के लिए भी चेस्टनट कम्पाउण्ड का प्रयोग करना चाहिए।

(ग) चूर्णी फफूंद—इस रोग से प्रभावित बालसम, गुलाब, जीनिया, फ्लाक्स, लार्कस्पर, फूलमटर, डेलफिनियम और ल्यूपिन्स आदि जाति के पौधों की पत्तियों पर सफ़ेद चूर्ण छा जाता है। इससे पौधों को बचाने के लिए कैरेथेन अथवा गंधक के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

(घ) विषाणु रोग—यह रोग प्रिमुला, लोबेलिया, निकोटीयाना, गेंदा, विकारोजिया, क्रिजेन्थम पीट्यूनिया और क्राइसेन्थेमम आदि पौधों को विशेष रूप से प्रभावित करता है। इसके नियंत्रण के लिए रोगी पौधों को जड़ से उखाड़ कर जला देना चाहिए।

(ङ) रतुआ—यह रोग अधिकांशतः गेंदा, गुलखैरा, स्टाक, ग्रोम्फेना, एन्टीहाइनम, लिनारिया और सेलोसिया आदि जाति के पौधों को प्रभावित करता है। इसके नियंत्रण के लिए रतुआ अवरोधक नामक जातियों के बीज बोने चाहिए।

पौधों की प्राकृतिक प्रकोप से सुरक्षा
(PROTECTION OF PLANTS AGAINST NATURAL CALAMITIES)

पौधों की प्राकृतिक प्रकोप से सुरक्षा नितान्त आवश्यक है। इसमें थोड़ी-सी असावधानी से पूरी फसल नष्ट हो सकती है। ये प्राकृतिक कारण निम्न-लिखित हैं:—

(क) पाले से सुरक्षा (Protection Against Frost)

(ख) लू से सुरक्षा (Protection Against Hot Wind)

(ग) सूर्य के तीव्र प्रकाश से सुरक्षा (Protection Against Sunglare)

(क) पाले से सुरक्षा—बहुधा देखा गया है कि दिसम्बर व जनवरी के दिनों में तापक्रम 32° फा० से कम हो जाता है। ऐसी स्थिति में पाले के पड़ने की

सम्भावना हो जाती है। पाला पड़ने से गृहवाटिका के छोटे, कमजोर, रोग ग्रस्त और अधिक फल फूल वाले पौधों पर प्रभाव पड़ता है। ये नष्ट प्राय: हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि अन्य जीवधारियों के समान पेड़-पौधों की देह भी कोशिकाओं से बनी होती है। इनके भीतर जीव द्रव्य पदार्थ भरा रहता है। जिसमें 10 प्रतिशत से भी अधिक जल होता है। वायुमण्डल के तापक्रम के 32° फा० से कम हो जाने की स्थिति में इन कोषिकाओं का जल जम जाता है और हिम का रूप ले लेता है। पानी का आयतन जमने के बाद करीब 20 प्रतिशत बढ़ जाता है। इससे कोशिकाभाएँ फट जाती हैं और पौधों का अंत हो जाता है। अत: पाले से पौधों की सुरक्षा इस प्रकार करनी चाहिए—

1. पाले के आसार देखते ही पौधों की अच्छी तरह सिंचाई कर देनी चाहिए।
2. पाला पड़ने की सूचना पाते ही पेड़-पौधों के आस-पास घासफूस जलाकर धुआं कर देना चाहिए।
3. पेड़-पौधों में खाद भरपूर मात्रा में रहनी चाहिए जिससे पेड़-पौधे सशक्त रहकर पाले से प्रभावहीन रहें। खाद जाड़े के शुरू में न दें अन्यथा जो प्ररोह निकलेंगे वे काफी नाजुक होंगे और उन पर पाले का प्रभाव अधिक पड़ेगा।
4. पाले से सुरक्षा के लिए पेड़-पौधों पर सिरकी डाल देनी चाहिए; किन्तु उसे पूर्व दिशा की ओर से खुला छोड़ देना चाहिए ताकि सूर्य की किरणें पेड़-पौधों पर सीधी पड सकें।

(ख) लू से सुरक्षा—हमारे देश में मई-जून के दिनों मे गर्म व तेज पछुवा हवा चलती है। यह हवा ही लू के नाम से पुकारी जाती है। यह बहुत ही खुश्क होने के कारण छोटे व कमजोर पौधों की देह को झुलसा देती है। अत: लू से सुरक्षा इस प्रकार करनी चाहिए—

1. गृहवाटिका लगाते समय पश्चिम उत्तर व दक्षिण पश्चिम मे बड़े-बड़े वृक्षों के बीजों को उगाना चाहिए ताकि वे पूर्ण स्थिति में आने पर छोटे पौधों की लू से सुरक्षा कर सकें।
2. छोटे-छोटे पेड़ पौधों को पुराने टाट व घास-फूंस से ढक देना चाहिए और गमलो में लगे छोटे पौधों को छायादार जगह में उठाकर रख देना चाहिए।
3. बड़े पेड़ों के तनों पर सफेदी कर देनी चाहिए। इससे भी लू का प्रभाव कम हो जाता है।

(ग) सूर्य के तीव्र प्रकाश से सुरक्षा—ग्रीष्म ऋतु में सूर्य का तीव्र प्रकाश फलदार वृक्षों व अलकृत पौधों को सबसे ज्यादा प्रभावित करता है। इससे

सुरक्षा इस प्रकार करनी चाहिए—

1. ग्रीष्म ऋतु में पौधों की सिंचाई बार बार करते रहना चाहिए ताकि ताप-क्रम के प्रभाव से पौधे बचे रह सकें।
2. बड़े पेड़ों के तनों पर सफ़ेदी कर देनी चाहिए ताकि गर्मी का प्रकोप कम रहे।
3. क्यारियों में लगे पौधों को दिन में ढक देना चाहिए और गमलों में लगे पौधो को उठाकर छायादार स्थान में रख देना चाहिए।
4. यदि कलम क्यारियों मे लगी हुई हो तो उनके सिरों पर थोड़ा-थोड़ा गोबर लगा देनी चाहिए।

फल वृक्षों की काट-छांट (PRUNING OF FRUIT TREES)

हमारे देश मे फल वृक्षों की काट-छांट एक पुरातन प्रथा है। इसमें किसी फल वृक्ष के किसी अंग को इस उद्देश्य से काटकर निकाल देना पड़ता है कि वृक्ष का शेष अंश छंटाई करने वाले की इच्छानुकूल बन जाता है। इतना ही नहीं इस क्रिया से वृक्ष बलवान् व स्वस्थ बन जाते हैं और फलोत्पादन व फलों की मात्रा भी इच्छानुकुल नियन्त्रण मे आ जाती है। यह प्रक्रिया वृक्षों की किस्मों के अनुसार की जाती है अधिकांशतः काट-छांट शाखाओं की ही की जाती है जिससे पत्तियाँ स्वयं ही छंट जाया करती हैं। यह काट-छांट फलो के विरलन (Thinning) और जड़ों की काट-छांट (Pruning) से हमेशा भिन्न होती है। फल वृक्षों की काट-छांट मे सौन्दर्य का विचार सदा गौण (Secondary) रहता है। जब कि अलंकारिक पौधों में (Ornamental Plants) काट-छांट मुख्यतः उनकी सौन्दर्य वृद्धि के लिए की जाती है। फल वृक्षों व फूल-पौधों की वानस्पतिक वृद्धि तथा उनके अच्छे उत्पादन के लिए काट-छांट अनिवार्य प्रक्रिया है। कटाई-छंटाई का समय तथा उसकी मात्रा पौधों की जाति विशेष के ऊपर निर्भर करती है। इससे ही पूर्ण सफलता मिल सकती है। काट-छांट को दो निम्नलिखित प्रक्रियाओं में बाँटा जा सकता है—

(1) सिधाना (Training)
(2) संधारण (Pruning)

सिधाना (Training)—यह कार्य शिशु वृक्षों की छोटी अवस्था से लेकर उनके स्थायी स्थान पर लगाने के बीच तक किया जा सकता है। यह कार्य किसी भी वृक्ष की वृद्धि की स्थिति पर निर्भर करता है। इसमे साधारणतः वृक्ष को भूमि से कुछ ऊंचाई तक स्तम्भीय (Single Stem) रूप दिया जाता है। कुछ शिशु पौधे नीचे से ऊपर की ओर कई प्ररोह (Shoots) निकालते हैं। इनमें से एक मुख्य प्ररोह को छोड़कर शेष सभी प्ररोहों को हटा देना चाहिए। वृक्ष की

कम से कम ऊँचाई रखना अधिकांश परिस्थितियों में अच्छा माना जाता है। यह ऊँचाई फल विशेष पर निर्भर करती है। उदाहरणार्थ अंगूर, आम, नीबू और अमरूद आदि। जिन पौधों में ओज अधिक होने के कारण तना काफ़ी ऊँचाई पर जाकर शाखाएँ देता है। उनका शिराकर्तन (Heading Back) आवश्यक हो जाता है। जब प्ररोह का ऊपरी भाग काट दिया जाता है तो काट के पास से कई कलिकाएँ प्ररोह को जन्म देती हैं। कुछ वृक्षों में उनके स्वभाव के अनुसार शाखाएँ भूमिस्तर के बिल्कुल पास से निकलनी शुरू हो जाती हैं। इस दशा में जिस शाखा को रखना है उसकी चयन विशेष बुद्धिमानी से करना चाहिए।

वृक्ष के मुख्य ढांचे का निर्माण करना (Forming Main Frame Work of the Tree)—यह सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके लिए जो तीन से पाँच तक शाखाएँ रखी जाती हैं, उनकी वृद्धि विभिन्न स्थितियों में होनी चाहिए, जिससे कि वृक्ष का ढांचा करने के लिए वृक्ष चारों तरफ समान रूप में फैल सके। वृक्ष का ढांचा इतना मजबूत होना चाहिए कि फलों से लदने की दशा में भी टूटे नहीं। यदि वह टूट जाता है तो इस प्रकार टूटने से वृक्ष के भीतर ऐसे घाव हो जाते हैं, जिनका उपचार कठिन तो है ही, साथ ही उसके वृक्ष के मध्य में अथवा किनारों पर एक खाली स्थान बन जाता है, जिसकी पूर्ति करना उससे भी कठिन कार्य है। वृक्ष की शाखाएँ अक्सर उसी जगह से टूटती हैं जहाँ पर कई शाखाएँ एक साथ अथवा एक दूसरे के बहुत पास निकलती हैं। इन शाखाओं को एक दूसरे से 15 सें० मी० लम्ब रूप में रखने से पेड़ का ढांचा काफी मजबूत हो जाता है। इसकी दूसरी दशा यह होती है कि जब दो बराबर की शाखाओं से एक तरह के कोणाभिवार (Crotche) का निर्माण होता है। यह कोण जितना ज्यादा बड़ा होगा शाखा उतनी ही दृढ़ता से वृक्ष के साथ संलग्न (Attached) होगी। अतः कोण बड़ा ही रखना चाहिए।

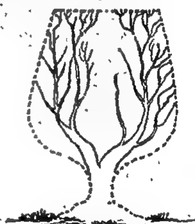
कुछ ऐसे वृक्षों में जिनकी शाखाओं की कभी काट छाँट न की गई हो, उनकी सबसे बड़ी शाखा ऊपर की ओर बढ़ती है और इनमें से निकलने वाली छोटी-छोटी शाखाएँ विभिन्न दिशाओं में उगती और बढ़ती रहती हैं। ऐसे वृक्ष सुदृढ़ तो अवश्य होते हैं; किन्तु उद्यान की दृष्टि से ठीक नहीं रहते; क्योंकि इनकी ऊँचाई इतनी ज्यादा हो जाती है कि काट छाँट करना, छिड़काव करना और फल निकालना आदि कार्य बहुत कठिन हो जाता है। इसमें व्यय भी अधिक होता है। इतना ही नहीं, नीचे की ओर की शाखाओं के ऊपर हरदम छाया रहने से वे फलती फूलती नहीं हैं और कभी-कभी वे मर भी जाती हैं। यदि ऐसा वृक्ष सेब आदि फल का हुआ तो वृक्ष के अन्दर के हिस्से में धूप न लगने से सेबों में रंग अच्छा नहीं आ पाता है। इस प्रकार मध्य की शाखा पर सिधाने को मध्यवर्ती अग्रणी (Central Leader System) विधि कही जाती है। किन्तु

ऊपर बतायी गई असुविधाओं के कारण इस विधि का प्रचलन नहीं के बराबर है।


मध्यवर्ती अग्रणी विधि

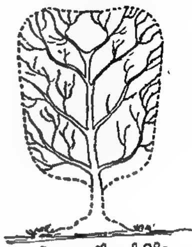
दूसरी प्रकार की 'सिधाना' प्रक्रिया को भृंगाकार विधि कहा जाता है। इसमें वृक्ष के जिस स्थान पर शिराकर्तन किया जाता है उससे ऊपर की ओर किसी भी दूसरी शाखा को उगने नहीं दिया जाता है। इस स्थान से निकलने वाली सभी शाखाएँ इस विधि के द्वारा सिधाई जाती हैं कि उनसे एक तरह का कटोरा बन जाए। इससे सूर्य की किरणें वृक्ष के भीतर सब से अधिक पहुँचती हैं। इस प्रक्रिया में शाखाओं की अधिक काट छाँट नहीं करनी पड़ती है।

आजकल उद्यानकला में दोनों प्रकारों के मध्य की स्थिति का अधिक प्रचलन है। यह संशोधित मध्यवर्ती अग्रणी (Modified Central Leader) कहलाती है। इसमें वृक्ष के ढाँचे की शाखाएँ अच्छी तरह वितरित होती हैं और ऊपर की शाखाओं को ऊपर की ओर लम्ब रूप में बढ़ने दिया जाता है; किन्तु दूसरी शाखाओं को अधिक नहीं बढ़ने दिया जाता है। इससे वृक्ष का फैलाव अच्छा होता है और उसमें सुदृढ़ता आ जाती है तथा सूर्य की किरणें अधिक मात्रा में उपलब्ध हो पाती हैं। इसमे भी शाखाओं की ज्यादा काट-छाँट नहीं करनी पड़ती है।


भृंगाकार विधि

भारत में अंगूर की लताओं को कई प्रकार से सिधाया जाता है। इसकी पहली विधि में लताओं को $2.5' \times 3'$ की खातियों में रोपा जाता है। इन खातियों के खोदने से जो मिट्टी निकलती है उसे किनारों पर इकट्ठा कर दिया जाता है। लताओं को खातियों की भीतरी दीवारों का सहारा दिया जाता है। इनकी आपसी दूरी 12 फीट और लताओं की दूरी 8 फीट के लगभग होती है। पौधा लगाने के एक वर्ष बाद पूरे पौधे को एक स्तम्भ के रूप मे काट दिया जाता

है इसमें 2 या 3 गाँठें (Inter-nodes) होती हैं। दूसरे वर्ष दो दृढ़ शाखाएँ छाँट कर फिर उन्हें इसी प्रकार काट दिया जाता है ताकि हर भुजा में 2 या 3 गाँठें हो जाएँ। इसी प्रकार मुख्य स्तम्भ की भी काट छाँट की जाती है जिससे ऊपरी सिरे पर कुल 3 या 4 शाखाएँ दिखाई दें। इस प्रकार यह क्रिया हर साल चलती रहती है। काट छाँट के बाद भुजाएँ खम्भों के सहारे खातियों की दीवारों में अटका दी जाती हैं जिससे कि वे वायु व धूप से बच सकें। शीर्ष संहति (Head System) में अंगूर की लताओं को काफी छोटा रखा जाता है अर्थात् लताओं की ऊँचाई 1.5 फीट से 4 फीट तक ही रखी जाती है। इसमें लताओं को खड़ा रहने के लिए अवलम्ब की आवश्यकता सिर्फ शुरू के 4-5 वर्ष तक रहती है। इसका अधिकांशतः प्रयोग माइनीफेरा अंगूरों के उत्पादन के लिए अमेरिका में किया जाता है। अन्य विधियों निफिन व कोर्डन आदि में तारों की जालियाँ बनायी जाती हैं। इनमें व्यय अधिक होता है निफिन संहति (Kniffin System) में अंगूर की लताओं को जाली के दोनों ओर सिधाया जाता है और कोर्डन संहति में (Cordon System) अंगूर की लताओं को जाली की एक ओर ही सिधाया जाता है। बम्बई में एक खूटी विधि (Single Stem Method) के द्वारा अंगूर की लताओं को सिधाया जाता है। मद्रास व मैसूर में पंडाल विधि के द्वारा सिधाने का कार्य किया जाता है। इसमें अंगूर की लताओं को 5-6 फीट की होने तक पहले अस्थायी सहारे पर खड़ा किया जाता है। फिर इन्हें पंडाल पर या द्वार की छत के ऊपर उगने के लिए छोड़ दिया जाता है। जब अंगूर की लताएँ फलने की स्थिति में होती हैं उस समय पंडाल या द्वार के ऊपर गत वर्ष की जितनी भी वृद्धि हो उसे 3 से 7 कलिकाओं तक छोड़कर शेष भाग को काट दिया जाता है।


संशोधित मध्यवर्ती अग्रणी विधि

यदि किसी भी प्रकार के पौधे में शाखाएँ प्रकृति के अनुकूल से ही काफी विमुक्त रूप से आने लगती हैं तो उसका शिराकर्तन (Heading Back) करने के बाद ढाँचे हेतु शाखाओं को चुनना चाहिए। इसमें उनको शाखाओं को छोड दिया जाता है, उनकी काट छाँट कर देनी चाहिए। यदि इस स्थिति के बाद सिर पर से कुछ कलियाँ और निकलें तो उनमें से मुख्य कली को ऊपर की ओर (Vertically) बढ़ने देना चाहिए और कुछ समय के बाद उसका भी शिराकर्तन करके उसमें कुछ

और कलिकाओं को पैदा होने देना चाहिए। अधिक कलिकाएँ निकालने वाले वृक्षों में पहली काट-छांट निम्न स्तर पर होनी चाहिए। जब वृक्ष के ढाँचे की शाखाएँ बढ़ने लगती हैं तो ऐसी दशा में काट-छांट का कार्य नहीं के बराबर रह जाता है। यदि दो समान शाखाएँ कोणभिवार बनाये तो इनमें से एक शाखा को या तो पूर्ण रूप से काट देना चाहिए अथवा उसका शिराकर्तन कर देना चाहिए। इससे दूसरी शाखा जल्दी बढ़कर स्थायी रूप ले लेगी। बहुत ओजस्वी वृद्धि वाले पौधों की शाखाएँ लम्बी एवं पतली होने लगती हैं। यदि इन्हें इसी स्थिति में रहने दिया जाए तो कुछ समय बाद ये टूट जायेंगी अथवा मुड़ने लग जायेंगी। अतः ठीक यही रहेगा कि इनको भी पीछे की ओर से काट-छांट कर देनी चाहिए ताकि शाखाओं की उत्पत्ति हो सके। प्रमुख शाखाओं को स्वच्छन्द रूप से बढ़ने देना चाहिए, पर इस बात का अवश्य ध्यान रहे कि समान कोणभिवार न बनने पाएँ और न ही शाखाएँ आपस में पारण (Cross) कर पायें।

वृक्षों का ढाँचा जितना शीघ्र बन जाए उतना ही लाभदायक है; किन्तु यह शाखाओं के निर्माण पर भी निर्भर करता है तथा विभिन्न प्रकार के फल वृक्षों में ज्यादा अथवा कम समय लग सकता है। बहुत बड़े वृक्षों में भी शाखाओं की काट छांट की मात्रा भी भिन्न-भिन्न होती है। आपस में रगड़खाने वाली, रोगी व टूटी हुई शाखाओं को काट देना चाहिये। यदि वृक्ष की कोई शाखा साफ़ नहीं कटी हो तो उसके घाव को भरने में काफी समय लग जाता है। कभी-कभी सूर्य की किरणों व स्वच्छ हवा के आगमन के लिए भी शाखाओं का विरलन करना पड़ता है। गौण शाखाओं की स्थिति में शाखाएँ केवल उनके सिरों पर ही आने देनी चाहिए न कि मध्य मे और उन्हें लम्ब रूप में ही बढ़ने देना चाहिए। इससे फल सिर्फ़ सिरों पर ही लगेंगे। यदि वृक्षों को काफी खुला रखा जाए तो उनमें फल मध्य भाग में और बाहर की ओर लगभग समान मात्रा में लगेंगे।

कुछ फल वृक्षों में सिर्फ़ नये प्ररोहों पर ही लगते हैं। यदि उन वृक्षों को काट छांट के बिना ही छोड़ दिया जाए तो उनकी ऐसी लम्बी शाखाओं पर फल लगेंगे जो तने से काफी दूर होंगी और फिर उनके टूटने का भय उत्पन्न हो जाता है। इस स्थिति मे उनकी सब से ऊपर की शाखाओं को काटना हित में रहता है ताकि उन वृक्षों को कुछ नीचा हो रखा जा सके। कुछ अवस्थाओं मे वार्षिक काट छांट थोड़ी ही करनी पड़ती है; कुछ अवधि के बाद यह काफी मात्रा में करनी पड़ती है; अन्यथा उनकी वृद्धि प्रायः रुक सी जाती है। इससे उनके ओजस्व मे कमी आने लगती है और छोटे-छोटे फल लगने लगते हैं तथा एक स्थिति ऐसी आ जाती है, जबकि उनमे फल आने बन्द हो जाते हैं। इस अवस्था मे वृक्षों के पुनर्नवीनीकरण (Rejuvenation) के लिए शाखाओं की बहुत

अधिक काट छांट करनी होगी। शुरू में एक दो वर्ष तक काफी वर्धी वृद्धि (Vegetative growth) होती है और इसके बाद ही वे फलने की स्थिति में आ जाते हैं।

पौधों में अन्तर (SPACING BETWEEN PLANTS)

हमें गृह वाटिका में पौधे लगाते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उनमें आपस में इतनी दूरी हो कि वे अच्छे उत्पादक बन सकें। पौधों की आपस की दूरी उनकी बढ़ने की प्रकृति पर मुख्य रूप से निर्भर करती है। कुछ प्रकार के वृक्षों के लिये अनुमोदित आपसी दूरी को निम्न तालिका में दिया जा रहा है।

फल वृक्षों की आपसी दूरी

क्रम संख्या	पौधों के नाम	पौधों की आपसी दूरी
1.	आम (कलमी)	9 मीटर से 10.5 मीटर तक
2.	आम (देसी)	10.5 मीटर से 12 मीटर तक
3.	अनार	4.5 मीटर से 6 मीटर तक
4.	माल्टा	4.5 मीटर से 6 मीटर तक
5.	सेब, बादाम, खुरमानी और चेरी	6 मीटर से 7.5 मीटर तक
6.	अलूचा, अमरूद, नाशपाती, नींबू, मिट्ठा और संतरा	5 मीटर से 7.5 मीटर तक
7.	अंगूर, केला, पपीता और फालसा	2.4 मीटर से 3 मीटर तक
8.	खजूर	4.5 मीटर से 6 मीटर तक
9.	लीची और लुकाट	6 मीटर
10.	शहतूत	7.5 मीटर से 9 मीटर तक
11.	जामुन और बेर	10.5 मीटर से 12 मीटर तक

गृहवाटिका या उद्यान के लिए पौधों की संख्या ज्ञात करना—इसके लिए सबसे पहले यह ज्ञात करना आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक पौधा कितना क्षेत्रफल (वर्ग मीटर) घेरता है। एक हैक्टेयर में 10538.5 वर्ग मीटर होते हैं। इसे पौधे के क्षेत्रफल से भाग करने से उनकी संख्या ज्ञात हो जाती है।

उदाहरणतः

$$\text{एक हैक्टेयर में पौधों की संख्या} = \frac{10538.5}{(\text{पौधो का अन्तर})\ \text{मीटर में} \times (\text{पंक्तियों अन्तर का})\ \text{मीटर में}}$$

पौधो का पारस्परिक अतर=6 मीटर
पंक्तियों का पारस्परिक अन्तर=6 मीटर

$$= \frac{10538.5}{6 \times 6} = \text{अनुमानतः } 262 \text{ पौधे}$$

सारांश

1. फल वृक्षों की काट-छांट से वे बलवान व स्वस्थ बन जाते हैं और फलोत्पादन व फलों की मात्रा भी इच्छानुकूल नियंत्रण में आ जाती है।
2. हरेक पौधे की बढ़ोतरी उसके प्रकार, जलवायु और वहाँ की धरती पर निर्भर है। अतः उनके आकार के अनुसार दूरी का अन्तर रहना चाहिए।
3. फल-फूल पौधो की क्यारियो मे से खपतवारों को प्रतिबंधक विधि या चिकित्सा सम्बन्धी विधि से दूर कर देना चाहिए।
4. कीटो की उत्पत्ति अण्डों से होती है। इन्हें खान-पान की दृष्टि से दो भागो मे बाटा जा सकता है—(i) कुतंक (ii) चूषक।
5. कुतंक कीटों में टिड्डे, टिड्डी व इल्ली आदि की गणना की जाती है।
6. चूषक कीटो मे खटमल, पतंग व मत्कुण आदि की गणना की जाती है।
7. हानिकारक कीटों को दो भागो में बांटा जा सकता है—(i) कायान्तरकर्ता कीट (ii) अकायांतर कीट। कायान्तरकर्ता कीटों मे तितली वर्ग, भृंग वर्ग, मक्खी वर्ग आदि आते है। अकायान्तर कीटो में टिड्डा-टिड्डी वर्ग, मत्कुण वर्ग, लाही आदि आते हैं।
8. सब्जियो व फलों को हानि पहुँचाने वाले कीटो से बचाने के लिए प्रलोभिका विष, मिट्टी के तेल में भीगी हुई राख, चूना व तम्बाखू का चूर्ण, गर्म कोलतार, क्लोरोफार्म व क्रियोसोट आदि का प्रयोग करना चाहिए।
9. कीट नियंत्रक उपचार जीव विज्ञानीय, रासायनिक, कृषिगत, कानूनी, यांत्रिक, प्राकृतिक द्वारा किया जा सकते है।
10. गृहवाटिका के पौधों में अधिकांशतः आर्द्रगलन, जड़ विगलन, चूर्णीफफूंद विषाणु और रतुआ आदि रोग हो जाते है।
11. पौधो की प्राकृतिक कारणो से सुरक्षा के अन्तर्गत पाले से सुरक्षा, लू से सुरक्षा और सूर्य के तीव्र प्रकाश से सुरक्षा करना चाहिए।

12. भू-परिष्करण का उद्यान कला में विशेष महत्त्व है। इसके अन्तर्गत ये प्रक्रियाएँ की जाती हैं—(क) भूमि की गुड़ाई (ख) घासपात की निराई (ग) मिट्टी चढ़ाना (घ) अवरोध परत बनाना आदि।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1. 'फलवृक्षों की काट-छाँट वृक्षों को बलवान व स्वस्थ बनाने तथा फलों की मात्रा को इच्छानुकूल नियंत्रण में लाने की सर्वोत्तम प्रक्रिया है।' इस पर सारगर्भित लेख लिखिए।

प्रश्न 2. पौधों की काट-छाँट से क्या अभिप्राय है ? इसके मुख्य उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3. गृहवाटिका में पौधे लगाते समय उनमें दूरी का अन्तर क्यों आवश्यक है ? कलमी आम, अनार, माल्टा, सेब, अंगूर, चीकू, शहतूत और जामुन के पेड़ों में कितना अन्तर रखना चाहिए।

प्रश्न 4. खरपतवार से क्या अभिप्राय है ? गृहवाटिका के खरपतवारों की रोकथाम के लिए कौन-कौन सी विधियाँ अपनाओगे ?

प्रश्न 5. खरपतवारों को दूर करने वाली चिकित्सा सम्बन्धी विधियों के विषय में तुम क्या जानते हो ?

प्रश्न 6. हानिकारक कीटों को कितने भागों में बाँटा जा सकता है ? पाँच हानिकारक कीटों के नाम लिखकर उनके नियंत्रण के उपाय लिखिए।

प्रश्न 7. निम्नलिखित सब्जियों व फलों को हानि पहुँचाने वाले कीट व उनसे बचने के उपाय बताइए—
(क) आलू (ख) सकरकंद (ग) हरी सब्जियाँ (घ) ईख (ङ) खरबूजा (च) अंगूर (छ) अनार (ज) आम (झ) नारियल।

प्रश्न 8. गृहवाटिका के पेड़ पौधों के रोगों के विषय में क्या जानते हो ? उनके उपचार के लिए क्या-क्या करोगे ?

प्रश्न 9. कीट नियंत्रक से क्या अभिप्राय है ? कौन-कौन-सी कीटनाशक औषधियों का प्रयोग कब और कैसे करोगे ?

प्रश्न 10. उन प्राकृतिक कारणों का उल्लेख करो जिनसे पौधों की सुरक्षा नितांत आवश्यक है ?

प्रश्न 11. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
(क) पाले से सुरक्षा (ख) भूमि की गुड़ाई व निराई (ग) अवरोध परत बनाना (घ) रासायनिक उपचार (ङ) लाही वर्ग (च) दीमक वर्ग (छ) खरपतवार।

प्रश्न 12. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

(क) हरेक पौधे की बढ़ोतरी उसके………और………के ऊपर निर्भर है।

(ख) सेब, बादाम, खुमानी और चेरी में पौधों की दूरी……मीटर रखी जाती है।

(ग) एक हैक्टेयर भूमि में लगभग…………पौधे लगाए जा सकते हैं।

(घ) अवांछित, हानिकारक, चिरलग्न पौधे…………कहलाते हैं।

(ङ) खरपतवार………,……,……,…………विधियों से नष्ट किए जाते हैं।

(च) …………युवा कीट………के पत्तों का रस चूस लेते हैं

(छ) …………कीटनाशक औषध है।

(ज) …………के साथ रखने से बोने वाले बीज सुरक्षित रहते हैं।

(झ) …………रोग की रोकथाम…………मिश्रण से की जाती है।

(ञ) जड़ विगलन के रोग से बचाने के लिए…………का प्रयोग किया जाता है।

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. तुम्हारी नर्सरी के वार्षिक पौधों को आर्द्र गलन रोग लग गया है। इससे पौधों की सुरक्षा के लिए चैस्टनट कम्पाउण्ड तैयार करो और उसकी विधि कापी में लिखो।

प्रश्न 2. तुम्हारी गृहवाटिका में गुलाब और लार्कस्पर पौधे चूर्णी फफूंद से प्रभावित हो गए हैं। इसके लिए कैरेथेन या गंधक का घोल तैयार कीजिए।

शोभनीय उद्यान
(ORNAMENTAL GARDENS)

7

प्रस्तावना (INTRODUCTION)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि वैदिक काल के आर्यों को वृक्षों व सुमनों से बहुत ही घनिष्ठ लगाव था। हिन्दू व बौद्धिक संस्कृति में उद्यानों को पवित्रता का प्रतीक माना गया है। पुष्पों को अपने इष्ट देवों की पूजा के शुभ कार्य में लिया जाने लगा। यह प्रथा विश्व के अन्य देशों में पहुँची। इन विशेष धार्मिक मान्यताओं के कारण चम्पा, कदम्ब, सेमल, कचनार, अमलतास और कमल के पुष्पों की महत्ता बढ़ती गई और वे मठों, देवालयों और प्रासादों तथा भवनों में उगाये जाने लगे। मुगल बादशाहों ने इस कला में चार चाँद लगाए। बाबर ने भारत में ईरानी व मध्य एशिया की उद्यान पद्धतियों को अपनाया। बादशाह जहाँगीर और उसकी बेगम नूरजहाँ ने शाहदरा (लाहौर) बाग तथा हसन अबदल के उद्यान बनवाये। शाहजहाँ के एक दरबारी अली मरदान खाँ ने लाहौर के शालीमार उद्यान तथा दिल्ली के लाल किले के उद्यान व आगरे मे ताजमहल के उद्यान को बनवाया था। फदाई खाँ ने पिंजौर उद्यान जो कालका के समीप है, बनवाया था। आधुनिक युग में तो शोभनीय उद्यान कला शिक्षा व मनोरंजन का

साधन बन गई है। इस प्रकार इस कला में दिन प्रतिदिन निखार आता जा रहा है। अलंकृत पुष्पों व पौधों को उगाने में मानव को एक विशेष प्रकार की प्रसन्नता मिलती है, जो अन्य किसी वस्तु से प्राप्त नहीं हो सकती। ये अलंकृत उद्यान विद्यालय, अस्पताल और अपने आवास के वातावरण को सुगंधित एवं सौन्दर्यपूर्ण बनाने में अनोखी भूमिका निभाते हैं। वास्तव में ये सुहावने, अलंकृत पुष्प-पौधे ही शोभनीय उद्यान की आत्मा हैं। इसके रचयिता को एक कलाकार, सौन्दर्योपासक, वनस्पतिज्ञ, इंजीनियर और निर्माता होना चाहिए। ये शोभनीय उद्यान निम्नलिखित दो प्रकार के होते हैं।

1. कृत्रिम उद्यान (Formal Garden)
2. प्राकृतिक उद्यान (Informal Garden)

1. कृत्रिम उद्यान—जैसा कि इनके नाम से ही विदित हो जाता है कि सर्वत्र कृत्रिमता छायी रहती है, चाहे वे अलंकृत पुष्पों की क्यारियाँ ही क्यों न हों? इन उद्यानों को लगाने से विभिन्न प्रकार के पुष्पों की क्यारियों के नक्शे तैयार किये जाते हैं। उनके पौधों की कटाई छंटाई भी विशेष रूप से की जाती है। मुगल बादशाहों ने अपने युग में इसी प्रकार के उद्यानों को अधिक पसन्द किया था। आजकल भी इसी प्रकार के उद्यानों का अधिक प्रचलन है।

2. प्राकृतिक उद्यान—इस प्रकार के उद्यानों में कृत्रिमता किंचित मात्र भी दिखाई नहीं देती है। इनमें पुष्प पौधों को प्राकृतिक ढंग से उगाया जाता है। इनमें ऊँची-नीची पहाड़ियाँ, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियाँ, छोटे मोटे नदी नाले, छोटे तालाबों में विभिन्न प्रकार के जलवाले पौधे तथा अन्य स्थानों पर विभिन्न प्रकार के सुन्दर पौधे उगाये जाते हैं। इस प्रकार के उद्यान दिल्ली में बुद्ध जयंती उपवन (बुद्धा गार्डेन) जयपुर में राम निवास पब्लिक गार्डेन और कलकत्ता में ईडन गार्डेन आदि हैं।

आवास स्थान में अलंकृत पौधे

साधारण आवास स्थान के लिए साधारण गृह वाटिका ही अच्छी रहती है। सीधे-सादे आयताकार गोल अथवा लम्बाकार गोलाई लिए हुए छोटी-छोटी क्यारियाँ ऐसे आवास स्थानों में सुन्दर लगती है। यदि आवास स्थान के अहाते में कुछ असयत स्थान बचता हो तो उसमें से भी छोटी-छोटी क्यारियाँ काट लेना चाहिए अथवा सीढ़ियों के आकार का उसे तैयार कर लीजिए। आवास स्थान के बरामदों में भूल कर भी क्रोटन आदि के गमले नहीं लगाने चाहिए; क्योंकि अपर्याप्त स्थान होने के कारण इनसे कूड़ा-कर्कट अधिक एकत्रित हो जाता है। वहाँ पर कैक्टाइ अथवा रोकरी को भी लगाया जा सकता है। कहीं-कहीं पर जहाँ स्थानाभाव ही के कारण ऐसे पुष्प-पौधे का चयन करना चाहिए जो वर्ष भर

फूल देते रहते हैं। इनमें कैना, मोनिमा इरेक्टा, इक्सोरा आदि उल्लेखनीय हैं। कैना की क्यारियाँ स्नानागार के सामने लगायी जानी चाहिए; क्योंकि इसके लिए अधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है। खिड़कियों और द्वारों के पास गार्डिनिया जाति के पौधे लगाने चाहिए। ये रात्रि में सुगन्धि देते हैं। लॉन के पास बरामदे के सामने गुलाबी केशिया, अमलताश, पेल्टोफोरम, कचनार आदि लगाने चाहिए। इतना ही नहीं आवास स्थान अर्थात् घर में सब्जी की क्यारियों का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। इसके अन्तर्गत बंदगोभी, फूलगोभी, टमाटर, बैंगन आदि सब्जियाँ लगायी जा सकती हैं। फलदार वृक्षों को कभी भी घर के सामने नहीं लगाना चाहिए। इन्हें स्थान की उपलब्धि होने पर घर के पिछले भाग में लगाना चाहिए।

घर के छोटे अहातों में लगाए जाने वाले सुन्दर पुष्प-पौधे—अकेशिया ओरिक्युलिफोर्मिस, ब्यूटिया फ्रन्डोसा, स्टरफुलिया कलरेटा, प्लुमेरिया रूबरा, सराका इंडिका, केशिया, फिस्टुला, के० जेर्मनिका, के० मार्जिनेटा, कोर्डिया सिबेस्टेना, इरैथ्रिना ब्लैकाई, मेमुआ फेरी, पौगेनिया ग्लेब्रा आदि सुन्दर पुष्प-पौधे घर के छोटे अहातों के लिए ठीक रहते हैं।

घर के छोटे अहातों के लिए सुगंधित वृक्ष व क्षुप पौधे—स्काइनस मोले, आल्सटोनिया स्कोलैरिस, निकंथिस आर्कोट्रिस, गार्डिनिया ल्यूसिडा, मैग्नोलिया ग्रैन्डिफ्लोरा, हिप्टेज माधवलता, सीसोनिया अल्बा, और इक्सोरा पर्वीफ्लोरा आदि सुगंधित वृक्ष व क्षुप पौधे घर के छोटे अहातो के लिए उपयुक्त हैं।

घर के छोटे अहातों के लिए अलंकृत पत्तियों वाले वृक्ष—पालिऐल्थिया लौंगिफोलिया, अमरोहा कैरम्बोला और कैलिस्टीमोन लैंन्सिओलेटस वृक्ष ठीक रहते हैं।

घर के छोटे अहातों के लिए अलंकृत फल वृक्ष—इसमें हजारा नारंगी के वृक्ष की गणना की जाती है।

घर के बड़े अहातों के लिए वृक्ष—इसमें यूकेलिप्टस, अशोक वृक्ष, गुल मोहर, पौलीऐल्थिया, एन्थोसिफेलिस इंडिकस, वाम्बेक्स मल्वेरिकम, केसिया नोडोसा, कोरिशिया स्पेशिओसा, कौल्मिलिया, रैसोमोसा, लैजरस्ट्रोइमिया, फ्लोस रेजीनी, मिलिंगटोनिया, होर्टेनसिस, पेल्टोफोरम फ्रेरुजिनम, पोइन्सनिया रिजिया, स्टरकुलिया कलरोटा, डिलेमिया इन्डिका, माइमूसोप्स इलिंग्ट, आंवला, पूटरान्जिवा रौक्सबर्वाई, टर्मिनेलिया अर्जुना आदि उल्लेखनीय हैं।

क्षुपवृत्ति व किनारी (HEDGES AND EDGES)

प्राय: देखा गया है कि चाहे वह उद्यान हो या गृह वाटिका, जानवरों से सुरक्षा वायु वेग से बचाव और निजिकवास (Privacy) हेतु क्षुप वृत्तियों का रोपण

अनिवार्य हो जाता है। इतना ही नहीं इनसे सौन्दर्य में भी वृद्धि होती है। ऐसी रंगीन वृत्तियाँ ऐक्लीफा, क्रोटन, पिसोनिया और कौर्डीलाइन आदि पौधों से निर्मित होती हैं। पुष्पों के लिए यदि वृत्ति लगानी पड़े तो उसमें हिबिस्कस, इक्सोरा, पोइनसिटिया तथा बनवजिया पौधे लगाने चाहिए। इन्हें बनाने के लिए नींव अच्छी डालनी चाहिए। इसके लिए लगभग 45 सेंटीमीटर गहरी खाति बनाकर उसमें आवश्यकतानुसार क्षेत्रीय उर्वरक डाल देना चाहिए। कभी-कभी वृत्ति को जानवरों से सुरक्षा के लिए बाहर की ओर कांटेदार तार भी खींचे जाते हैं। सौन्दर्य वृद्धि हेतु इन तारों पर भी पुष्प लताएँ चढ़ायी जा सकती हैं। अवरोधी वृत्तियाँ (Protective hedges) का निर्माण यूका यूफोर्बिया, कैक्टाई, ऐगेव आदि कांटेदार पौधों से किया जा सकता है। क्षुपवृत्तियाँ सामान्यतया कलम लेकर तैयार की जाती हैं; किन्तु बीजों द्वारा भी अच्छी वृत्तियां तैयार की जा सकती हैं। ऐसी वृत्तियाँ स्थायी रहती हैं। इनके पौधों में मालफिजिया, लौगउड, फाइलैंथस और त्रिफेजिया आदि विशेष हैं। वृत्तियों की काट छांट में यह सावधानी अवश्य बरतनी चाहिए कि वे पौधे शिखा की ओर काफी घनिष्ठता से एक दूसरे के समीप होने चाहिए। बड़ी पत्तियों वाली वृत्तियों की काट छांट चाकू से करनी चाहिए। अब यहाँ पर ऐसे पौधों की तालिकाएँ दी जा रही हैं जिनका उपयोग क्षुपवृत्तियों के लिए किया जा सकता है।

तालिका नं० 1. वृत्ति पौधे (HEDGE PLANTS)

छोटी शोभनीय झाड़ी 2′ से 5′ ऊँची	छोटी कांटेदार झाड़ी 2′ से 5′ ऊँची	ऊँची शोभनीय झाड़ी 6′ से 10′ ऊँची	ऊँची कांटेदार झाड़ी 6′ से 10′ ऊँची	छायादार झाड़ी 10′ से 30′ ऊँची	रेलवे झाड़ी 5′ से 10′ ऊँची
1. अंग्रेजी मेंहदी ×O+	1. फुलई O+	1. कामिनी ×●	1. अंग्रेजी कीकर O+	1. बांस O×+	1. नागफनी ×+
2. मेंहदी ×O+	2. नील कांटा O×+	2. मेंहदी ×O+	2. करोंदा O+	2. जैतून O+	2. थोर △+
3. पतक राई ×[illegible]+	3. पट्टा O+	3. अशोक O●	3. पट्टा O+	3. फारस —●	3. रतेती △+

4. रेलिया	4. जंगली जलेबी	4. कनेर	4. जंगली जलेबी	4. मजनू	4. रक्षपता
O+	O⊖]	O⊖	O⊖	O⊖	Δ+
5. नील कांटा	5. उसी	5. नील कांटा	5. कुल मरना	5. भसकुटी	5. फरक्रोइया
×O⊖	×↑+	O×⊖	O×+	O+	Δ+
6. जस्टीसिया				6. अंग्रेजी कीकर	
×U				O+	
				7. फिडल उड	
				×⊖	

तालिका नं० 2 वृत्ति पौधे (HEDGE PLANTS)

दलदली भूमि की झाड़ियाँ 15′ से 30′ ऊँची	क्षारीय भूमि	पुष्प झाड़ियाँ 5′ से 10′ ऊँची	अस्थायी शीघ्र वृद्धि की झाड़ियाँ
1. अनेक बाँस	1. रक्षपता	1. गुड़हल	1. जरायन
◘ ×⊖	2. पतलराई	2. कचनार	5′—10′, O ×⊖
2. विसा	3. खट्टा	O⊖	2. अरहर
×⊖	4. थोर	3. कामिनी	5′—10′, O +
3. मजनू	5. रेलिया	4. टीकोमा	3. जैंतु
×⊖	6. जंगल जलेबी	5. जरायन	10′—30′, O ×
4. झाऊ	7. मेंहदी	6. मोंगरा	4. झाऊ
O⊖	8. अंग्रेजी कीकर	7. रुक्मिणी	10′—15′, O⊖
	9. भसकुटी		
	10. कनेर		

विशेष—×कलम से, ◘ दाब कलम से, O बीज से, ↑ अधो=भूस्तरी से प्रचारण, ⊖ नमजलवायु अनुकूल, + शुष्क जलवायु, Δ पुत्ती।

इन दोनों तालिकाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार वृति पौधों को लगाया जा सकता है झाड़ियाँ तैयार करने के लिए। इनमें से अधिकांश वृत्तियों (झाड़ियों) का प्रचारण बीजों के द्वारा किया जा सकता है। इन्हें नालियाँ बनाकर लगाना चाहिए। नालियों के कंकड़-पत्थर हटा देने चाहिए। उनकी भी काफी गहराई होनी चाहिए। इसके अलावा वृतियों (झाड़ियों) का प्रचारण कलम, दाब कलम और पुत्ती (Bulbils) से भी किया जाता है। बाड़ के संधारण के लिए पत्तियों की खाद निरन्तर देने से काफी लाभ पहुँचता है। इसके साथ ही खुर्पी से निराई-गुड़ाई आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए। आवश्यकतानुसार इनकी प्रारम्भिक काट-छाँट पौधों के प्रकार के ऊपर निर्भर करती है। इनमें से मृदुस्तम्भ (Soft Stem) वाली वृत्तियों की काट-छाँट उसके काष्ठ की कठोरता के बाद ही करनी चाहिए। छोटी वृत्तियों को 30 सें० मी० के ऊपर बढ जाने पर ही काटना चाहिए इससे बगल की शाखाएँ अधिक बढ़ेंगी और पौधा घना हो जायेगा। काट-छाँट कैंची से ही करनी चाहिए। सख्त लकड़ी काटने के लिए सदैव सिकेटियर का ही प्रयोग करना चाहिए। वृत्तियों का विश्रांति काल बीज पकने से नई वृद्धि निकलने के आरम्भ तक होता है। इस स्थिति में अत्यधिक सिंचाई नही करनी चाहिए। अधिक सिंचाई करने से जड़ें ऊपर की ओर फैलने लगती हैं और गहरी नहीं जाती हैं।

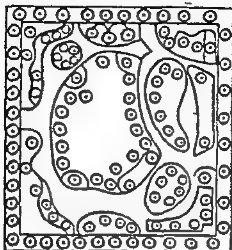
किनारी लगाना (EDGING)

कम वृद्धिवाले कठोर पौधे अथवा छोटी-छोटी क्यारियाँ अथवा पट्टियाँ अथवा ईंटो से पंक्ति बनाना ही किनारी लगाना कहलाता है। इसका प्रयोग पुष्पों की क्यारियों को मार्गों से पृथक् करने के लिए किया जाता है। यह दो प्रकार की होती हैं 1. जीवित (Live Edges) 2. यांत्रिक (Mechanical Edges) प्रथम मे छोटे अलकृत पुष्पों व पत्तियों के कम वृद्धि करने वाले पौधे लगाये जाते हैं। द्वितीय मे रंगीन ईंटें अथवा कटे पत्थर उपयोग में लाये जाते हैं। कभी-कभी घास को भी पट्टी के रूप में लगाया जा सकता है; किन्तु इसका रंग ठीक बना रहे इस बात की देखभाल अवश्य करते रहना चाहिए। इस घास की पट्टी के चारों ओर भी अन्य छोटे-छोटे पौधे लगाये जा सकते हैं, इससे दो किनारियाँ एक साथ बन जाती है। जैसे—एक्लीफा, इक्सोरा, बनर्वाजिया आदि।

झाड़ियाँ व उनसे पट्टियाँ बनाना (SHRUBS AND SHRUBBERY BORDERS)

उद्यान कला मे क्षुपकिनारो, छोटी-छोटी पट्टियों को बड़ी क्यारियों के किनारे लगाना कहलाता है। ये क्षुप किनारियाँ घर के आंगन में, उद्यान में

अथवा अन्य क्षेत्रों के किनारों पर लगाई जाती हैं। कभी-कभी ये सड़कों के किनारों पर भी लगी हुई देखी गई हैं। इसके अलावा ये पुष्पों की क्यारियों के बाहर अथवा अलंकृत पौधों के बाहर भी लगाई जाती हैं। इनका महत्व साथ लगे हुए पौधों के साथ ही प्रदर्शित होता है।



(चित्र-क्षुप किनारियाँ)

इसके लगाने से एक तरह का दीर्घ प्रभाव पड़ता है। इसका प्रभाव लम्बाई, दूरी व दृश्य से ही कम या अधिक पड़ता है, ये स्थायी अथवा अस्थायी दोनों प्रकार की होती हैं। इनके लिए कठोर पौधे अथवा छोटी-छोटी क्यारियों में फूलों की क्यारियाँ भी प्रयोग में ली जा सकती हैं। ऊपर दिये गए चित्र में क्षुप किनारियाँ स्थलदृश्य के निश्चित मान्यताप्रदान अभिन्यास के लिए दी गई हैं। इसके साथ ही मिश्रित कठोर पौधों की बनी किनारी किस प्रकार प्रभावित करती है, यह दर्शाया गया है। इन क्षुप किनारियों के द्वारा एक ही तरह के पौधों का दोहरा रोपण हो जाता है। इसी कारण इनका अलकृत उद्यान कला में भी विशेष महत्त्व हो गया है।

अनौपचारिक विधि से लगाई गई कठोर पौधों की किनारियाँ ही हमें अब सड़कों की किनारी अथवा चरागाहों की क्षुप किनारियाँ प्रदान कर सकती हैं। देखिए ऊपर दिया गया चित्र।

क्षुप पौधों के गुण, रंग और ऊँचाई तथा पुष्पन के समय आदि का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। यदि एक किनारे पर लाल रंग आरम्भ किया है तो मध्य में सफ़ेद अथवा गुलाबी अथवा पीला अथवा नारंगी रंग और दूसरे किनारे पर फिर लाल रंग रखना चाहिए। इसके साथ ही सुगन्धि का भी विशेष ध्यान रखना चहिए। एककिनारे कोई अर्द्ध छाया की स्थिति में बर्गामोट (Bergomot)

से लेकर दूसरे किनारे पर लिली की सुगन्धि देनी चाहिए।

जब एक बार पुष्पन होने लग जाए तो वह ऋतु परिवर्तन अथवा पौधों के जीवन की समाप्ति तक रुकना ही नहीं चाहिए। किनारी के लिए पौधों का वर्गीकरण कर लेना भी ठीक रहता है ; क्योंकि कुछ पौधे ऐसे होते हैं जो खास ऊँचाई पर जाकर और समानान्तर पर फूल देते हैं। कुछ छोटे व बड़े आकार के होते हैं। किनारी में एक ही वर्ग के पौधे लगाने ठीक रहते हैं।

कठोर किनारियों के रोपण में उनकी अनुकूलता (Adaptability) का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए; क्योंकि इनमें से कुछ एक को अधिक धूप और कुछ एक को अधिक छाया पसन्द होती है।

पर्णपाती क्षुपों को सदा हरित क्षुपों के मध्य लगाना चाहिए; क्योंकि खुले स्थान पर लगाने से पर्णपाती क्षुप जब पत्तियाँ रहित हो जाती हैं तब अप्रिय लगती हैं।

क्षुप पौधों को ऊँचाई में क्रमानुसार लगाना चाहिए। क्षुपों की किनारी को झाड़ियों से 120-150 सें० मी० की दूरी पर लगाना चाहिए। इससे क्षुप पौधे आसानी से वृद्धि पा सकेंगे। इसके लिए बहुधा सदाहरित पौधे पावस ऋतु में और पर्णपाती पौधे सुषुप्तावस्था में लगाये जाते हैं। सदाहरित क्षुपों में पत्तियों का रोपण से पूर्व थोड़ा अथवा ज्यादा विरलन कर लेना चाहिए और फिर रोपण के बाद ही सिंचाई कर देनी चाहिए।

ऊँचे प्रकार के सदाहरित क्षुपों में लैन्टाना जिसमें लाल-पीले पुष्प लगते हैं; ऐकीनिया जिसमें लाल रंग के पुष्प लगते हैं, सेस्ट्रम जिसमें सफ़ेद रंग के पुष्प लगते हैं और हिबिस्क्यूरोसा जिसमें गुलाबी व लाल रंग के पुष्प लगते हैं, उल्लेखनीय हैं।

मध्यम ऊँचाई के सदाहरित क्षुपा में मुराया इक्सोटिका जिसमें सफेद पुष्प लगते हैं, डोडोनिया मिस्कोसा जिसमें हल्के पीले पुष्प लगते हैं, ड्रैकोनो जिसकी पत्तियाँ अति सुन्दर होती हैं, ग्रैप्टोफिलम जिसकी पत्तियाँ सफेद चित्तीदार होती हैं, यसेन्डा जिसमें नारंगी रंग के सफ़ेद पखुड़ियाँ वाले पुष्प लगते हैं तथा सेंजोविया जिसमें सफ़ेद धारी वाली पत्तियाँ लगती हैं, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

छोटी ऊँचाई के सदाहरित क्षुपों में ड्हालीकैन्थस, ट्राइडेस कैन्शिया, ऐलिपीनिया, जस्टीसिया, फर्न और क्रोटन आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी पत्तियाँ बहुत सुन्दर होती हैं।

एक वर्षीय क्षुप (ANNUAL SHRUBS)

किनारी में पौधे पुष्पों के लिए ही लगाये जाते हैं। ये पुष्प-पौधे लम्बे, मध्यम व छोटे होते हैं। लम्बे पौधों में कॉर्नफ्लावर, गुलदावदी, लार्कस्पर हेलीक्राइज्म, और कॉस्मॉस उल्लेखनीय हैं। इनमें पौधों की आपस की दूरी 30 सें० मी० तक रखी जाती है। मध्यम ऊँचाई के पौधों में ऐस्टर, लाइनेरिया, कार्नेशन, कैलीफोर्निया उल्लेखनीय हैं। इनकी आपसी दूरी 15 सें० मी० रखी जाती है। इनकी ऊँचाई अनुमानतः 60 सें० मी० होती है। कम ऊँचाई वाले पौधों में स्वीट ऐलाइजम, वरबेना, कैलेण्डुला और हेजी उल्लेखनीय हैं। इनकी ऊँचाई 22-23 सें० मी० होती है और आपसी दूरी 15 सें० मी० तक रहती है। ये सभी एक वर्षीय पौधे क्षुप क्यारियों में अक्टूबर मास में बोने चाहिए। दिसम्बर से फरवरी मास तक इनमें इनके फूल वाटिका को सुशोभित करते रहते हैं।

वर्षजीवी पौधों का वर्गीकरण

इन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

1. शीतकालीन 2. ग्रीष्मकालीन 3. पावसकालीन या वर्षाकालीन

1. शीतकालीन—ये सितम्बर से अक्टूबर मास में बोये जाते हैं और शीत ऋतु में बड़े होकर फलते-फूलते हैं।

2. ग्रीष्मकालीन—ये उत्तरी भारत के क्षेत्रों में दिसम्बर से जनवरी मास तक बोये जाते हैं और पर्वतीय स्थानों पर ये मार्च से मई मास तक बोये जाते हैं। कठोर प्रकार के वर्षजीवी पुष्प पौधे वसन्तऋतु में अथवा अगस्त से अक्टूबर मास में बोये जाते हैं।

3. पावसकालीन—इस समय के पौधों में अधिक जल और गर्मी सहन करने की क्षमता होती है तथा ये पावसऋतु में ही फूलते हैं। इन्हें अधिकांशतः अप्रैल से मई मास में बोया जाता है।

11.	कोर्नफ्लावर	”	30	30 से 60	जाड़ों में	सफेद, नीले व गुलावी पुष्प ।
12.	कोरिओप्सिस	”	30	30 से 60	जाड़ों में	पीले व लाल पुष्प ।
13.	कॉसमॉस	”	23	60 से 120	जाड़ो में	गुलावी, लाल व सफेद पुष्प ।
14.	क्राइजेंन्थेमम	”	30	45 से 60	जाड़ों में	विभिन्न रंगों के छोटे पुष्प ।
15.	गार्डन पोपी	”	45	30 से 45	जाड़ों के आरम्भ में	विभिन्न रंगों के पुष्प ।
16.	गेमांलेप्सिस	”	15	23	”	पीले रंग के पुष्प ।
17.	जिप्सोफिला	”	45	45	”	सफ़ेद व लाल रंग के पुष्प, गमलो में भी लगते हैं ।
18.	डेजी	”	15	15 से 23	जाड़ो या गर्मी	गुलावी व सफ़ेद पुष्प, गमलों में भी लगते हैं ।
19.	डहेलिया	”	30	90 से 120	”	विभिन्न रंगों के पुष्प, जड़ व बीज से प्रचारण ।
20.	डायन्थस	”	30	30	जाड़े के आरम्भ मे	विभिन्न रंगों के पुष्प, गमलों में भी लगते हैं ।
21.	पिटूनिया	”	25	30 से 90	जाड़े व गर्मी	विभिन्न रंगो के पुष्प ।
22.	पैंजी	सितम्बर	15	15 से 23	जाड़े के आरम्भ में	तितली की तरह के विभिन्न रंगों के पुष्प ।
23.	फ्लोक्स	अक्टूबर	23	23 से 45	”	विभिन्न रंग के पुष्प ।
24.	भरवीना	”	23	—	जाड़े के आरम्भ में	विभिन्न रंगों के पुष्प ।
25.	मिग्नोनेट	”	15	30 से 45	”	पीले व सफ़ेद रंग के सुगंधयुक्त पुष्प ।
26.	मेरीगोल्ड	”	30	30 से 90	”	पीले व नारंगी पुष्प, गमलों मे लग सकते हैं ।

शीतकालीन वर्षजीवी पुष्प-पौधों की तालिका

क्रम संख्या	पुष्प	बोने [illegible] समय	रोपण की दूरी सें० मी० में	ऊंचाई सें०मीटरों में	पुष्पन का समय	अन्य विवरण
1.	ओवजेलिस	अक्टूबर	15	15 से 23	जाड़े के आरम्भ में	छोटे छोटे पीले व गुलाबी पुष्प।
2.	एग्रोसटिस	"	15	15	—	क्यारियों में लगाने वाली घास।
3.	ऐगेरेटम	"	30	15 से 30	जाड़ों में	नीले अथवा पीले पुष्प।
4.	ऐंटीराइनम	"	30	30 से 90	जाड़ो में	क्यारियों या गमलों में लगाए जाने वाले पुष्प
5.	ऐनीमोन	"	30	15	जाड़ों में	गमलो में लगाने वाले विभिन्न रंग के पुष्प।
6.	ऐलीसम	"	25	15	जाड़ों में	गमलों में लगाने वाले विभिन्न रंग के पुष्प।
7.	क्लारकिया	"	25	45	जाड़ों में	विभिन्न रंग के पुष्प।
8.	कार्नेशन	"	15	23 से 45	जाड़ों में	विभिन्न रंगों के पुष्प, गमलों में रोपण, प्रचारण लेयरिंग से भी हो सकता है।
9.	फ्लैन्डुला	"	23	30	सितम्बर से	पीले व नीले रंग के पुष्प।
10.	कैन्डेनुला		15	30 से 45	अक्टूबर में	विभिन्न रंग के पुष्प।

1	2	3	4	5	6	7
11.	कोर्नफ्लावर	,,	30	30 से 60	जाड़ों में	सफ़ेद, नीले व गुलाबी पुष्प।
12.	कोरियोप्सिस	,,	30	30 से 60	जाड़ों में	पीले व लाल पुष्प।
13.	कॉसमॉस	,,	23	60 से 120	जाड़ों में	गुलाबी, लाल व सफ़ेद पुष्प।
14.	क्राइजेंथेमम	,,	30	45 से 60	जाड़ों में	विभिन्न रंगों के छोटे पुष्प।
15.	गार्डन पोपी	,,	45	30 से 45	जाड़ों के आरम्भ में	विभिन्न रंगों के पुष्प।
16.	गेमांलेप्सिस	,,	15	23	,,	पीले रंग के पुष्प।
17.	जिप्सोफिला	,,	45	45	,,	सफ़ेद व लाल रंग के पुष्प, गमलों में भी लगते हैं।
18.	डेज़ी	,,	15	15 से 23	जाड़ों या गर्मी	गुलाबी व सफेद पुष्प, गमलों में भी लगते हैं।
19.	डहेलिया	,,	30	90 से 120	,,	विभिन्न रंगों के पुष्प, जड़ व बीज से प्रचारण।
20.	डायन्थस	,,	30	30	जाड़े के आरम्भ मे	विभिन्न रंगों के पुष्प, गमलों में भी लगते हैं।
21.	पिटूनिया	,,	25	30 से 90	जाड़े व गर्मी	विभिन्न रंगों के पुष्प।
22.	पेंजी	सितम्बर	15	15 से 23	जाड़े के आरम्भ मे	तितली की तरह के विभिन्न रंगों के पुष्प।
23.	फ्लोक्स	अक्टूबर	23	23 से 45	,,	विभिन्न रंग के पुष्प।
24.	वरबीना	,,	23	—	जाड़े के आरम्भ में	विभिन्न रंगों के पुष्प।
25.	मिग्नोनेट	,,	15	30 से 45	,,	पीले व सफेद रंग के सुगंधयुक्त पुष्प।
26.	मेरीगोल्ड	,,	30	30 से 90	,,	पीले व नारंगी पुष्प, गमलों में लग सकते हैं।

1	2	3	4	5	6	7
27.	गमफ्रेनिम	"	30	30 से 90	"	लाल, गुलाबी, पीले व भूरे पुष्प।
28.	गर्बेरा	"	15 से 23	30 से 90	"	नीले, बैंगनी, गुलाबी व सफेद पुष्प।
29.	गाइनेरिया	"	23 से 30	15 से 30	"	हल्के व गहरे रंगों के पुष्प।
30.	गाईनम	"	23 से 30	23 से 30	"	बैंगनी व लाल रंगों के पुष्प।
31.	ग्लूनिम	"	15	45 से 60	"	नीले, सफ़ेद, गुलाबी व पीले पुष्प।
32.	गाल्विया	"	45	30 से 45	"	लाल व नीले पुष्प।
33.	ग्लोगेरिया	"	30	30 से 45	"	गुलाबी व सफेद पुष्प।
34.	गाइनेरिया	सितम्बर	30 व 90	23 से 45	जाड़ों में	विभिन्न रंगों के पुष्प।
35.	हीटपोज	अक्टूबर	15	90 से 150	दिस० से फर०	विभिन्न रंगों के पुष्प, खूटियों पर चढ़ाये जा सकते हैं।
36.	हेलीपाइरम	"	45	150 से 180	जाड़े के आरम्भ	सफ़ेद, गुलाबी, बैंगनी व पीले रंग के पुष्प।
37.	होली होक	"	38	150 से 180	"	विभिन्न रंगों के पुष्प।

ग्रीष्मकालीन व पावसकालीन वर्षजीवी पुष्प-पौधों की तालिका

क्रम संख्या	पुष्प	बोने का समय	रोपण की दूरी सें० मी० में	ऊँचाई सें० मी० में	पुष्पन का समय	अन्य विवरण
1.	ऐमेरेन्थस	जून-अगस्त	30	45 से 90	अगस्त-अक्टूबर	पुष्प व सुन्दर रंग की पत्तियाँ।
2.	कोक्सकोम्ब	वर्षाऋतु	38	15 से 23	जुलाई-अक्टूबर	सफ़ेद, पीले व नारंगी रंग के पुष्प।
3.	कोरियोप्सिस	जन०-जून	15	45 से 90	गर्मी व बरसात में	पीले, लाल व भूरे रंग के पुष्प।
4.	कॉसमॉस	जून०-मार्च	23	45 से 120	व०, गर्मी व शीत	सफ़ेद, गुलाबी, लाल व पीले पुष्प।
5.	गिपार्डिया	जन०-जून	30	45 से 90	गर्मी व बरसात	विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े पुष्प।
6.	गैम्फ्रीना	जून०-अग०	30	60 से 90	वर्षा व शीतकाल	सफ़ेद, लाल, गुलाबी व नारंगी पुष्प।
7.	मेरी गोल्ड (गेंदा)	जून०-अग०	23	45 से 75	"	पीले व नारंगी रंग पुष्प।
8.	जीनिया	मार्च-अगस्त	30	60 से 75	वर्षाऋतु	लाल, नीले व सफ़ेद रंग के पुष्प।
9.	टार्थूरेनिया	मई-जुलाई	10	23 से 30	ग्रीष्म व वर्षा	नीले, सफेद व पीले पुष्प।
10.	वरबेसिना	दिस०-मार्च	23	60 से 90	वर्षा-जाड़े का आरम्भ	गहरे पीले रंग के पुष्प।
11.	पिटूनिया	अक्टू०-नव०	15	23 से 30	फर०- जून	सफ़ेद, गुलाबी, लाल, नीले, बैंगनी पुष्प।
12.	सनफ्लावर	दिस०-जून०	30	90 से 180	गर्मी-वर्षा	पीले व नारंगी रंग के पुष्प।
13.	सालविया	अक्टू०-नव	30	60 से 75	वर्षा ऋतु	सफ़ेद, लाल व नीले पुष्प।
14.	पालसम	जून०-अग०	15	30 से 45	"	सफ़ेद गुलाबी, लाल, पीले पुष्प।
15.	सेलोसिया	" "	30	23 से 30	जुलाई-अक्टूबर	पीले व बैंगनी रंग गुच्छों में।

पुष्पलताएं (FLOWERING CLIMBERS)

जो पौधे स्तम्भ के दुर्बल होते हुए भी अपने निकटस्थ पौधो अथवा घर को दीवारो के सहारे चढते हैं और जीवन यापन के लिए वायु व प्रकाश का उतनी ही सीमा तक उपभोग करते हैं जितनी कि दृढ़ स्तम्भ वाले पौधे अथवा वृक्ष, वे लताओ के नाम से पुकारे जाते हैं, ये सुन्दर सुन्दर पुष्पों से लदे होने के कारण अधिक लोकप्रिय हैं। ये लताएँ कई साधनों से ऊपर चढती हैं। इनमें से कई तो अपनी शाखा के ऊपर स्थित तन्तु (Tendril) के द्वारा चढ़ती हैं, कई पत्ती का ही रूपान्तर होने से अपने सम्बल पर लिपटती जाती हैं। कई अपनी जड़ों के सहारे चढती हैं तथा कई कांटों के साधन से चढ़ती हैं। इनमें मुख्य लताएं इस प्रकार हैं—

1. प्रज्ञापन (Showy) और आज़ादी से पुष्पन करने वाली लताएँ।

2. छाया में उत्पन्न होने वाली लताएँ यथा ट्रैक्लोस्पर्नम्, आइपोमिया, जैक्वीनोन्टिया, क्लोरेड्यन्ड्रोन आदि।

3. बेरी (Berry) इनमें छोटे-छोटे फल लगते हैं जो देखने में बहुत सुन्दर लगते हैं।

4. सुगन्धित पुष्पों की लताएँ यथा मेरेमेरेचल नील, चमेली, हनवीसक्ल गुलाब आदि।

5. पत्तियों वाली लताएँ यथा मोन्सटेरा, पैथोस और ऐसपैरेगस आदि।

6. बाउगनवलिया लताएँ स्तम्भ के ऊपर पौधों को बढाने में काम आती हैं।

हल्की व भारी लताएँ—इनमे से कुछ लताएँ कम वृद्धि होने के कारण छोटी ही रह जाती हैं और कुछ तो बड़ी दीवारों को भी आच्छादित कर देती हैं, जैसे विस्टारिया और प्रोस्टिजिया। छोटी लताओं में नस्टरशियम और मिना उल्लेखनीय हैं।

इनके उत्पादन का कोई एक सामान्य सिद्धान्त नहीं है। पौधों को उगाने के सभी साधन होतेहुए भी लताओं की भी अपनीअपनी आवश्यकताएँ होती हैं। इनमें से कुछ छाया में विकसित होती हैं, कुछ तीव्र प्रकाश में; कुछ एक उर्वर मिट्टी में ही उत्पन्न की जा सकती हैं तथा कुछ एक किसी भी मिट्टी में उगाई जा सकती हैं। इनके उत्पादन में यह ध्यान रखना चाहिए कि ये घरेलू वाटिका में दूसरे पौधों के साथ ठीक प्रकार से रह सकें। कभी ऐसी स्थिति भी आ जाती है जबकि लताओं को एक साथ उगाना पड़ता है। इससे ये आपस में लिपटकर व्यक्तिरेचनीय प्रभाव दर्शाती हैं। उदाहरणतः पीट्रिया को बाउगनविला के साथ उगाया जा सकता है। कुछ एक ऐसी भी लताएँ होती हैं जिनकी ओर उत्पादन के बाद विशेष ध्यान नहीं दिया

जाता है। इनमें से केवल मृत शाखाओं या पत्तों का निकालना ही काफी रहता है, कुछ एक ऐसी लताएँ होती हैं जिनका हर वर्ष कृन्तन करना आवश्यक होता है तभी अच्छा परिणाम दिखा सकती हैं, यथा गुलाब आदि।

प्रस्तर-उद्यान (ROCK-GARDENS)

प्रस्तर-उद्यान को हमेशा अधिक खुले स्थान पर ही लिया जाना चाहिए। इसे वृक्षों व झाड़ियों से सदा दूर ही रखना चाहिए; क्योंकि प्रस्तर पौधों की जड़ें काफी कठोर होती हैं और काफी फैलती हैं। इस कारण ये काफी दूर-दूर तक की नमी व खाद का शोषण कर लेती हैं। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में प्रस्तर पौधों की क्यारियाँ पूर्व-पश्चिम की दिशा में बननी चाहिए। अधिक शुष्क क्षेत्रों में उत्तर-दक्षिण में रखना ही ठीक रहता है। इससे सभी प्रस्तर पौधों को सूर्य का ताप कम मात्रा में ही मिलेगा। अधिक हवा वाले क्षेत्रों में विशेषतः वहाँ हवा शुष्क चलती है, वहाँ पर भी पौधों को नहीं लगाना चाहिए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तर उद्यान को लगाने से पूर्व उचित स्थान का चयन करना चाहिए। हवा के प्रकोप को बाढ़ लगाकर भी रोका जा सकता है; किन्तु यह क्यारी से विशेष दूरी पर रहनी चाहिए ताकि उसकी जड़ें क्यारी में उगाये जाने वाले पौधों से स्पर्धा न पैदा कर पाये। इसकी पूर्ति कुछ बेलों को चढ़ाकर भी की जा सकती है।

प्रस्तर उद्यान में भूमि के ढलाव का विशेष महत्व है। यदि भूमि का ढलाव अधिक है तो यह प्रस्तर उद्यान लगाये जाने में अधिक बाधक नहीं होगा। ऐसी दशा में छोटे-छोटे पत्थरों के टुकड़े बीच-बीच मे रखने चाहिए, जिससे वे छोटी-छोटी पहाड़ियों का रूप ले लेते हैं। इसके अलावा ऐसी ढलाव भूमि में सीढ़ियाँ-नुमा छोटी-छोटी क्यारियाँ काटी जानी चाहिए। इनकी ऊँचाई 30 सें० मी० चौड़ाई 45 सें० मी० तक होनी चाहिए। इन दीवारों पर मिट्टी को रोकने के लिए पत्थरों की नीची दीवार बनानी चाहिए। यदि भूमि का ढाल दक्षिण दिशा की ओर है तो यह दशा उन प्रस्तरों पौधों के लिए ठीक रहेगी जिन्हें सूर्य प्रकाश अधिक चाहिए। कम प्रकाश चाहने वाले प्रस्तर पौधों को उत्तर दिशा का ढाल ही ठीक रहता है। इनमें पगडंडियाँ सुविधानुसार बनायी जा सकती हैं; किन्तु ये प्रत्येक क्यारी की दीवार के सहारे होनी चाहिए।

प्रस्तर पौधों को जहाँ तक हो सके प्राकृतिक मिट्टी में ही उगाना चाहिए। इससे व्यय भी कम होगा। समतल भूमि पर प्रस्तर उद्यान को उससे ऊँचे स्तर पर बनाना चाहिए। वैसे इनके लिए उदासीन (Neutral) अथवा हल्की क्षारीय मिट्टी अच्छी रहती है; किन्तु रोडेंड्रोन और जेर्नेशियम आदि प्रस्तर पौधों के लिए अम्लीय मिट्टी ठीक रहती है। निम्नलिखित प्रस्तर पौधे विशेषतः उल्लेखनीय हैं:—

प्रस्तर पौधों की तालिका

क्र. सं.	प्रस्तर पौधों के नाम	प्रस्तर पौधों के गुण
1.	आर्टीमीसिया	सफेद चाँदी के रंग की पत्तियाँ, धूपवाले स्थानों के लिए उचित पत्तियों में सुगन्ध।
2.	ओवोटा	धूप वाले स्थानों के लिए उपयुक्त है। यह भूरी चादर बनाती है। इसकी कई किस्में हैं।
3.	एकीनाज	पीलापन लिए हुए हरी पत्तियां। माइक्रोफिला की भूरी पत्तियाँ व लाल कांटे।
4.	एकीलाज	सफ़ेद चाँदी जैसी पत्तियां। सफेद अथवा लाल डेजी जैसे पुष्प।
5.	एदकोनिमाज	बड़े-बड़े गुलाबी अथवा लाल पुष्प। इसके लिए अधिक गर्म व शुष्क वातावरण ठीक रहता है।
6.	एस्पर्कुलास	इसके पुष्प पहले सफेद और बाद में गुलाबी रंग के मिलते हैं। इसकी भूमि के भीतर गाँठें होती हैं।
7.	ऐलाइसम	चमकीले पीले पुष्प। पुष्पित होने पर शाखाओं के शीर्षों को काटने से ज्यादा फूल देती है। इसके लिए धूप उपयुक्त है।
8.	ऐन्ड्रोसैक	इसमें चटाई जैसे गोल रंगीन पु[illegible] आते है। इसके पौधे व तना गुलाबी होता है।
9.	ऐनीमोन	इसमें सुन्दर सफ़ेद पुष्प, हल्के पीले पुष्प और गुलाबी रंग के पुष्प लगते हैं।
10.	ऐंटीनेरिया	सिलेटी पत्तियाँ व बटन के आकार के पुष्प जो विशेष सुन्दर नही होते पर डाइओका किस्म के पुष्प आकर्षक गुलाबी होते हैं।
11.	ऐंथीमिस	सुन्दरता से कही चाँदी की सी सफ़ेद पत्तियाँ जिनके ऊपर गर्मियों में पीले पुष्प खिलते हैं।
12.	ऐंटीराइनम	इसके पौधे झूलती चटाई बनाते हैं और उन पर पीले पुष्प खिलते हैं।
13.	ऐरेबिस	गुलाबी पत्तियाँ व पुष्प।
14.	ऐरोनेरिया	सफ़ेद सुन्दर पुष्प व छोटी पत्तियाँ।

15.	ऐस्टर	सफ़ेद व हल्के नीले रंग के पुष्प जो केवल शीतल वातावरण में ही पनपते हैं।
16.	कम्पैनुलाज	रंगीन घंटियों जैसे पुष्प। विभिन्न रंगों में कई किस्में पायी जाती हैं।
17.	कैल्सोओरियाज	हल्की हरी पर सुनहरी पुष्प। ये नमी वाले स्थानों के लिए उपयुक्त हैं।
18.	कैंडीटपटस	चार पंखुड़ियों वाले सफ़ेद पुष्प और हरी पत्तियाँ।
19.	डायैन्थस	कई तरह के रंग सफ़ेद से लेकर लाल तक की सभी श्रेणियाँ।
20.	ड्रास	नीले पुष्प और ठंडे स्थानों के लिए उपयुक्त।
21.	जिप्सोफिलाज	गुलाबी पुष्प व हरी पत्तियाँ।
22.	जिरेनयम्स	छोटी हरी पत्तियाँ व गुलाबी पुष्प।
23.	जेन्शियनस	नीले पुष्प व छाया चाहने वाले पौधे।
24.	सीरेटोस्टीग्या	नीले पुष्प व कांस के रंग की चादर बनाती पत्तियाँ।
25.	हाइपरीकम्स	सिलटी हरी पत्तियाँ।
26.	हीपोक्रेपिस	मटर के जैसे पीले पुष्प।
27.	हैल्लोंपेपस	सुनहरी पुष्प व गहरी हरी पत्तियाँ।
28.	हैलीक्राइजम	सफ़ेद पुष्प व हरी पत्तियाँ।

इनके अलावा भारत में आजकल कैक्टस लगाने का भी प्रचलन यह गर्म जलवायु में खूब पनपता है। इसके विषय में कहा जाता है कि यह दक्षिणी अमरीका का मूल निवासी है। यह कितने ही प्रकार का होता है। क्रिस्टेट कैक्टस सबसे अधिक ऊँचे होते हैं। ये गर्मियों में फूलते-फलते हैं। इस वर्ग की प्रसिद्ध जातियों में प्रिकलीपियर, ओ॰ थाइकोइसी, सिरियसजमाक्रा आदि उल्लेखनीय हैं। मैमिलेरिया कैक्टस छोटी जाति के होते हैं। ये आकार में सीप व बोतलनुमा होते हैं। इनका काफी ध्यान रखना पड़ता है। इसकी प्रसिद्ध जातियाँ इस प्रकार हैं—लैकोफोरा, जिम्नोकैलिशियम, विलियम साई और जिम्नोल्पेटेम्स आदि। इसमें एक और मकड़ी की शक्ल की सुन्दर जाति होती है, जिसका नाम स्ट्रैटोफिल्म आर्नेटम है। इसके आठों कोष्ठों के हर एक कोने पर एक सुन्दर पीला फूल होता है। इस वर्ग की लगभग 350 जातियाँ हैं। सेरी वर्ग के कैक्टस उपवनों आदि के लिए ठीक रहते हैं। ये घर के भीतर नहीं उगाये जा सकते हैं। इसकी बड़े-बड़े फूलवाली किस्में ग्रैन्डिफ्लोरा कहलाती हैं।

हरियाली का लगाना व उसका प्रतिपादन
(MAKING AND MAINTENANCE OF LAWN)

शाद्वल अथवा लॉन सौन्दर्य का आधार होता है। इसके चारों ओर लगे हुए पौधे गृह के सौन्दर्य को बहुगुणित कर देते हैं। इससे अलंकृत बागवानी का महत्त्व बढ़ जाता है। इस प्रकार यह किसी भी बाग या उद्यान का केन्द्र माना गया है। इसे लगाते समय निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

स्थान का चयन (Selection of Site)—लॉन लगाने के लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए जो खुला हुआ हो और उसमें धूप अच्छी तरह आती हो। लॉन लगाने वाले स्थान की मिट्टी क्षारीय होनी चाहिए। सिंचाई का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। घर के बरामदे और खिड़कियों में से लॉन के ऊपर सीधी दृष्टि पड़नी चाहिए ताकि इस दृश्य का पूर्ण लाभ उठाया जा सके।

मिट्टी (Soil)—लॉन लगाने के लिए अच्छी मिट्टी की पूरी तैयारी होनी चाहिए। वहां की उप मिट्टी में जल को ग्रहण करने की पूर्ण क्षमता होनी चाहिए। इसके साथ अधिक जल की स्थिति में जलोत्सारण की जल्दी होने की व्यवस्था होनी चाहिए। इस तरह मिट्टी 5 इंच गहरी उर्वर व भुरभुरी दोमट होनी चाहिए।

प्रारम्भिक कार्य (Preliminary operation)—लॉन लगाने के लिएस्थान पर 18 इंच गहरी खाति खोदने का कार्य सबसे महत्वपूर्ण होता है। इस कार्य को मई-जून मास में करना चाहिए। इन खातियों को खोदने के उपरान्त 21 दिन तक धूप में खुला छोड़ देना चाहिए। इस बीच खातियों की मिट्टी को दो-तीन बार उलटना-पलटना चाहिए। मिट्टी के ढेलों का चूर्ण कर देना चाहिए और कंकड़, जड़ें और तृणक पत्थर आदि अवांछित तत्वों को वहां से बिल्कुल हटा देना चाहिए। इसके साथ ही साफ़ मिट्टी को कई बार सींचना चाहिए। नए उगने वाले तृणकों का तत्काल ही सफ़ाया कर देना चाहिए।

लॉन ऐसा समतल बनना चाहिए जो नयनाभिराम हो। इसका हल्का ढाल घर की विपरीत दिशा में होना चाहिए। इसे समतल बनाने के लिए बड़े तख्ते का प्रयोग करना चाहिए। लॉन वाले स्थान में जलोत्सारण का निश्चय होने से मिट्टी की भौतिक स्थिति भी निश्चित होती जाती है। इससे जड़ों का विकास ठीक प्रकार से होता है। लॉन में कहीं पर भी अधिक जल नहीं ठहरना चाहिए। इससे लॉन को हानि पहुँचती है। जलोत्सारण की सुगमता के लिए लान को अपने चारों ओर की भूमि से 20 सें० मी० ऊँचाई पर रखना चाहिए।

खाद देना (Manuring)—लॉन में उर्वरण के लिए 30 गाड़ी सड़ी-गली

गोबर-कूड़े की खाद प्रति एकड़ के हिसाब से देना चाहिए। खाद को सतह की 8 सें० मी० मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इसके अलावा इसमे 7-8 मन सुपरफॉस्फेट भी प्रति एकड़ के अनुसार मिला देना चाहिए।

घास का चयन (Selection of Grass)—अच्छे लॉन के लिए अच्छी है घास का चयन करना चाहिए। यह घास यथाशीघ्र उगने वाली व शीघ्र फैलने वाली होनी चाहिए। इसका दर्भक (tuft) अच्छा बनाना चाहिए। यह लगातार काटने से खराब होने वाली नहीं होनी चाहिए। सूखा व रोगों से हुई क्षति को सहन करने वाली होनी चाहिए। उसकी हरियाली सदा बनी रहनी चाहिए। ये सब गुण 'हरियाली दूब' में मिलते हैं। यह बंगाल की घास कहलाती है। यह भारत के उत्तरी मैदानों के लिए बहुत अच्छी समझी गई हैं। अधिक छायादार जगहों पर पोआ एनुआ और ओक्जेलिस ठीक रहतो हैं।

घास लगाना—लॉन मे घास लगाने के लिए निम्नलिखित विधियों का अनुकरण करना चाहिए—

(1) घास की जड़ो के न मिलने की स्थिति में उसे बीज द्वारा लगाया जाता है। एक एकड़ भूमि में घास का 10 कि० ग्रा० बीज बारीक मिट्टी में मिलाकर बोना चाहिए। इससे उसका समवितरण हो जाता है। बीज डालने के बाद मिट्टी को थोड़ा-थोड़ा खोदना चाहिए ताकि घास का बीज मिट्टी से अच्छी तरह ढक जाए। फिर हल्के पानी से सिंचाई कर देनी चाहिए। यह सिंचाई नित्य होनी चाहिए। इसमें पानी की धार बहुत बारीक रहनी चाहिए ताकि बीज अपने स्थान से बह न सके। यदि घास का बीज अंकुरित न हो सके तो पुनः बोना चाहिए। पहले कुछ समय तक घास बढ़ने पर दरांती अथवा लम्बे तेज लोहे से काटी जानी चाहिए। बाद में घास के स्थापित होने की दशा में उसे काटने के लिए 'मोअर' मशीन का ही प्रयोग करना चाहिए।

(2) घास लगाने को दूसरी विधि यह है कि घास की छोटी-छोटी जड़ों को हाथ द्वारा 10-15 सें० मी० की दूरी पर लगाया जाता है। यह विधि उस समय विशेष रूप से उपयोगी रहती है जबकि वर्षा के कारण जमीन थोड़ी-थोड़ी गीली रहती है घास की जड़ें सतह पर फैलने लग जाती हैं और छह मास में लान तैयार हो जाता है।

(3) तीसरी विधि द्वारा घास के छोटे-छोटे गुच्छे निकालकर लगाये जाते हैं। ये गुच्छे घनी घास मे से लेने चाहिए। वहाँ पर तृणक भी नही रहने चाहिए। फिर इन गुच्छों को एक दूसरे के पास धरती में रखकर ऊपर से हो थोड़ा-थोड़ा दबाया जाता है। यह कार्य किसी चपटे आकार के तख्ते के टुकड़े के थपेड़े मार कर भी किया जाता है। तत्पश्चात् रौलर से दबाने के बाद उसकी अच्छी प्रकार से सिचाई की जाती है। उष्ण कटिबंधों में अच्छा व शीघ्र लान तैयार करने के

लिए यह विधि सर्वोत्तम है।

(4) इस विधि के अनुसार घास की जड़ें व तने को 4 सें० मी० से 5 सें० मी० टुकड़ों में काट लिया जाता है। फिर थोड़ी-थोड़ी-सी कोब जो कि 33 प्रतिशत टुकड़े 33 प्रतिशत घोड़े की सड़ी लीद की खाद व 33 प्रतिशत ताजा गोबर व दोमट मिट्टी को मिलाकर एक प्रकार का मिश्रण-सा तैयार कर लिया जाता है। तत्पश्चात् इस मिश्रण को धरती पर बराबर-बराबर फैला दिया जाता है और तख्ते से समतल बना दिया जाता है। पन्द्रह दिन के बाद घास फूटने लग जाती है। तीन मास के बाद मेअर का प्रयोग करना चाहिए।

संधारण (Maintenance)—लॉन के पूर्ण रूप से तैयार होने पर घास 4 सें० मी० से 6 सें० मी० की ऊँचाई तक ही काटी जानी चाहिए। इसमें फूल नहीं उगने देना चाहिए। पन्द्रह दिनों के बीच एक बार घास को 'मोइंग' से भी काटना चाहिए। जनवरी व जून मासों में सड़े गोबर कूड़े की खाद की एक इंच मोटी तह अवश्य डालनी चाहिए। इसके अतिरिक्त अमोनियम सल्फेट 12 भाग, सुपर फॉस्फेट 3 भाग, पोटाश का सल्फेट एक भाग का मिश्रण तैयार करके 3 कि० ग्रा० प्रति सौ वर्ग मीटर में डालना चाहिए। इस मिश्रण को वर्ष में 3-4 बार डालना चाहिए। गर्मी के दिनों में लान को हरा-भरा रखने के लिए सिंचाई की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए। गर्मी के दिनों में सिंचाई हर तीसरे दिन और जाड़ों में हर दसवें दिन अवश्य करनी चाहिए। इसके लिए हौज पाइप का ही प्रयोग करना चाहिए। इससे पानी देने में विशेष सुविधा रहती है। लॉन को हमेशा मोथा, उल्लू व कांस आदि तृणकों से बचाकर रखना चाहिए। ये बहुत ही क्षति पहुँचाते हैं। अधिक अच्छे उर्वरण से इन्हें मृतप्राय किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त केंचुए, सफ़ेद मिडारें और कुछ कवकीय व्याधियाँ भी लॉन को क्षति पहुँचाती हैं। इन्हें नीम की खली देने से हटाया जा सकता है और कवकीय व्याधियाँ कॉपर सल्फेट से दूर की जा सकती हैं। काई भी लॉन की शत्रु होती है। इसे भी फौरन ही दूर कर देना चाहिए। इस प्रकार सुरक्षा का ध्यान रखने से लान दस वर्ष तक ठीक स्थिति में रहता है।

सारांश

1. अमूल्य, सुहावने, अलंकृत पुष्प पौधे ही शोभनीय उद्यान की आत्मा है।
2. शोभनीय उद्यान दो प्रकार के होते हैं—(1) कृत्रिम उद्यान (2) प्राकृतिक उद्यान।
3. आवास स्थानों में अलंकृत पौधे आयताकार, गोल या लम्बकार गोलाई लिए हुए ही क्यारियों में लगाने चाहिए।
4. जानवरों से सुरक्षा, वायुवेग से बचाव और विविक्तवास के लिए गृह

वाटिका में क्षुप वृत्तियाँ अवश्य लगानी चाहिए।

5. किनारी का प्रयोग पुष्पों की क्यारियों को मार्गों से पृथक करने के लिए किया जाता है। यह जीवित व यांत्रिक दो रूपों में लगाई जाती है।

6. उद्यान कला में क्षुप किनारी, छोटी-छोटी पट्टियों को बड़ी क्यारियों के किनारे लगाना कहलाता है। इनका महत्त्व साथ लगे हुए पौधों के साथ ही प्रदर्शित होता है।

7. एक वर्षीय क्षुप किनारी में पौधे पुष्पों के लिए ही लगाये जाते हैं। ये लम्बे, मध्यम व छोटे होते हैं।

8. वर्ष-जीवी पौधों का वर्गीकरण इस प्रकार है—1. शीतकालीन 2. ग्रीष्म कालीन 3. पावसकालीन।

9. पुष्प लताओं में प्रज्ञापन और आजादी से पुष्पन करने वाली, टैक्लोस्पर्नम्, आइपोमिया, जैक्वीनोन्टिया, क्लोरेडयन्ड्रोन, बेरी, चमेली, मोन्सटेरा, पैथोस, ऐसपैरेगस, बोगनविला, विस्टारिया और प्रोस्टिजिया आदि उल्लेखनीय हैं। इनके उत्पादन का कोई एक सामान्य सिद्धान्त नहीं है।

10. प्रस्तर उद्यान सदैव खुली जगह व ढलाव भूमि में लगाना चाहिए। इसे वृक्षों व झाड़ियों से सदा दूर रखना चाहिए; क्योंकि प्रस्तर पौधे की जड़ें काफी कठोर होती हैं और काफी फैलती हैं। ये काफी-काफी दूर दूर तक की नमी व खाद का शोषण कर लेती हैं।

11. शाद्वल अथवा लॉन सौन्दर्य का आधार होता है। इसके लिए खुला हुआ स्थान होना चाहिए। इसकी मिट्टी क्षारीय नही होनी चाहिए। सिंचाई का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। यहाँ की उपमिट्टी में जल को ग्रहण करने की पूर्ण क्षमता होनी चाहिए।

12. लॉन लगाने के लिए स्थान की भूमि में 18 इंच गहरी खाति खोदनी चाहिए और 21 दिन तक धूप में खुला छोड़ देना चाहिए। उर्वरण के लिए सड़ी गली गोबर व कूड़े की खाद देनी चाहिए। इसे सतह की तीन इंच मिट्टी के साथ मिला देने चाहिए। लॉन में 'हरियाली दूब' ही लगानी चाहिए। घास $1\frac{1}{2}$ से 2 इंच की ऊँचाई तक ही काटी जानी चाहिए।

13. ग्रीष्म काल में लॉन की सिंचाई हर तीसरे दिन और शीतकाल में दसवें दिन करनी चाहिए। सिंचाई के लिए हौनज पाइप का प्रयोग करना चाहिए।

14. लॉन को मोथा, उल्लू व कांस तृणकों से सदा बचा कर रखना चाहिए।

ये बहुत क्षति पहुँचाती हैं।

15. केचुयें और सफ़ेद गिडारें भी लॉन को क्षति पहुंचाती हैं। इन्हें नीम की खली देने से दूर किया जा सकता है।
16. कवकीय व्याधियों को कॉपर सल्फेट से दूर किया जा सकता है।
17. काई भी लॉन की शत्रु है। इसे देखते ही हटा देना चाहिए।
18. लॉन की सुरक्षा ठीक ढंग से की जाये तो वह 10 वर्ष तक ठीक स्थिति में रहता है।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1. शोभनीय उद्यानों से क्या अभिप्राय है? दिल्ली में निर्मित शोभनीय उद्यानों का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 2. कृत्रिम उद्यान व प्राकृतिक उद्यानों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3. घर के छोटे अहातों में लगाये जाने वाले सुन्दर पुष्प पौधों के नाम लिखिए।

प्रश्न 4. नीचे दिये गये में से अलंकृत पत्तियों वाले वृक्ष, अलंकृत फल वृक्ष और क्षुप पौधे छाँटकर लिखिए :—हजारा नारंगी, अमरोहा कैरम्बोला, पौलिऐल्थिया लोंगिफोलिया, गार्डेनिया ल्यूसिडा, लोसोनिया अल्बा, हिप्टेजमाधव लता।

अलंकृत फल वृक्ष	अलंकृत पत्तियों वाले वृक्ष	क्षुप पौधे
1....................	1....................	1....................
2....................	2....................	2....................

प्रश्न 5. क्षुपवृत्ति से क्या समझते हो? अपने विद्यालय में क्षुपवृत्ति लगाने के लिए तुम क्या करोगे? कौन-कौन से पौधों का चयन क्षुपवृत्ति के लिए करोगे?

प्रश्न 6. क्षुप किनारी से क्या अभिप्राय है? अपने विद्यालय में इसे बनाने के लिए तुम क्या-क्या करोगे?

प्रश्न 7. किनारी कब और क्यों लगायी जाती है?

प्रश्न 8. वर्षजीवी पौधों का वर्गीकरण करते हुए किन्ही दस पौधों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

प्रश्न 9. गृह वाटिका में लगाये जाने वाली पाँच लताओं के नाम लिखिये।

प्रश्न 10. प्रस्तर उद्यान से तुम क्या समझते हो? प्रस्तर पौधों के नाम लिखते हुए बताइये कि उन्हें कब व कैसे लगाना चाहिए।

प्रश्न 11. अपने विद्यालय में लॉन तैयार करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखोगे?

प्रश्न 12. शोभनीय उद्यानों में लॉन का अपना विशेष महत्त्व है, इस पर दो अनुच्छेद लिखिये।

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. प्रस्तर पौधों की सूची तैयार कीजिए।

प्रश्न 2. ग्रीष्मकालीन व पावसकालीन वर्षजीवी पौधों की सूची तैयार कीजिए।

प्रश्न 3. शीतकालीन वर्षजीवी पौधों की सूची तैयार कीजिए।

प्रश्न 4. अपने विद्यालय की दीवारों पर चढ़ाने के लिए लताओं का चयन करके लगाइये।

प्रश्न 5. अपनी गृह वाटिका में सुन्दर-सा लॉन तैयार कीजिए।

प्रश्न 6. अपने विद्यालय में एक सुन्दर-सा प्रस्तर उद्यान लगाओ।

प्रश्न 7. अपनी प्रयोगात्मक पुस्तिका पर क्षुप किनारी की योजना तैयार कीजिए और उसमें लगाये जाने वाले पौधों की तालिका तैयार कीजिए।

प्रश्न 8. दस-दस विद्यार्थियों की टोलियाँ अपने विद्यालय के शोभनीय उद्यान में क्षुपवृत्तियाँ लगाएँ और उनकी देखभाल करें।

8 मुख्य पुष्पों का उत्पादन (CULTIVATION OF IMPORTANT FLOWER PLANTS)

1. गुलाब (ROSE)

1. गुलाब
2. गुलाब का वर्गीकरण
3. कैना
4. गुलदाउदी
5. सारांश

गुलाब को फूलों का राजा कहा जाता है। शोभनीय उद्यान में इसका अपना विशेष महत्व है। यह एक कठोर (Woody) और अनाकर्षक काँटेदार पौधा होता है; किन्तु फूलों के आते ही इसकी सुगन्धि एवं सुन्दर रंग सब को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इस का उपयोग अलंकृत बाड़ बनाने, पैरागोला, आर्वस और चाप बनाने के लिए किया जाता है। इतना ही नहीं, इसका उपयोग गुलाब जल, गुल कन्द और इत्र बनाने के लिए भी किया जाता है। इसका उत्पादन भारत के अतिरिक्त विश्व के प्राय: सभी भागों में किया जाता है।

भूमि (Soil) गुलाब को काफी प्रकाश की आवश्यकता होती है। अत: इसे गमलों की अपेक्षा भूमि में खुले स्थानों पर उगाना चाहिए। भूमि समतल होनी चाहिए और गुलाब के पौधों को तेज हवा से बचाने का समुचित प्रबन्ध रहना चाहिए। यदि जलोत्सारण का अच्छा प्रबन्ध हो तो गुलाब हर



गुलाब

प्रकार की मिट्टी में हो सकता है। वैसे इसकी सफल खेती के लिए उर्वर और भुरभुरी दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। इसमें चूने का थोड़ा-सा अंश रहना भी अच्छा रहता है; क्योंकि गुलाब थोड़ी-सी भी अम्ल की मात्रा सहन नहीं कर सकता है। अम्ल की कुछ न कुछ मात्रा उर्वरण से मिट्टी में आती रहती है। अतः इसके प्रभाव को कम करने के लिए चूना ही हितकर होता है। इसकी खेती एक ही मिट्टी में सिर्फ़ 4 या 5 वर्ष से अधिक नहीं करनी चाहिए; क्योंकि अधिक समय तक एक ही भूमि में उगाने से उसके गौण तत्त्व नष्ट हो जाते हैं जिससे गुलाब के पौधों में अच्छे और बड़े फूल नहीं आते हैं।

क्यारी की तैयारी (Preparation of bed)—गुलाब के लिए क्यारी की भूमि को पहले 3/4 × 3/4 मीटर गहरा खोदना चाहिए। ये इतनी बड़ी बनानी चाहिए ताकि बाहर से ही क्यारियों की निराई, गुड़ाई आदि का काम आसानी से किया जा सके। क्यारियों की खुदी हुई मिट्टी को काफी देर तक ऐसी ही स्थिति में छोड़ देना चाहिए ताकि उसका वातायन भी हो जाए और उसके भीतर के कीड़े और अण्डे तीव्र धूप से मर जाएँ। इन्हें भूमि की सामान्य सतह से कुछ ऊपर उठा रखना चाहिए ताकि वर्षाजल से स्तम्भों को किसी तरह का नुकसान न पहुँच सके।

पौधों के रोपण का समय (Planting time)—गुलाब के पौधों के रोपण का समय उत्तरी भारत के क्षेत्रों में 15 अक्टूबर से 15 दिसम्बर तक होता है। पर्वतीय क्षेत्रों में इसका रोपण मार्च, अप्रैल और अक्टूबर में किया जाता है। गुलाब के पौधों के रोपण के समय मूलों को किसी भी तरह की हानि नहीं होनी चाहिए। यदि एक दो मूलें टूट गई हों तो उन्हें बिलकुल अलग कर देना चाहिए। यदि गुलाब की कई किस्मों का रोपण करना हो तो हरेक को पृथक्-पृथक् क्यारी में लगाना चाहिए। इससे काट-छाँट करने में आसानी रहती है। गुलाब के पौधे लगाते समय यह भी सावधानी बरतनी चाहिए कि कलिकायन स्तम्भ के जिस भाग में है उसे भूमि से कम से कम 10 सें० मी० ऊपर तक रखना चाहिए। इस स्थिति में गुलाब के पौधों के किसी भी भाग को क्षति नहीं पहुँचेगी।

जलवायु (Climate)—गुलाब की विभिन्न प्रकार की किस्में हैं जो विभिन्न प्रकार की जलवायु में उगायी जा सकती हैं। गुलाब के पौधे विश्व के अनुमानतः सभी समशीतोष्ण व उष्ण प्रदेशों में उगाये जा सकते हैं। भारत के मैदानों में गुलाब की जो किस्में उग सकती हैं वे पर्वतीय क्षेत्रों में नहीं उगाई जा सकती हैं। अति शीत अथवा अति शुष्क अथवा गर्म वायु भी इसके लिए हानिकारक है।

खाद देना (Manuring)—गुलाब की खेती में हर वर्ष अत्यधिक खाद की अधिक आवश्यकता होती है। गुलाब की क्यारी की तैयारी के समय पौधे लगाने

से पूर्व मिट्टी के नीचे अनुमानतः 15 सें० मी० सड़े गोबर की खाद का स्तर रखने से विशेष लाभ होता है। अधिक खाद देने से गुलाब की वर्धी वृद्धि (Vegetative growth) होती है, परिणामतः फूल कम लग पाते हैं। इसके विपरीत कम खाद देने से गुलाब के पौधों में कमजोरी आ जाती है। अतः दोनों स्थितियो को ध्यान में रखते हुए ही समुचित मात्रा में खाद देनी चाहिए। प्रथम वर्ष में नये बोये गए गुलाब के पौधों को खाद की कोई विशेष आवश्यकता नही होती है। इसके बाद उनका उर्वरण करना आवश्यक हो जाता है। यह कार्य काट-छाँट के बाद किया जाना चाहिए। पौधे के चारों तरफ30सें०मी०व्यास तक मिट्टी को खोदकर सड़ी गोबर की खाद दबा दी जाती है और तत्पश्चात् इसमें सिंचाई कर दी जाती है। इससे पौधों को नाइट्रोजन तुरन्त प्राप्त हो जाती है। गुलाब के पौधों में पौष्टिकता अधिक दिनों तक बनाये रखने के कारण खली की खाद गोबर की खाद की अपेक्षा अधिक अच्छी मानी जाती है। अकार्बनिक उर्वरकों के रूप मे 6 ग्राम सोडियम नाइट्रेट, 6 ग्राम कैल्शियम नाइट्रेट, 6 ग्राम कैल्शियम साइनेमाइड,6 ग्राम अमोनियम सल्फेट और 6 ग्राम अमोनियम नाइट्रेट मिश्रण अर्थात् 30 ग्राम प्रति वर्गमीटर के अनुसार दी जा सकती है। इन्हे कभी भी शुष्क स्थिति में उपयोग में नहीं लाना चाहिए। इन अकार्बनिक उर्वरकों मे सब से ज्यादा प्रभावशाली अमोनियम नाइट्रेट (38.5 प्रतिशत नाइट्रोजन) और अमोनियम सल्फेट(25 प्रतिशत नाइट्रोजन)होते हैं। इनमें से किसी की भी ज्यादा मात्रा देने से गुलाब के पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक होगी।

भारत में गुलाब की खेती में निम्नलिखित उर्वरकों का मिश्रण साथ में लिखित मात्रा के अनुसार अच्छा साबित हुआ है:—

उर्वरक	अनुमानतः मात्रा
(क) सुपरफॉस्फेट	6000 ग्राम
(ख) पोटाश का सल्फेट	6000 ग्राम
(ग) अमोनिया का सल्फेट	25000 ग्राम
(घ) लोहे का सल्फेट	250 ग्राम
(ङ) अस्थि चूर्ण	3000 ग्राम

ऊपरलिखित उर्वरक मिश्रण अनुमानतः 1000 ग्राम प्रति गुलाब के पौधे की दर से दो या तीन मासों के अन्तर पर दो या तीन बार देना अधिक लाभदायक होता है।

गुलाब के पौधे द्रव खाद देने से भी स्वस्थ रहते हैं। यह एक बड़े पात्र मे जल भरकर ताजे गोबर के मिश्रण से बनाया जाता है। फिर इसे कुछ दिनों तक सड़ने के लिए रख दिया जाता है। जब यह मिश्रण भूरे तिनके का रंग ले ले तो इसे तैयार माना जाता है। इसे संध्या समय गुलाब के पौधों में दिया जाता है।

इसी तरह अन्य रासायनिक उर्वरकों तथा पोटैशम के [illegible] आदि को भी जल का विलय (Solution) बनाकर पौधों में दिया जा सकता है।

क्यारियों का मिट्टी परिवर्तन—गुलाब की खेती में क्यारियों का मिट्टी परिवर्तन बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य है। जिस मिट्टी की उत्पादन शक्ति क्षीण हो जाती है, उसे शीघ्र बदल देना चाहिए। क्यारियों की 90 सें०मी० तक की सतह तक की मिट्टी को परिवर्तित करके बालुई दोमट मिट्टी डाल देनी चाहिए। यह मिट्टी परिवर्तन का कार्य अक्टूबर मास के बाद अथवा जाड़ों के शुरू में करना चाहिए।

प्रचारण (Propagation)—गुलाब के पौधों में कलिका बन्धन की वर्म पद्धति (Shield Method) प्रचलित है। ऐसे पौधों को तीव्र वायु से बचाना चाहिए। प्रचारण के लिए बसन्त ऋतु और सितम्बर मास उपयुक्त रहता है तथा उसके ग्रान्ट और एडवर्ड जैसे अधिक ओजस्वी मूल स्तम्भों का उपयोग करना चाहिए। गुलाब की कलियाँ (Buds) लकड़ी के बक्सों में मोम से ठीक प्रकार सील करके बाहर भेजी जा सकती हैं।

कर्तन (Cutting)—यह विधि बहुत ही सरल है। इसके द्वारा ब्रामर, एडवर्डरोज, रैवलर रोज, और रोज इंडिका का प्रचारण होता है। यह कर्तन का कार्य अक्टूबर से नवम्बर मास में किया जाना चाहिए। गुलाब की कुछ किस्में जुलाई मास मे भी तैयार की जाती हैं। कभी कर्तनें (कलमे) जल की साफ़ बोतलों मे भी उगाई जाती हैं; पर बोतलों का जल दूसरे तीसरे दिन बदलते रहना चाहिए। इनके लिए कर्तन नई वृद्धि से लेनी चाहिए। इन्हें सूर्य प्रकाश भी आवश्यक मात्रा में मिलना चाहिए।

गमलों में उगाना (Growing in pots)—गुलाब के पौधो के लिए बड़े गमले ठीक रहते हैं; क्योंकि छोटे गमलों मे जड़ों का विकास ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। यदि अक्टूबर मास मे गुलाब के पौधों की शाखाओं का कृन्तन करके मूलों को खोलकर खली का मोटा घोल दे दिया जाये तो पौधों मे एक मास के भीतर ही अच्छे फूल आ सकते हैं। दक्षिण भारत के क्षेत्रों में गुलाब के पौधों में दो भाग मिट्टी, आधा भाग रेत, पाँच भाग घोड़े की सड़ी लीद की खाद और थोड़ा-सा अस्थि चूर्ण का मिश्रण दिया जाता है। इसके साथ ही आवश्यकतानुसार मात्रा में द्रवखाद, सूखा खून अथवा रासायनिक खादें भी दी जाती हैं।

शाखाओं की काट छाँट (Pruning)—गुलाब के पौधों के ठीक प्रकार से लग जाने के बाद ही शाखाओं की काट-छाँट का कार्य होना चाहिए। अच्छा तो यह रहता है कि काट-छाँट एक या दो वर्ष पुराने गुलाब के कमजोर पौधों में ज्यादा करनी चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए :—

(क) गुलाब के पौधो की नई वृद्धि को कम करना चाहिए।

(ख) पतली, सूखी, रोगग्रस्त और कठोर शाखाओं की काट-छाँट करनी चाहिए।

(ग) गुलाब की शाखाओं की काट-छाँट इस प्रकार करनी चाहिए कि उनमें एक अथवा दो कली रह जाएँ।

(घ) गुलाब के पौधे को वे शाखाएँ जो आपस में स्पर्धा रखती हों और पौधे के मध्य भाग में हों, उनकी भी काट छाँट करके ठीक कर देना चाहिए।

(ङ) शाखाओं को आपस में ठीक दूरी पर ही रखना चाहिए।

(च) ऐसी कलियों के पास शाखाओं की काट-छाँट करनी चाहिए जो वृद्धि बाहर की ओर करने वाली हैं।

(छ) कभी-कभी गुलाब के पौधों की शाखाओं की काट-छाँट के बाद जड़ों को खोलकर उनकी भी हल्की काट-छाँट कर देनी चाहिए।

(ज) गुलाब के पौधों की काट छाँट केवल औजारों से ही करनी चाहिए।

सिंचाई (Irrigation)—गुलाब के लिए जल व उर्वरकों की आवश्यकताएँ भिन्न होती हैं। अतः इसका पोषण हमेशा अलग क्यारियों में किया जाता है। वर्षा ऋतु के अलावा गुलाब के पौधों की सिंचाई सारे साल नियमित रूप में 10-15 दिन के अन्तर से होनी चाहिए। कभी-कभी पौधों पर भी पानी छिड़क देना चाहिए। इससे पत्तियाँ स्वस्थ रहती हैं। गुलाब के पौधों में आवश्यकता से अधिक जल नहीं देना चाहिए। इससे हानि पहुँचती है। सिंचाई के बाद क्यारियों की गुड़ाई कर देना हितकारी होता है।

रोग व कीट शत्रु (Diseases and Insect Pests)—गुलाब के पौधों का मुख्य रोग मिलड्यू है। इस रोग का प्रकोप छायादार स्थानों में अधिक होता है। इस रोग से पौधों की सुरक्षा के लिए पौधों पर बोर्डो घोल का छिड़काव करना चाहिए। गुलाब के कीट शत्रुओं में दीमक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसकी रोकथाम जल में फिनायल का हल्का घोल तैयार करके, देने से की जा सकती है। इसके अलावा विषैली गैस फेंक कर, डी० डी० टी० छिड़क कर 5% बी० एच० सी० का चूर्ण पौधों के पास की मिट्टी में मिला देने से भी दीमक से पौधों को बचाया जा सकता है। हरी मक्खी गुलाब की कलियों की भयंकर शत्रु है। इससे पौधों की सुरक्षा निकोटिन सल्फेट के छिड़काव द्वारा अथवा विष प्रलोभिका पर आकर्षित करके की जा सकती है। गुलाब की पत्तियों को खाने वाला कैटर पिलर चुनकर नष्ट किया जा सकता है। कैटर पिलर अधिक होने की स्थिति में मिट्टी के तेल व जल का मिश्रण तैयार करके छिड़काव कर देना चाहिए।

2. गुलाब का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF ROSES)

गुलाब का वर्गीकरण उनकी वृद्धि एवं उपयोगिता के अनुसार निम्न प्रकार से किया जाता है—

गुलाब वर्गीकरण तालिका

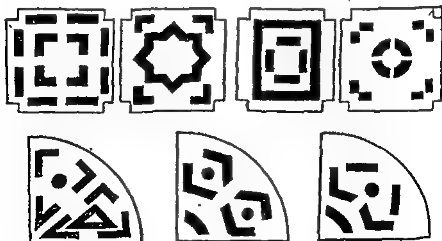
	1		2
	वृद्धि के अनुसार		उपयोग के अनुसार
	(क)	(ख)	
वर्ग	भाड़ीदार गुलाब 1 से 6 इंच की ऊँचाई	लता वाले गुलाब	
1	हाइब्रिड परप्पिचुअल (धाइना रोज, फ्रेंच रोज, डेनिश रोज)	हाइब्रिड टी (जन, मैक. आर्थर)	सामान्य उद्यान के लिए (ग्रावस टिपर्ड क्रिमसन ग्लोरी, गोल्डन क्राउन, लेडी सलिवया)
2	हाइब्रिड टी (ब्यूटी इन्कारटेंट, अलेक्जेंडर)	पारनोटियान (मोर्टसिल्क)	प्रदर्शन के लिए (केलोडोनिया-रेड, गोल्डन डॉन पेलयेलो डी डॉक्टर-सिल्वरी)
3	हाइब्रिड टी रोज (ब्रिलिमंट, कोलम्बिया, डीनहोल मिमविलमॉट, कोरल केलेडोनिया, पिक्चर नाइट)	ग्लोइरयट (नील)	सुगन्धि के लिए (क्रिमसन ग्लोरी, डॉ० घंडेलोर, लेडी सिल्विया)
4	पोलीएन्था कोलोरिया (मुण्डी, एलिस एमोज)	टी	सुन्दर एकल पुष्प (डेक्लिती बैस-सोलमान पिंक, इसोर्सेस, इरिसफायर फ्लेप-सोर्ज क्रिमसन)
5	हाइब्रिड पोलीएन्था	विलिचिरियन (जन. एक्सेलसा, डोरोथी परकिन्स)	ऊँचा स्टेण्डर्ड (बेजूररिचर्ड क्रिमसन ग्लोरी, साउथ पोस्ट, शॉट स्टिक, गोल्डन पिक्चर)
6	स्टेण्डर्ड	हाइब्रिड पोलीएन्था (क्रिमसन रेम्बलर, ब्लुश रेम्बलर)	छोटा स्टेण्डर्ड (ग्लोरी मुण्डी, रोनल्ड ग्रायर, चीपिंग स्टेण्डर्ड; डोरोथीडेमीसान, पार्किन्स)

7	परनीसियाना	—	दीवार पर चढ़ाने वाला (क्लाइमबिंग कैरोटिन टेस्टा, पार्किन्स)
8	चाइना रोज	—	पिलररोज (चेपरिंगपिंक रेम्बलर, क्रिमसन कन्क्यूट, एक्सेलसा)
9	बोर्बानी रोज	—	ग्रीन हाउस क्लाइम्बर (लेडी सिल्विया, शॉर्ट सिक, मैडम बटर फ्लाई)
10	—	—	पॉटरोज (होम पिक्चर, स्वीट)

आधुनिक गुलाब की क्यारियों का रूपांकन—प्रचलित गुलाब की क्यारियों का रूपांकन निम्नलिखित दो प्रकार से किया जाता है—

1. आयताकार अथवा वर्गाकार
2. वृत्ताकार

उपरोक्त रूपांकनों से गुलाब की क्यारियों की शोभा बढ़ जाती है। देखिए चित्र।



चित्र—गुलाब की क्यारियों का रूपांकन

3. कैना (CANNA)

कैना पौधे की जड़ें ज्यादा गहराई तक नहीं जाती हैं। इसकी ऊँचाई भी 90 सें० मी० से 120 सें० मी० तक होती है। इसका उत्पादन विशेषतः इसकी पत्तियों व फूलों के लिए किया जाता है। इसकी पत्तियाँ हरी व ब्रोंज रंग की होती हैं।

मिट्टी (Soil)—कैना पौधों के भली-भाँति विकास के लिए भुरभुरी दोमट मिट्टी (Friable loam) उत्तम रहती है। इसे बलुई या चिकनी मिट्टी को छोड़कर दूसरी सभी प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है। इसकी भूमि खुले वयन की होनी चाहिए।

क्यारी की तैयारी (Preparation of bed)—कैना पौधों की क्यारियाँ मई-जून में 60 सें० मी० गहराई तक खोदी जाती है। इसमें सड़े गोबर की खाद की प्रचुर मात्रा मिलाई जाती है। कभी-कभी थोड़ा चूना भी डालना हितकर होता है। ये पौधे प्रचुर मात्रा में खाद्य पदार्थों का उपयोग करते हैं। अतः क्यारियों में हमेशा प्रचुर मात्रा में खाद बनी रहनी चाहिए। इनकी क्यारियाँ ऐसे खुले स्थान में होनी चाहिए जहाँ पर सूर्य का प्रकाश काफी पड़ सके; क्योंकि कैना की पत्तियों व पुष्पों पर प्रकाश का गहरा प्रभाव पड़ता है। छायादार स्थानों में यह अधिक नहीं पनप पाता है।

रोपण का समय (Planting Time)—मई-जून में क्यारियाँ खाद मिला कर तैयार कर ली जाती हैं और पहली बरसात होने पर उनमें राइजोम के टुकड़े लगा दिये जाते हैं। उनमें रोपण की दूरी अनुमानतः 60 सें० मी० से 75 सें० मी० तक रखी जाती है। छोटे आकार के कैना को 30 सें० मी० की दूरी पर लगाया जा सकता है। वर्षा न होने की स्थिति में टुकड़ों के लगाते ही कैना की क्यारियों की सिंचाई कर देनी चाहिए।

जलवायु (Climate)—वैसे तो कैना हर प्रकार की जलवायु में उगाया जा सकता है; किन्तु उष्ण अथवा उपोष्ण जलवायु में यह सुखी रहता है। यह उष्ण तथा आर्द्रता वाले स्थानों में इसका अधिक विकास होता है।

खाद डालना (Manuring)—कैना के लिए ऊपरी भूमितल पर 30 सें० मी० पर्त सड़े गोबर की खाद अथवा कम्पोस्ट मिलानी चाहिए। इसकी क्यारियों में खाद की जितनी प्रचुरता होगी उतनी ही अधिक मात्रा में फूल निकलेंगे। पर यह गोबर की खाद की मात्रा मिट्टी के अनुसार होनी चाहिए। उर्वरण के समय कैना की क्यारियों में नाइट्रोजन युक्त खाद प्रचुर मात्रा में देनी चाहिए ताकि पौधों में वर्धी वृद्धि हो सके। खाद के साथ-साथ सिंचाई का भी समुचित प्रबन्ध रहना चाहिए। फूलों की अधिक पैदावार के लिए हर छह मास में रासाय-

निक खादों का भी उपयोग करना चाहिए। इनमें अमोनियम सल्फेट दो भाग और अमोनियम फॉस्फेट का पाँच भाग मिलाकर मिश्रण तैयार कर लेना चाहिए।

प्रचारण (Propagation)—कैना के पौधों का प्रचारण वर्धी रीतियों से ही अधिक किया जाता है। इसके राइजोम के टुकड़े लगाये जाते हैं। ये टुकड़े आँख सहित होने चाहिए। कभी-कभी कैना का उत्पादन बीजों के द्वारा भी किया जाता है; किन्तु बीजों का आवरण ज्यादा सख्त होने के कारण अंकुरण में कठिनाई होती है।

सिंचाई (Irrigation)—कैना के उत्पादन में काफी नमी व भूमि में जल की अधिक आवश्यकता होती है। अतः सप्ताह में कम-से-कम एक बार अच्छी तरह सिंचाई करनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में सिंचाई का कार्य हर दूसरे दिन करना चाहिए।

फूलने का समय (Flowering Time)—कैना के पौधों के फूलने का समय अक्टूबर से फरवरी तक होता है। इनमें रोपण के तीन महीने बाद ही फूल आ जाते हैं। अच्छे फूलों के लिए इनका विरलन भी होना चाहिए। कैना की कुछ जातियाँ केवल काँच के कमरों (Glass Houses) में गमलों में ही उगाई जा सकती हैं। इसके गमलों में द्रव खाद देनी भी बहुत ही आवश्यक है।

रोग व कीट शत्रु (Diseases and Insect Pests) कैना की पंखुड़ियाँ बहुत ही सुन्दर और आकर्षक होती हैं। ये चिड़ियों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। वे इनके फूलों को अपना आहार बना लेती हैं। इतना ही नहीं बन्दर कैना को हानि पहुँचाते है। इनके अलावा कैना को हानि पहुँचाने वाले रोगों से दूर रखने के लिए वर्ष भर में पौधों के ऊपर चार पाँच बार बोर्डो मिश्रण का छिड़काव कर देना चाहिए।

कैना का वर्गीकरण (Classification of Canna)—कैना की पत्तियों व फूलों के विभिन्न रंग होते हैं। इसके फूल सारे साल मिलते रहते हैं। इसका वर्गीकरण फूलों के आधार पर भी किया जा सकता है। इसमे तीन मुख्य है—

(1) **दो फुट वाले छोटे पौधे**—ये कैना के पौधे गमलो के लिए ठीक रहते हैं। इनमे छोटे-छोटे फूल आते हैं।

(2) **आर्चिड पुष्प वाले पौधे**—इस प्रकार के कैना में पुष्प शरद् ऋतु में लगते हैं और भिन्न-भिन्न समयो पर खिलते हैं।

(3) **ग्लैडिओलस वाले पौधे**—इस प्रकार के कैना मे सभी फूल एक साथ खिलते हैं और सामूहिक रूप से अच्छा सौन्दर्य दर्शाते हैं।

पत्तियों की बनावट के अनुसार कैना को निम्नलिखित दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है:—

(1) हरी पत्तियों वाले
(2) ब्रोंज रंग की पत्तियों वाले जिन पर सफ़ेद फूल आते हैं।

कैना की किस्में (Varieties of Canna)—इसकी निम्नलिखित किस्में हैं—

(1) एलाइव (2) एम्परर विलियम (3) एप्रीकोट (4) एप्रीकोट पिंक (5) इम्प्रेस ऑफ इण्डिया (6) ब्रिच नाईट (7) कार्क क्रिम्जन (8) कारमीन किंग (9) क्वीन मेरी (10) क्रिमसन (11) कॉपर जैंट (12) वाटर कप (13) प्रिन्सेज (14) प्रेसीडेंट (15) जॉन एन्डरसन (16) फ्लेम।

4. गुलदाउदी (CHRYSANTHEMUM)

गुलदाउदी पौधा कठोर प्रकृति और आकार मे छोटा होता है। यह एक वर्षीय और बहुवर्षीय होता है। इसकी विदेशी किस्में पौष्टिक पदार्थों का उपयोग करने के बाद ही अच्छे परिणाम देती हैं। यह अधिकांशतः उन्ही ऋतुओं में फलता है जिनमे दिन अधिक लम्बे अर्थात् 13 घंटे के होते हैं। इसका उत्पत्ति स्थान जापान है। यह जापान के राष्ट्रीय पुष्प के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी अधिकांश जातियों में बहुत ही सुन्दर व मनमोहक पुष्प लगते हैं।

मिट्टी (Soil)—इसको वैसे तो किसी भी तरह की मिट्टी में लगाया जा सकता है; किन्तु दोमट (Loam) अथवा बलुई दोमट (Sandy Loam) मिट्टी इसके लिए उत्तम मानी जाती है। इसके लिए खुला स्थान होना चाहिए। यह छाया में अच्छी तरह नही पनप पाता है। मिट्टी में जलोत्सारण का भी समुचित प्रबन्ध रहना चाहिए। यदि मिट्टी हल्की दोमट हो तो इसमें कार्बनिक पदार्थ मिला देने चाहिए। इसमें पौधों का सामान्य विकास हो जाता है। गुलादाउदी पौधों के लिए 6 से 7PH तक ठीक रहता है। यदि मिट्टी इससे ज्यादा अम्लीय होगी तो पौधों की वृद्धि ठीक प्रकार से न हो सकेगी और उनमें पाडूरण (CHLOROSIS) होने लगेगा। इसके बड़े पौधों को क्यारियाँ बनाकर लगाते हैं और छोटे पौधों को गमलो में लगाया जा सकता है।

प्रचारण (Propagation)—गुलदाउदी पौधों का प्रचारण सामान्य रूप से अधोभूस्तारी (Suckers) से ही किया जाता है। इसकी अधोभूस्तारी में काफी जड़ें आ जाती हैं; क्योंकि साधारण रूप से गुलदाउदी के पौधे अपनी जड़ों के पास कई अधोभूस्तारी पैदा करते हैं। इन्हें मूलकृन्त शाखा (Root Cuttings) भी कहते हैं। इन्हीं को पृथक् करके रोप दिया जाता है, जिससे नया पौधा मिल जाता है। वास्तव में ये भूस्तारी एक बार पुष्पित हो जाने वाले पौधो में से ही निकाले जाते हैं। इसके अलावा इनका प्रचारण भूमग्नाकरण (Layering) व कलमों (Cuttings) के द्वारा किया जा सकता है।

खाद डालना (Manuring)—गुलदाउदी पौधों के उर्वरण के लिए सड़ी गली पत्तियों की मोटी खाद अथवा कूड़े कचरे की खाद बहुत अच्छी रहती है। इस प्रकार की खाद को मिट्टी 1:4 के अनुपात से और चिकनी मिट्टी 1:3 के अनुपात से देना चाहिए। इसमें बारीक ६ ट नहीं देनी चाहिए। यह बहुत शीघ्र ही नीचे बैठ जाती है और उसका वांछित प्रभाव नहीं पड़ पाता है। यदि भूमि में लोहे की कमी दिखाई दे तो उसे तत्काल दूर करने का प्रबन्ध करना चाहिए; अन्यथा पौधो की पत्तियां पीली पड़ने लगेंगी। गुलदाउदी के पौधों के स्थापित होने की दशा में भूमि का उर्वरण मान कम रखना चाहिए।

निम्नलिखित रासायनिक पदार्थों को पौधे उगाने के लिए प्रयोग में लेने से भी बहुत अच्छे परिणाम मिलते हैं।

(क) नाइट्रेट व नाइट्रोजन 25 से 50 भाग प्रति लाख भाग या प्रति दस लाख भाग
(ख) फॉस्फोरस 5 से 90 „ „ „ „ „ „
(ग) पोटाश 20 से 40 „ „ „ „ „ „
(घ) कैल्शियम 150 से 200 „ „ „ „ „ „

सिंचाई (Irrigation)—गर्मी के दिनों में गुलदाउदी के पौधों की क्यारियों की सिंचाई सप्ताह में दो बार और जोड़ों में आवश्यकतानुसार ही करनी चाहिए।

गुलदाउदी का वर्गीकरण (Classification of Chrysanthemum)—इसकी आकृति व पंखुड़ियों की बनावट को ध्यान में रखते हुए इसका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:—

(क) स्टेण्डर्डस—इसमे बड़े आकार के पुष्प विकसित होते हैं, जिनमे कुछ की पंखुड़ियाँ भीतर की ओर मुड़ी होती है और कुछ की पंखुडियाँ ऊपर शीर्ष की ओर मुड़ी होती हैं। ऐसा गुलदाउदी पुष्प बहुधा गोलाकार होता है। रिफ्लेक्स्ड प्रकार के पुष्पों की पखुड़ियां एक दूसरे के ऊपर आ जाती हैं और नीचे की ओर झुकने की स्थिति मे रहती हैं। स्पाइडर प्रकार की पंखुडियाँ नाली रूपाकार होती हैं और नीचे की ओर झुकी हुई बहुत ही सुन्दर लगती हैं। फूजी प्रकार के पुष्पों की पंखुडियां छोटी होती हैं जो मजबूती के साथ अपने आधार पर लगी रहती हैं।

(ख) डिसबड्स—इसके अन्तर्गत तीन अथवा चार स्तम्भ उगाये जाते हैं जिनमे एक स्तम्भ पर एक ही फूल विकसित होता है।

(ग) स्प्रे प्रकार—इस प्रकार के गुलदाउदी पुष्पों में बारीक-बारीक पंखुडियों की कई पंक्तियां होती हैं और ये डेजी के समान दिखाई देती हैं। पौंपोन में गोलाकार व सुगठित छोटी चपटी पंखुड़ियों के पुष्प होते हैं। ये देखने मे औपचारिक से लगते हैं। डेकोरेटिव प्रकार के पुष्प औपचारिक नहीं होते हैं;

किन्तु इनकी बाहरी पंखुड़ियां केन्द्र की पंखुड़ियों से बड़ी होती हैं, जिसके कारण पुष्प कुछ चपटा-सा दिखाई देता है। यह विभिन्न आकार का होता है। इनमें से कुछ किनारीदार होते हैं। ऐनीमोन एकल पुष्पों के समान होते हैं; किन्तु इनकी केन्द्र की पंखुड़ियां लम्बी व विभिन्न रंगों की होती हैं। इससे एक तरह का कुशन-सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। स्पूनस भी डेकोरेटिव के ही समान होते हैं सिर्फ़ इनकी पंखुड़ियां नालीदार होकर आगे के सिरे पर चपटी हो जाती हैं।

भारत में इस वर्गीकरण के अन्तर्गत गुलदाउदी की निम्नलिखित किस्में उगाई जाती हैं—

1. किंग ऑफ़ स्प्रिंग	2. गोल्डन चैम्पियन	3. गोल्डन यॉट
4. दिसम्बर गोल्ड	5. नेपोलियन	6. परफ्यक्शन
7. ब्रोंज विण्ड	8. मेलो स्टार	9. भोजी
10. रोज क्वीन	11. सनसेट	12. स्टार ऑफ़ इंडिया

गुलदाउदी के उत्तम प्रकार के पुष्पों के उत्पादन के लिए पौधे की कुछ कलिकाओं को छोड़कर शेष सभी को निकाल दिया जाता है, जो पूर्णतया विकसित होकर बड़े पुष्प का रूप धारण करती हैं। कलिकाओं की काट-छांट के बाद द्रव उर्वरक अवश्य देना चाहिए। इससे पुष्पों का आकार बड़ा हो जाता है। बड़े पुष्पों के उत्पादन में यह विचाराधीन होता है कि पौधे की सम्पूर्ण शक्ति पुष्प उत्पादन की ही ओर लगाई जाए। जब एक तने का पौधा उगेगा तो उसके शीर्ष पर एक कलिका ही निकलेगी जो कि क्राउन बड कहलाएगी। तत्पश्चात् उसमें अगल-बगल से भी अन्य कलिकाएं निकलेंगी। इन्हें तत्काल ही पृथक् कर देना चाहिए। ऐसा करने से क्राउनबड के पुष्पों के आकार एवं रंगों में सुधार हो जाता है।

एकवर्षीय गुलदाउदी की ये जातियां उल्लेखनीय हैं—

(क) क्राइजेंन्थियम कैरीनेटम—इसकी सफ़ेद पंखुड़ियां होती हैं।

(ख) क्राइजेंन्थियम फ्रूटेंसेंस—इसकी पंखुड़ियां पीली होती हैं।

(ग) क्राइजेंन्थियम सेजेटम—इसके फूल बड़े व पीले रंग के होते हैं।

(घ) क्राइजेंन्थियम इंडीकम—इनकी पंखुड़ियां पीली होती हैं। यह क्यारियों में उगाने के लिए सर्वोत्तम है।

सारांश

1. गुलाब एक कठोर और अनाकर्षक काँटेदार पौधा होता है; किन्तु फूलों के आते ही इसकी सुगन्ध एवं सुन्दर रूप सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।
2. गुलाब को काफी प्रकाश की आवश्यकता होती है। भूमि समतल होनी

चाहिए। तेज हवा से सुरक्षा होनी चाहिए। उर्वरा और भुरभुरी दोमट मिट्टी अच्छी रहती है। एक ही मिट्टी मे इसकी खेती 4 या 5 वर्ष से अधिक नहीं करनी चाहिए।

3. गुलाब की क्यारियाँ 4 सें० मी० से 5 सें० मी० तक गहराई में खोदनी चाहिए। इसके रोपण का समय उत्तरी भारत के क्षेत्रों में 15 अक्टूबर से 15 दिसम्बर तक और पर्वतीय क्षेत्रों में मार्च, अप्रैल और अक्टूबर है। रोपण के समय मूलों की पूर्णतया सुरक्षा। यह विश्व के सभी समशीतोष्ण व उष्ण प्रदेशों में उगाया जाता है।
4. पौधे लगाने से पूर्व क्यारियों की मिट्टी के तल में 15 सें० मी० सड़े गोबर की खाद का स्तर देना चाहिए।
5. भारत मे गुलाब की खेती में सुपर फॉस्फेट 12 पौण्ड, पोटाश का सल्फेट 12 पौण्ड, अमोनिया का सल्फेट 5 पौण्ड, लोहे का सल्फेट ½ पौण्ड, अस्थि चूर्ण 6 पौण्ड आदि उर्वरकों का मिश्रण 6 पौण्ड प्रति गुलाब के पौधे की दर से दो या तीन बार दो या तीन मासो के अन्तर से देना चाहिए।
6. गुलाब के पौधों के लिए द्रव खाद भी विशेष उपयोगी है।
7. गुलाब की खेती मे क्यारियों का मिट्टी परिवर्तन होते रहना चाहिए। इसके लिए क्यारियों की 3 फुट की सतह तक की मिट्टी को परिवर्तित करके बालुई दोमट मिट्टी डाल देनी चाहिए। परिवर्तन का कार्य अक्टूबर मास के बाद या जाड़ों के शुरू मे करना चाहिए।
8. गुलाब के प्रचारण के लिए बसन्त ऋतु व सितम्बर मास उपर्युक्त रहता है।
9. गुलाब का कर्तन अक्टूबर से नवम्बर मास में किया जाना चाहिए।
10. गुलाब के पौधों के ठीक प्रकार से लग जाने के बाद ही शाखाओं की काट-छाँट का कार्य होना चाहिए।
11. गुलाब का वर्गीकरण उनकी वृद्धि एवं उपयोगिता के अनुसार ही किया जाता है।
12. आधुनिक गुलाब की क्यारियों का रूपांकन आयताकार अथवा वर्गाकार और वृत्ताकार किया जा सकता है।
13. कैना की ऊँचाई 90 सें. मी. से 120 सें. मी. तक होती है। इसका उत्पादन पत्तियों व फूलों के लिए किया जाता है।
14. इसके लिए भुरभुरी दोमट मिट्टी उत्तम रहती है। इसका उत्पादन भूलकर भी बलुई मिट्टी मे नहीं करना चाहिए।
15. कैना पौधों के लिए क्यारियाँ मई-जून मे 60 सें० मी० गहराई तक

खोदी जानी चाहिए। इनमें सड़े गोबर की खाद प्रचुर मात्रा में देनी चाहिए। सूर्य का प्रकाश अधिक मात्रा में मिलना चाहिए।

16. पहली बरसात के बाद ही आँख वाले राइजोम के टुकड़े क्यारियों में लगा दिए जाते हैं उनमें रोपण की दूरी 60 सें. मी. से 75 सें. मी. तक रखी जाती है।
17. कैना के लिए उष्ण अथवा उपोष्ण जलवायु ठीक रहती है।
18. कैना पौधों का प्रचारण वर्धी पद्धतियों से ही किया जाता है।
19. कैना पौधों की सिंचाई सप्ताह में एक बार अवश्य होनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में सिंचाई का कार्य हर दूसरे दिन चलना चाहिए।
20. कैना के फूलने का समय अक्टूबर से फरवरी तक होता है।
21. कैना की पत्तियों व फूलों की चिड़ियों से सुरक्षा करना चाहिए।
22. रोगों से बचने के लिए कैना के पौधों पर बोर्डो मिश्रण का छिड़काव वर्ष में चार पाँच बार अवश्य करना चाहिए।
23. गुलदाउदी एकवर्षीय और बहुवर्षीय होता है। यह कठोर प्रकृति का और आकार में छोटा होता है। इसका उत्पत्ति स्थान जापान है।
24. इसके लिए दोमट या बलुई मिट्टी ठीक रहती है। जलोत्सरण का ठीक प्रबन्ध रहना चाहिए।
25. गुलदाउदी का प्रचारण अधोभूस्तरी से ही किया जाता है।
26. गुलदाउदी के उर्वरण के लिए सड़ी गली पत्तियों की मोटी खाद अथवा कूड़े कचरे की खाद अच्छी रहती है।
27. गर्मी के दिनों मे गुलदाउदी के पौधों की सिंचाई सप्ताह में दो बार और जाड़ों में आवश्यकतानुसार ही करनी चाहिए।
28. गुलदाउदी का वर्गीकरण—1. स्टेण्डर्डस 2. डिसबडस 3. स्प्रे प्रकार।

आदर्श प्रश्न

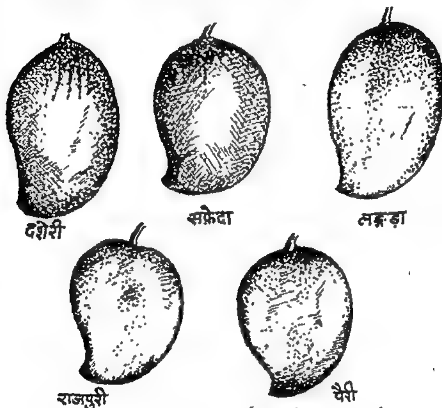
प्रश्न 1. गुलाब के उत्पादन के विषय में सारगर्भित लेख लिखिए।

प्रश्न 2. कैना का उत्पादन किस लिए किया जाता है?

प्रश्न 3. गुलदाउदी कहाँ का राष्ट्रीय पुष्प माना जाता है और इसके उत्पादन के लिए हमें किन किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

प्रश्न 4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए :—
(क) गुलाब का उर्वरण (ख) गुलाब के रोग व कीट शत्रु (ग) कैना का प्रचारण (घ) गुलदाउदी का प्रचारण (ङ) गुलदाउदी का वर्गीकरण।

जिसमें जलोत्सारण की पूर्ण सुविधा हो, उगाया जा सकता है। जल व वायुमंडल की आर्द्रता से इसमें वर्धी वृद्धि (Vegetative growth) व फल लगने की क्रियाओं को भी मदद मिलती है। बालुई मिट्टी में लगाये गये पौधों के फल रसीले नहीं होते हैं। इसके अच्छे विकास के लिए उष्ण ऋतु का होना बहुत आवश्यक है। यह अति तुषार व शीत सहन नहीं कर सकता है। साधारणतः आम के



चित्र—आम की कुछ विख्यात किस्में

बौर दिसम्बर से मार्च तक आते हैं। इस समय पाला पड़ना या वर्षा का होना इसके लिए बहुत ही हानिकारक होता है। वर्षा से स्त्री केसर को हानि पहुँचती है और पराग घुल जाता है तथा पाउडरी मिल्ड्यू रोग की वृद्धि होती है। यदि वर्षा का प्रकोप काफी दिनों तक रह जाये तो पूरी फल्य सस्य नष्ट हो जाती है; क्योंकि ऐसी दशा में न तो बौर ही विकसित हो पाते हैं और न फल ही। कवक (Fungi) उत्पन्न होकर इन्हें नष्ट कर डालते हैं। अतः पुष्पन के समय वर्षा नहीं होनी चाहिए। वैसे आम की पैदावार वहाँ अच्छी होती है जहाँ 30 इंच से 150 इंच

तक हर साल वर्षापात होता है। यह सागर तल से लेकर 4000 फुट तक की ऊँचाई पर लगाया जा सकता है, पर इसका उत्पादन 2000 फुट तक ही ठीक रहता है।

प्रचारण (Propagation) आम का पौधा कलम लगाकर अथवा बीज (गुठली) बोकर तैयार किया जाता है। इसके बीज को जून-जुलाई मे नर्सरी में एक साल के लिए बो दिया जाता है। फिर इन पौधों को बड़े गमलों मे लगा दिया जाता है। तत्पश्चात् फरवरी-मार्च व अगस्त-सितम्बर मासों में इन पर कलम चढ़ायी जाती है। इन कलमी पौधों को दो वर्ष के बाद बागों मे 35 से 40 फुट की दूरी पर 3′ × 3′ फुट के विवर (Holes) खोदकर लगाया जाता है। इस में लगाने का समय मई-जून और नवम्बर-दिसम्बर ठीक रहता है। इन विवरों को पौधे लगाने की निश्चित तिथि से दो मास पूर्व खुला रखना चाहिए। इनके अन्दर के वाताहन को कम करने के लिए कभी-कभी इनमे कूड़ा-कर्कट भी जला देना चाहिए।

खाद (Manure) विवरों में पौधे लगाने से पूर्व हरेक पौधे के अनुसार उनमे से निकली मिट्टी मे 10 किलो अच्छी सड़ी पशुओं के गोबर की खाद, 250 ग्राम अस्थिचूर्ण और 1½ किलो राख मिलाकर भरना चाहिए। कूड़ा-कर्कट जलाये गए विवरो में राख डालने की आवश्यकता नही रहती है। धीरे-धीरे खाद की मात्रा बढ़ाकर चालीस किलो तक कर देनी चाहिए।

सिंचाई (Irrigation) आम के पौधे चाहे उपरोपण से बनाये गए हों अथवा बीज जात हो, इन्हे शुष्क ऋतु में लगातार तब तक जल से सींचना चाहिए जब तक कि फल देने की दशा मे नहीं आ जाते हैं। तत्पश्चात् इन्हें वर्षापात पर छोड़ दिया जाता है। साधारणतः आम के उद्यानों मे वार्षिक विचार से 50-70 इंच प्रति एकड़ सिंचाई करनी चाहिए। वास्तव में आम के पौधों को पुष्पों की कलिकाएं खुलने व फल पूरे लगने तक जल लगातार मिलना चाहिए।

कर्षण कार्य (Tillage Operations) आम के शिशु पौधों के लिए कर्षण की सिर्फ इतनी जरूरत समझी जाती है कि उनके जल की पात्रियों को जब कभी सिंचाई के बाद हल्का-सा खोद दिया जाता है। पौधों के बड़े हो जाने पर इनके बीच के स्थानों पर हल से जुताई वर्ष-भर मे एक या दो बार की जा सकती है। फिर क्षेत्र को वर्षा जल के शोषण के लिए छोड़ दिया जाता है। वृक्षो से गिरी हुई पत्तियों को उन्हीं के नीचे हल से दबा देना चाहिए। आमो के उद्यानों मे स्वच्छ कृषि कदापि नही करनी चाहिए। इससे उद्यान की मिट्टी का धरण पदार्थ (Humus) शीघ्र ही ध्वंस होने पर भय बन जाता है।

काट-छांट (Pruning)—वैसे तो आम के वृक्षों में साधारण रूप से काट-छांट नही करनी पड़ती है। गुठलियों (बीजों) द्वारा उत्पन्न वृक्ष एक तरह के

गुम्बज का रूप धारण कर लेते हैं; किन्तु उपरोपण द्वारा तैयार वृक्षों में मिट्टी के समीप तने से कुछ शाखाएँ निकलने लगती हैं। ये शाखाएँ भी उपरोपिका के लिए उपयोग में ली जा सकती हैं। ऐसे वृक्षो को साफ़ सुथरा रखने के लिए उनके आधारो के निकट की मोटी-मोटी शाखाएँ काटकर हटा देनी चाहिए। वृक्षों के स्तम्भो को अगर उनके ऊपर कोई परपोषी पौधे आ गए हों तो उन्हें काफी काटना पड़ता है। अमरबेल का प्रसन भी सामान्य-सी बात है। कभी-कभी गुठलियो से उत्पन्न वृक्षों की स्थूल शाखाओं को भी काफी पीछे से काटना पड़ जाता है। इस क्रिया से उनमें छोटी-छोटी शाखाएँ निकलने लगती हैं जोकि कलिका बंधन के लिए नई वर्षा वृद्धि के समान उपयोग मे आ सकती हैं। इनमें से नई कलि (Bud) ली जा सकती है।

एकान्तरिक ह्रास्यन (Alternate Bearing)—इससे आम के वृक्षों के उस गुण का पता चल जाता है जिसके कारण उनमें लगातार वार्षिक फलोत्पादन नही हो पाता है। जितनी प्रकार के आमो के वृक्ष होते हैं उतनी ही प्रकार की भिन्नता उनके फल लगने के सामयिक अवकाश मे होती है। उदाहरणतः महाराष्ट्र में उत्पादित तोतापुरी आम वृक्ष मे दो वर्ष के अन्तर पर फल लगते हैं। कुछ विद्वानों का ऐसा विश्वास है कि आम के वृक्षों का यह गुण भी कई तरह के कृषि कार्य करने से बदला जा सकता है। इसके लिए अधिक फल लगने वाले वर्ष में वृक्ष वलयन (Ringing) अथवा शाखाओं का वलयन करने से भी अथवा शीघ्र वलयन के बाद ही उर्वरण करने से दूसरे वर्ष भी फल मिल सकते हैं। फल लेने के बाद ही अमोनियम-सल्फेट के साथ क्षेतीय उर्वरक देने से भी फलों की संख्या मे वृद्धि हो जाती है। कभी-कभी आमों के वृक्षों में फल न लगने का कारण रोग या तुषार पात या कीट पतंगों से हानि भी हो सकती है।

रोग व कीट शत्रु (Diseases and Insect Pests)—इनसे भी आम के वृक्ष काफी क्षतिग्रस्त होते हैं। आम का फल्गी (Mango Hopper) इसका सबसे बड़ा शत्रु है। यह त्रिकोनी आकृति का होता है। इसकी जाति खटमल है। यह बौर प्रगट होते ही पुष्प कलिका के ऊपर अण्डे देना शुरू कर देता है। इनमें से एक सप्ताह में बच्चे निकल आते हैं। ये बौर व छोटे फलों का रस चूस कर दो सप्ताह मे बड़े कीटों मे बदल जाते हैं। फलतः फल व फूल अपनी आयु से पूर्व ही गिर जाते हैं। इससे 25 से 30 प्रतिशत तक की हानि होती है। इन्हें नष्ट करने के लिए 10%डी॰ डी॰ टी॰ और गंधक को 2 : 1 के अनुपात से मिश्रण छिड़कना चाहिए।

आम का सफ़ेद फूंगा (Mango Mealy Bug)—यह कोमल फूंगा नए प्ररोहों व बौर वाली शाखाओं पर फरवरी से जून तक विशेषतः पाया जाता है। इसके रस चूसते रहने से फल गिर जाते हैं या छोटे ही रह जाते हैं। इससे सुरक्षा

के लिए वृक्षों के चारों ओर 5 फुट अर्द्ध व्याम की मिट्टी जुलाई से अक्टूबर तक हटा देनी चाहिए। इससे उस स्थान पर रहे हुए अण्डे नष्ट हो जाते हैं। इसके अलावा वृक्षों पर ग्रीज कोलतार लगा देना चाहिए अथवा 0.05% फॉलीडोल का छिड़काव कर देना चाहिए।

आम प्ररोह छिद्रक (Mango Shoot borer)—यह अधिकांशत पुराने आमों के वृक्षों में पाया जाता है और नये प्ररोहों में ऊपर से छिद्र करता है और भीतर ही भीतर नाली बना लेता है। ऐसे छिद्रों को तारपीन का तेल डाल कर और ऊपर से चिकनी मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए। अथवा प्ररोह छिद्रक वाली शाखाओं को तोड देना चाहिए। इससे आम प्ररोह छिद्रक मर जाते हैं।

आम की मक्खी (Mango Fly)—यह आम के गूदे में अण्डे देती है। इससे आम सड़ने लग जाता है। ऐसे सड़े हुए फलों को तत्काल ही स्वस्थ फलों से अलग कर देना चाहिए। मक्खी नाशक पदार्थ का छिड़काव भी करना चाहिए।

दीमक (Temites)—यह आमों के वृक्षो की जडों को काट डालती है। इससे सुरक्षा के लिए खाद के साथ नीम की खली का मिश्रण देना चाहिए।

. **पाउडरी मिल्ड्यू (Powdery Mildew)**—यह कवक व्याधि है। इससे आम के वृक्षो के ऊपर सफेद राख-सी आ जाती है। इसका सर्वप्रथम आक्रमण आम के बौरो पर होता है। गंधक की धूलि को छिड़कने से इस व्याधि को दूर किया जा सकता है।

विशुष्क अग्र (Wither Tip)—यह कौलिटोट्रिकम जाति का कवक है। यह आम की शाखाओं के सिरो पर हमला करता है। इससे शाखाएं ऊपर से सूखने लग जाती है। इससे सुरक्षा के लिए वर्ष में तीन बार बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करना चाहिए।

इनके अलावा आमों के वृक्षों की ऐन्थ्रेकनोज, बचीटोप और अष्टि छिद्रक आदि से भी रक्षा करनी चाहिए। ऐन्थ्रेकनोज को रोकने के लिए बोर्डो मिक्चर, (4 : 4 : 50) का छिड़काव कर देना चाहिए।

फलने का समय—बीज जात, आमों के पौधे 7-8 वर्ष में और कलमी पौधे 5-6 वर्ष में फलने लगते हैं। सामान्यतः आमों के पकने का समय मई से जुलाई के बीच का होता है।

आमों से लाभ—निर्यात करने से आय मे वृद्धि होती है। यह खाने में जितना स्वादिष्ट होता है, उतना ही रक्त शोधक भी। इसमे विटामिन 'ए' और 'सी' का आधिक्य रहता है। कच्चे आमों से अचार, चटनी, अमचूर और मुरब्बा तैयार किया जाता है। आग मे भून कर तैयार किया हुआ आम का शर्बत लू से रक्षा करता है। आम के बौर से ऐसी दवा तैयार की जाती है जो गर्मी, पित्त व कफ को दूर कर देती है। इसके पत्तो की धूनी से हिचकियां व गले की अन्य बीमारियाँ

दूर की जा सकती हैं।

2. केला (BANNANA)


केला

केला भारत में आदि काल से ही लोकप्रिय है। इसका धार्मिक महत्व के साथ-साथ हमारी खाद्य वस्तुओं व फलों के उत्पादन दृष्टिकोण से भी विशेष महत्व है। इसको हमारे देश में 306015 एकड़ भूमि में उगाया जा रहा है। इसकी निम्नलिखित जातियाँ प्रमुख हैं:—

1. मूसा पैराडिसियाका
2. मूसा सैपियन्टम
3. मूसा एक्यूमिनाय
4. मूसा बल्बीसियाना

1. मूसापैराडिसियाका—इस जाति के केलों में माडी की प्रधानता रहती है। अतः इनका उपयोग तरकारी के लिए अधिक किया जाता है।

2. मूसा सैपियन्टम—इस जाति के केलों में बामन रूप (Dwarf Type) नहीं होते हैं। इनका उत्पादन मरुभूमि मे ही किया जा सकता है।

3 मूसा एक्यूमिनाय—इस जाति के केले कैनेरी अथवा चीनी केले कहलाते है। ये भी बामन रूप होते हैं।

4. मूसा बल्बीसियाना—इस जाति के केले भी बामन रूप (Dwarf Type) होते हैं।

भूमि व जलवायु (Soil & Climate)—केले के उत्पादन के लिए बम्बई (बेसिन) की बलुई भूमि और सागरीय तट की उत्तरी कन्नड़ की भूमि विशेषतः उपयोगी है, किन्तु जलोत्सारण की समुचित व्यवस्था रहनी चाहिए। जलवायु के दृष्टिकोण से यह एक उष्ण कटिबन्धीय फल है। यह उष्ण व नम जलवायु में शीत शुष्क जलवायु की अपेक्षा अच्छा होता है। उन प्रदेशों में जहाँ की जाड़ों में तुषार पड़ने का डर होता है, इस फल्य सस्य का उत्पादन सुरक्षित नही होता है। तापक्रम की बहुत कमी होने से अधिकांश पौधे मर जाते हैं और फलों के अच्छे विकास में भी विघ्न पड़ जाता है तथा उनके गुणों का ह्रास होने लग जाता है। इतना ही नही आँधी भी इसके पौधों को काफी क्षति पहुँचाती है।

फल्य सस्य की तैयारी—इसके लिए मिट्टी का कम से कम 60 सें० मी० गहरा और उप मिट्टी का रंध्री होना बहुत ही आवश्यक माना गया है। केले के अधो-

भूस्तारी अंगों का रोपण करने से पूर्व बेसीन में पहले भूमि को जल से भरा जाता है और सप्ताह उपरान्त हल का वहन-प्रतिवहन (Cross Plough) चलाया जाता है। तत्पश्चात् मिट्टी का समतलन किया जाता है। मई मास में मिट्टी के ऊपर के शुष्क तिनकों को जलाकर राख कर दिया जाता है। फिर मानसून की पहली झड़ी के बाद पुनः भूमि को जोता जाता है और बक्खर चलाया जाता है तथा समतलन के बाद रोपण करना चाहिए। इसके लिए विवर तैयार करने पड़ते हैं, जिनका आकार मिट्टी की प्रकृति के अनुसार होता है। अधिकांशतः यह 60 सें० मी० गहरे व गोल होते हैं। इनकी दूरी केलों की जाति के अनुसार इस प्रकार होनी चाहिए—बसराई केला, महासकेल और लोखंडी, 150-180 सें० मी० की, राजेली 210-240 सें० मी० की, लाल बेल्ची, मूढ़ेली, सफेद बेल्ची 240-270 सें० मी० और लाल केला 270-300 सें० मी० की दूरी पर रोपण करना चाहिए।

खाद डालना—इस फल्य सस्य के पूर्ण विकास के लिए गोबर की खाद बहुत ही आवश्यक है। अतः इसके पौधों के रोपण के तीन सप्ताह पश्चात् उनके मूलों से मिट्टी हटाकर गोबर की खाद डालनी चाहिए। वर्षा के आरम्भ के हरेक पौधे को ½ किलो सुपर फॉस्फेट भी देनी चाहिए।

सिंचाई व काट छांट—केले के पौधों की सिंचाई थोड़े-थोड़े समय में करनी चाहिए। एक बार फल तोड़ लेने के बाद पौधों को काट देना चाहिए; क्योंकि केले का पौधा एक बार ही फल देता है।

फल लगने का समय—यह केले की जाति पर निर्भर रहता है। बेल्ची व सोन केले के पौधों में 12 मास में, बसराई जाति के केलों के पौधों में 14 मास में और वाम्दा जाति के पौधों में 10 मास में फल आ जाते हैं।

रोग व कीट शत्रु—केले के पौधों की सबसे हानिकारक व्याधि पनामा है। इसके अलावा स्केब (Scab) नामक रोग भी इसे काफी क्षति पहुँचाता है। पनामा रोग से केले के पौधे मुरझाने लगते हैं, फलों का विकास रुक जाता है। पत्तियाँ व सभी अधोभूस्तारी सूख जाते हैं। स्केब नामक रोग फलों को प्रभावित करता है। इससे केले के फल के ऊपर एक तरह का लाल भूरा रंग प्रकट होने लगता है। फिर फलों में दरारें पड़ने लग जाती हैं। तत्पश्चात् फल की खाल भूरी पड़ने लग जाती है और अंत में काली हो जाती है। इससे बचाने के लिए 2 किलो कॉपर सल्फेट, 2½ किलो कपड़े धोने का सोडा और 50 गैलन जल में मिश्रण तैयार करके छिड़काव करना चाहिए। पनामा रोग के रोक थाम के लिए रोधी प्रकार के पौधों का ही रोपण करना चाहिए। ऐसी रोधी प्रकारें त्रिनिदाद के केला अन्वेषण केन्द्र पर पैदा की जाती हैं। आई० सी० आई० नं० 1 इस रोग के रोधी हैं। फिलिपीन की सेव, टेनिटी का ग्रोरिया, बंगुलन और लकॅलस प्रकार के पौधे

इस रोग के रोधी हैं। कीट पतंगों में केले का शत्रु गुण्डा (Weavil) है। यह केले की धरती के भीतर स्तम्भ को हानि पहुँचाता है। इसके निरोध के लिए इससे प्रभावित अंगों को निकाल कर फेंक देना चाहिए।

केले का उपयोग—यह पौष्टिक एवं पूर्ण आहार है। इसमें जीवन तत्त्व ए, बी, सी, डी, ई और पोटाशियम, कैल्शियम और फॉस्फोरस आदि पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। केले के कच्चे फलों को सुखाकर व पके हुए फलों का उद्योग के लिए उपयोग किया जाता है। महाराष्ट्र में ही अनुमानतः 50000 रुपये का सुखाया हुआ रजेली केला प्रतिवर्ष वाणिज्य के काम आता है। दूसरे इसके विपणन से खाद्यान्न समस्या का भी कुछ समाधान हो सकता है।

3. पपीता (PAPAYA)

पपीता का पौधा सदाबहार होता है। इसका मूल निवास स्थान उष्ण कटिबंधीय अमेरिका है। इसकी खेती करना सरल है। इसलिए यह पौधा सारी पृथ्वी पर फैल गया। भारत में भी इसका उत्पादन अनुमानतः 21600 एकड़ भूमि में किया जाता है। यहाँ पर उत्पादित पपीते की किस्में हैं नीलम, जामा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, राची, गुजरात, मैडेगास्कर, वाशिंगटन, हनीड्यू, सिंगापुर और बंगलोर आदि। यह वर्ष भर में फल दे देता है। इस कारण घर घर में यह उगाया जाने लगा है। यह सात-आठ वर्ष तक निरन्तर फल देता रहता है। इसमें नर-मादा वृक्ष पृथक्-पृथक् होते हैं। इसके नर वृक्षों में सिर्फ फूल ही आते हैं और मादा वृक्ष फल देते हैं। इस फल्य सस्य की अच्छी फसल लेने के लिए 100 मादा वृक्षों के बीच कम से कम 10 नर वृक्ष होना बहुत आवश्यक है।

भूमि और जलवायु तथा सिंचाई—पपीते का वृक्ष सदा हरित प्रकृति का वृक्ष है। इसके सफल उत्पादन के लिए एक उर्वर व अच्छी जलोत्सारीय मिट्टी की आवश्यकता होती है। वैसे यह निम्न श्रेणी की लैटेराइट मिट्टी में भी अच्छी तरह उत्पादित किया जा सकता है। अगर अच्छे उर्वरण व समुचित सिंचाई व्यवस्था हो तो पपीता गहरी चिकनी मिट्टी में भी पनप सकता है। जो पपीते के पौधे न्यून कैल्शियम युक्त मिट्टियों में लगाये जाते हैं; उनमें केवल छोटे ही फल आते हैं। इस प्रकार पपीते की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए दोमट (Loom) मिट्टी सर्वोत्तम है। इसको भूमि में जलोत्सारण का होना नितान्त आवश्यक है; अन्यथा जल के ठहरे रहने से इसकी जड़ें गल जाती हैं और इस सस्य को भारी क्षति पहुँचती है। जलानुविद्ध (Water Logged) होने अथवा अधिक सिंचाई से इसके वृक्षों की सर्वप्रथम पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं और बाद में अपनी परिपक्वावस्था से पूर्व ही गिर जाती हैं। अतः इसकी सिंचाई उतनी करनी चाहिए जितना जल भूमि भली-भाँति सोख सके। शीत काल में इसके पौधों को 10-12 दिन के बाद

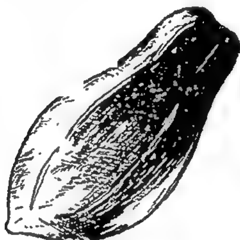
सिंचाई करनी चाहिए। ग्रीष्मकाल में सिंचाई का कार्यक्रम एक सप्ताह में एक बार रखना चाहिए। जलवायु के दृष्टिकोण से पपीता उष्णकटिबंधीय जलवायु के सभी क्षेत्रों में काफी मात्रा में उगता है। इसके लिए शुष्क और उष्ण जलवायु उत्तम रहती है। इसके पौधों को अति न्यून तापमान, तुषार और तीव्र वायु से बचाना चाहिए।

प्रचारण—इस फल्य सस्य के प्रचारण की साधारण विधि बीज से उगाने की है। बीजों के लिए पपीते के मादा वृक्षों से अच्छे व बड़े फल एकत्रित करने चाहिए। इसके भली-भाँति पक जाने पर काट कर तश्तरियों मे बीज निकालने चाहिए। फिर इन्हें अच्छी तरह से धोकर सुखा दिया जाता है और इसके बाद इन्हें डिब्बों में बन्द करके रख दिया जाता है। इन बीजों की वर्धिष्णुता (Vibaility) कितने ही सालों तक बनी रहती है। इन बीजों की आर्दता व कीट पतंगों से सुरक्षा करनी चाहिए।

रोपण—पपीते की रोपण तैयार करने का समय मांनसून से पूर्व ही है। इस कार्य को अक्टूबर-नवम्बर में कर लेना चाहिए। इसके बाद बीज बोने से अच्छा अंकुरण नहीं होता है। 90 सें० मी०×90 सें० मी० की क्यारियाँ बनानी चाहिए इनकी सामान्य तल से ऊँचाई 15 सें० मी० की होनी चाहिए। इन क्यारियों में नदी की 7.5 सें० मी० मिट्टी के साथ आधा भाग पत्तियों की खाद व आधा भाग सेन्द्रिय उर्वरक (F. Y. W.) का फैलाना चाहिए। फिर इनमें पपीते के शुष्क बीजों को 2 सें० मी० की गहराई पर रोपना चाहिए। इनकी आपसी दूरी 2.5-3 सें० मी० रहनी चाहिए। तत्पश्चात् इन क्यारियों की फव्वारे की बारीक धार से सिंचाई करनी चाहिए। यदि तीव्र धूप व अधिक वर्षा होने की सम्भावना हो तो इन क्यारियों को चटाई आदि से ढक देना चाहिए। 21 दिन में इस प्रकार बोये गए बीज उग आते हैं और 60 दिन में इनकी ऊँचाई 60 सें० मी० हो जाती है।

पपीते की खेती के लिए खेत सावधानी से तैयार किया जाता है। इसमें गर्मियों में हल चलाया जाता है। तत्पश्चात् खेत को समतल बनाकर 45 सें० मी० ×45 सें० मी०×45 सें० मी० मापने के वीवर एक एकड़ में 700 से 800 तक बनाये जाते हैं। इनमे आपसी दूरी हर ओर से 240 सें० मी० से 245 सें० मी० रहनी चाहिए। फिर इन विवरों मे पतले तने वाले पौधे चुनकर लगा देने चाहिए। पपीते के प्रत्येक विवर को एकत्रित तल की मिट्टी के साथ सड़ी सेन्द्रिय उर्वरक 20से25 किलो मिलाकर भर देना चाहिए। इसके बाद 4-5 मास में 40 किलो से 60 किलो तक क्षेत्रीय उर्वरक प्रति क्यारी की दर से देनी चाहिए। जब पपीते के पौधों की अवस्था एक वर्ष की हो जाए तो फिर वही मात्रा उर्वरक की देनी चाहिए।

फल पकने का समय—पपीते की पौध लगाने के पाँच मास बाद ही पौधों में फूल व फल लगने लगते हैं। इन फलों को पकने में अगले 6 मास का समय लगता है। तत्पश्चात् तो फल लगातार मिलते ही रहते हैं। फूलों व फलों के लगने का क्रम आगामी 12 मास तक चलता रहता है। ढाई वर्ष के बाद पपीते के वृक्षों में फल अच्छे नहीं आते हैं। पपीते के फल को वृक्ष पर से तोड़ने का सबसे अच्छा समय वह होता है जबकि फल की नाक (Tip) कुछ पीली पड़ने लगती है। इससे यह पता चल जाता है कि फल अपने पूर्ण विकास की स्थिति में पहुँच चुका है। इसी समय इसे तोड़ा जा सकता है। अनुमानतः एक वृक्ष वर्ष में 35 से 40 फल देता है।



पपीता

पपीते का उपयोग—यह पाचक एवं शक्तिदायक होता है। उदर व जिगर के रोगों के लिए यह बहुत ही लाभकारी होता है। कच्चा पपीता सब्जी के काम भी आता है। इसका हलुआ भी तैयार किया जा सकता है। कच्चे पपीते से पैपेन भी निकाला जा सकता है। एक एकड़ पपीते के बगीचे से वर्ष भर में अनुमानतः 87 कि० ग्रा० पैपेन की प्राप्ति हो सकती है। जिन फलों से पैपेन निकाला जाता है, वे केवल डिब्बाबन्दीकरण (Canning) के ही काम के रह जाते हैं।

4. अमरूद (GUAVA)

अमरूद काफी कठोर प्रकृति का वृक्ष होता है। इसका मूल स्थान भी उष्ण कटिबंधीय अमेरिका है। वैसे इसका उत्पादन पृथ्वी के सभी उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में किया जाता है। भारत के उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और पंजाब

आदि राज्यों में उसका उत्पादन 105155 एकड़ भूमि में किया जाता है। इसकी दो किस्में पायी जाती हैं। एक सफ़ेद गूदे की और दूसरी लाल गूदे की। इनमें सफ़ेद गूदे की किस्म अधिक लोकप्रिय है। हमारे देश में जो अमरूद की प्रकार उगायी जाती हैं उनमें से लखनऊ, सिंध, ढोलका और इलाहाबादी उल्लेखनीय हैं। इनका आकार बड़ा, वयन कोमल, स्वादिष्ट फल और कोमल बीज होते हैं। इनके अधिकांशतः फल का वजन 400-500 ग्राम होता है।

भूमि व जलवायु—अमरूद के वृक्षों के लिए बालुई व जलोढ मिट्टियाँ ठीक रहती हैं। इसके लिए गर्म व शुष्क जलवायु की आवश्यकता रहती है। वैसे यह गर्मी, सर्दी और वर्षा सब को सहन कर लेता है।

प्रचारण—अधिकांशतः अमरूद का प्रचारण बीज से ही किया जाता है। इसके अलावा इसके पौधे कलम से भी तैयार किए जा सकते हैं। एक साल के बाद फरवरी-मार्च मास मे इन्हें उखाड़कर बाग मे लगाया जाता है। इस अवस्था के पौधे पर कलम लगाकर भी अच्छा अमरूद का पौधा तैयार हो सकता है। इससे पूर्व अमरूद के उद्यान का हल चलाकर भली-भांति स्तरण (Levelling) कर लेना चाहिए। पौधे लगाने से एक वर्ष पूर्व उद्यान में हरित उर्वरण भी करना चाहिए। तत्पश्चात् इच्छित दूरियों पर यानी 15 फीट की दूरी गर्मियों मे विवर खोदे जाने चाहिए। इनका आकार 60 सें० मी०×60 सें० मी०×60 सें० मी० होना चाहिए। इन्हें कुछ समय तक के लिए खुला छोड़ देना चाहिए। फिर इनमें पौधे लगाने की क्रिया अन्य फलों के समान करनी चाहिए। पावस ऋतु से कुछ दिन पूर्व ही इन विवरों की निकाली हुई मिट्टी में पशुओं के मलमूत्र की सड़ी हुई खाद 8 किलो प्रति विवर के अनुसार मिलाकर भर देना चाहिए। पौधे लगाने के बाद तत्काल ही आवश्यकतानुसार सिंचाई कर देनी चाहिए।

सिंचाई—गर्मियों मे अमरूदों के वृक्षों की सप्ताह में एक बार और सर्दियों में मास में दो बार सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए। यह सिंचाई पौधे लगाने के पहले तीन वर्षों तक करते रहना चाहिए। इसके उद्यान में सब तरह से मिले हुए जल की आवश्यकता अनुमानतः 20 इंच अर्थात् 50 सें० मी० के बराबर होती है। यह जल चाहे वर्षा से प्राप्त हो अथवा सिंचाई के द्वारा।

काट-छाँट—अमरूद के वृक्षों की काट-छाँट आवश्यकतानुसार करते रहना चाहिए। इससे वृक्षों की वृद्धि भली-भांति हो सकती है; किन्तु यह कार्य इस प्रकार करना चाहिए कि वृक्ष की आकृति ऐसी बन जाए कि उसका मध्य भाग खुला हुआ हो अर्थात् उसमें शाखाओं के बीच भाग मे भीड न हो जाए।

फल पकने का समय—अमरूद के वृक्षों मे फल 3-4 वर्ष में आने लगते हैं। सात आठ वर्ष की अवस्था मे पहुँचने पर वृक्षों मे फलों की संख्या बढ़ जाती है। इसकी पहली फसल मार्च-अप्रैल में आती है; किन्तु अक्टूबर- नवम्बर मास

की फसल अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। यह फरवरी मास तक फल देती रहती है। यह सस्य 'मृग-बहार' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

रोग व कीट शत्रु—अमरूदों के वृक्षों को मधुकीट तोते, चिड़िया आदि और फल मक्खी से बचाना चाहिए। कभी-कभी स्तम्भ छेदक कीट भी हमला करता है, पर इससे विशेष हानि नहीं पहुँच पाती है।

अमरूदों का उपयोग—इनसे कई परिरक्षित पदार्थ (Preserved Products) तैयार किए जा सकते हैं। इनमें जेली, जैम, फल, मिठाई आदि उल्लेखनीय हैं। यह भूख को बढ़ाता है और कब्ज को दूर करता है।

5. सेब (APPLE)

सेब एक स्वादिष्ट फल है। भारत में यह फल पर्वतीय क्षेत्रों काश्मीर, कुल्लू, कांगड़ा, शिमला, रामनगर आदि की 30000 एकड़ भूमि में पैदा किया जाता है। इसकी प्रायः सभी किस्में विदेशों से ही लाई गई हैं। यहाँ की 'अम्बरी' काश्मीर की एक मौलिक किस्म है। इसकी किस्मों के दो वर्ग हैं:—1. द्विगुणी (Diploids) 2. त्रिगुणी (Triploids)। द्विगुणी किस्मों में पराग की काफी मात्रा उत्पन्न होने के कारण फलों का स्वयं ही घनाच्छन्न अच्छा हो जाता है। त्रिगुणी किस्मों में फलों का घनाच्छन्न स्वयं नहीं हो पाता है। इसमें द्विगुणी वर्ग की किसी किस्म से परागण कराने पर ही फल लग पाते हैं।

भूमि और जलवायु—इस फल्य सस्य के लिए गहरे चूने वाली व दोमट मिट्टी ठीक रहती है; किन्तु भूमि में नमी काफी ज्यादा होनी चाहिए। जलवायु के दृष्टिकोण से इसे शीत जलवायु आवश्यक है।

प्रचारण—सेब का प्रचारण वर्ग कलिका बंधन, जिह्वा उपरोपण और क्रुपांग उपरोपण से किया जाता है। मूल स्तम्भ को उत्पन्न करने हेतु बीज किसी भी तरह से लिया जा सकता है। बीजू पौधों को एक साल के बाद नर्सरी में बदल दिया जाता है। यहाँ से तीन साल के बाद ही इन्हे सुषुप्तावस्था में बागों में लगाया जाता है।

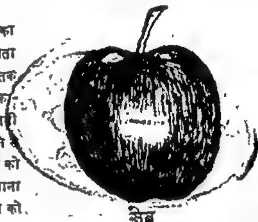
सिंचाई—सेब के पौधों की आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। इसका ध्यान सेब के पौधों पर फूल व फल आने के समय विशेष रूप से रखा जाता है जबकि फलों के पकने के समय सिंचाई की मात्रा कम कर देनी चाहिए।

काट-छांट—सेब के पौधों की काट-छांट भी महत्वपूर्ण विषय है; क्योंकि छोटे पौधों की काट-छांट के आधार पर ही बड़े वृक्ष का आधार बनाया जाता है। आरम्भ के कुछ वर्षों में तो काट-छाट का कार्य विशेषकर वृक्ष की एक निश्चत आकृति बनाने के लिए किया जाता है। ऐसा करने में अति संकुचित शाखाओं के वे जोड़ काफी बड़े कोण वाले हो जाते हैं जिसके फलस्वरूप वे भविष्य में

फलोत्पादन की स्थिति में फलों के भार से टूट नहीं सकती हैं। अतः स्तम्भ के साथ अति न्यूनकोण बनाने वाली शाखाओं की काट-छाँट सबसे पहले कर देनी चाहिए। फल आने के बाद इस कार्य से नई वानस्पतिक उत्पत्ति व फलोत्पादन के अन्तर्गत एक तरह का सामंजस्य बनाना पड़ता है। इससे फलों में विशेष वृद्धि होती है। यह कार्य पतझड़ के बाद कलिकाओं के खुलने से पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है।

खाद—सेब के पुराने वृक्षों की जड़ें खुली रखनी चाहिए। 20 किलो पशुओं के मलमूत्र की खाद में कुछ अमोनियम सल्फेट व सुपर फॉस्फेट का मिश्रण करके हर पौधे को देनी चाहिए।

फल पकने का समय—सेब का वृक्ष 6-7 वर्ष में फल देने योग्य होता है। इसमें फल जून से अक्टूबर तक उतरते रहते हैं। इन्हें वृक्षों से निकलने के लिए विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। सेबों को वृक्षों से तोड़ने से पूर्व हथेली अथवा दोनों हथेलियों को उसके नीचे रखकर वृक्ष से अलगाना चाहिए अन्यथा नीचे गिरने से सेब को काफी हानि पहुँचती है।



सेब

सेब की जातियाँ—इनमें अम्बरी, काश्मीर, गोल्डन, डेलीशस, रेड डेलीशस-रौयलडेलीशस, स्टारकिंग डेलीशस, रोमब्यूटी, जोनाथन, बाल्डविन, समरगोल्डन ब्यूटी ऑफ बाथ, कौक्स ऑरेंज पिपिन, बेन डेविस, न्यूटन वन्डर और जेम्स ग्रीव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रोग व कीट शत्रु—इस फल्य सस्य की व्याधियों में मुख्यतः जड़ों की सड़न कालर रौट, स्टैम ब्राउन, स्टैम ब्लैक और गुलाबी रोग हैं। कालर रौट को रोकने के लिए रोग रोधी मूल स्तम्भों का उपयोग करना चाहिए। स्टैम ब्राउन और स्टैम ब्लैक को रोकथाम के लिए कटी हुई शाखाओं पर चौबटिया पेस्ट लगाना चाहिए और बसन्त के मौसम में दोबार गंधक व चूने के मिश्रण का छिड़काव कर देना चाहिए। गुलाबी रोग के लिए भी चूने के मिश्रण का छिड़काव ही उपयुक्त रहता है। इसके मुख्य कीट शत्रुओं में ऊनी ऐफिस, मूल व स्तम्भ छिद्रक, सैन जोस स्केल व पत्ती का कैटर पिलर उल्लेखनीय है। ऊनी ऐफिस कीट की रोकथाम मिट्टी के तेल के इमलशन के छिड़काव से किया जा सकता है। सैन जोस स्केल कीट की रोकथाम फिश ऑयल इमलशन के छिड़काव से की जा सकती है। पत्ती का कैटर पिलर बीन कर मारा जा सकता है। शेष कीटों की रोकथाम के

लिए कोई उपाय अभी तक नही किया जा सका है।

सेबों के उपयोग—इसका जैम व मुरब्बा बनता है। यह स्वादिष्ट फल है। इसमे जीवन तत्त्व ए, बी, सी और लोहा तथा फॉस्फोरस काफी मात्रा में पाया जाता है।

6. अंगूर (GRAPES)

अंगूर अति प्राचीन व रुचिकर फल है। इसकी मूल उत्पत्ति सम्भवत् कोकेशस से भारत के मध्य वाले प्रदेश में मानी जाती है। विश्व भर में इसकी खेती 260 लाख एकड़ भूमि में होती है। इसके उत्पादक देशों में फ्रांस, इटली और स्पेन अग्रणीय है। इतने विशाल क्षेत्र में उत्पादित सस्य का अनुमानतः 82% भाग मदिरा तैयार करने के काम मे लाया जाता है। 9% फलों को सुखाकर किशमिश आदि तैयार की जाती है और शेष 9% ताजे फलों के रूप में प्रयोग में लिया जाता है। बलूचिस्तान का अंगूर बहुत ही प्रसिद्ध है। भारत मे अधिकांशतः इसकी खेती महाराष्ट्र, मद्रास, दिल्ली, पंजाब, मैसूर आदि में की जाती है। यहां पर इनका अधिकांश प्रयोग ताजे फलों के रूप में किया जाता है।

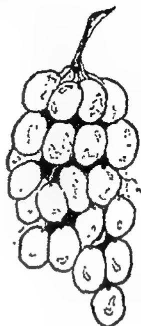
जलवायु—इस फल्य सस्य के उत्पादन में जलवायु का विशेष महत्व है। इस विकास एवं पकने के समय शुष्क जलवायु का होना आवश्यक है। ऐसी दशा में वर्षा हो जाने पर फल फट जाते है और सड़ जाते हैं। अतः फल पकने के समय उच्च तापमान होना चाहिए। जब अंगूर की लताएँ सुषुप्त काल में रहती हैं तो इनमें काफी कम तापमान व तुषार को सहने की शक्ति होती है; किन्तु इनके वृद्धि काल में पाला पड़ने से काफी हानि होती है। यह पर्वतीय क्षेत्रों में 6000 फीट तक की ऊँचाई पर हो सकता है।

भूमि—इस फल्य सस्य के लिए गहरी, गर्म, रेतली दोमट और काफी हल्की मिट्टी अच्छी रहती है। इसमें मिट्टी का अच्छा जलोत्सारण भी आवश्यक है।

प्रचारण—अंगूर के प्रचारण के लिए विश्व भर में कलमें ही लगायी जाती हैं। यही इसको लगाने की सरलतम विधि है। कलमों के लिए उन वर्षीय शाखाओं को चुनना चाहिए जिनकी छाल का रंग भूरा हो गया हो। इन शाखाओं में से 25-30 सें०मी० लम्बी कलमें तैयार करनी चाहिए। यह काम जनवरी फरवरी मास में होना चाहिए। एक साल के बाद इन कलमों का खेत में 3-4 मी० के अन्तर पर लगाना चाहिए। यह दूरी पौधे के सधाने की विधि पर निर्भर करती है। अंगूरों की बेलों को ऊपर चढ़ाने के लिए भी समुचित प्रबन्ध रखना चाहिए।

सिधाना व काट-छांट (Training & Pruning) अंगूर की लताओं का सिधाना व काट-छांट बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है। हमारे देश मे अंगूर की

लताओं को कई प्रकार से सिधाया जाता है। इसकी प्रथम विधि से अंगूर की लताओं को खातियों में जो कि 75 सें० चौड़ी और 90 सें० मी० लम्बी होती हैं, उनमें रोपा जाता है। इन खातियों के खोदने से निकली हुई मिट्टी को किनारों पर इकट्ठा कर लिया जाता है। अंगूर की लताओं को इन खातियों के भीतर दीवारों का सहारा दिया जाता है। छोटे अंगूरों (किशमिश वाले) के लिए खातियों की आपसी दूरी 360 सें० मी० और लताओं की दूरी 150 सें० मी० से 540 सें० मी० तक की रखी जाती है। एक वर्ष के बाद सम्पूर्ण पौधे को एक स्तम्भ के रूप में काट लिया जाता है। इसमें 2 या 3 गाँठें होती हैं। फिर दूसरे वर्ष दो मजबूत शाखाएँ छाँट कर इन्हें भी पहले की तरह काट दिया जाता है ताकि हर भुजा (Limb) में 2 या 3 गाँठें हो जाएं। मुख्य स्तम्भ की भी काट-छाँट की जाती है जिससे ऊपर के सिरे पर कुल मिलाकर 3 या 4 शाखाएँ दिखाई दें। इस तरह यह क्रिया हर साल चलती है जिससे कि पहले वर्ष की शाखा पर अन्य दो भुजाएँ छोड़ दी जाती हैं इस तरह की काट-छाँट खत्म करने के बाद भुजाएँ खम्भों के सहारे खातियों की दीवारों में अच्छी तरह अटका दी जाती हैं ताकि वे हवा और धूप से बच सकें।



अंगूर

बम्बई में अंगूर की लताओं को सिधाने के लिए एक खूंटी विधि (Single Stem Method) का प्रचलन है। इस विधि में अन्य जीवित पौधों के खम्भों को काम में लिया जाता है ताकि उनके ऊपर अंगूर की लताएँ चढ़ सकें। एक स्थान पर मूल सहित अंगूर की कलमें रोपी जाती हैं ताकि एक के जीवित न रहने पर दूसरी से पौधा लिया जा सके। स्थायी लताओं की आपसी दूरी 210 सें० मी० से 240 सें० मी० होती है। अप्रैल मास तक सभी बगल की कलिकाओं को स्तम्भ से निकालने का कार्य कर लिया जाता है। ऊपर की 3 या 4 कलिकाओं को छोड़ दिया जाता है। इस दशा में अंगूर की लताएँ 120 सें० मी० या 150 सें० मी० ऊँची होती हैं। 180 सें० मी० लम्बी और 270 सें० मी० गहराई पर फागड़ा की कलमों को लगा दिया जाता है। मई मास में इनके नीचे की ओर के आधे भाग को चूने से और ऊपर के भाग को कोलतार से पोत दिया

जाता है। ये फागड़ा के डंडे ही लताओं के सहारे के लिए लगाये जाते हैं और कुछ समय बाद ही ये जड़ें ले लेते हैं; क्योंकि इनकी जड़ें काफी ऊपर की सतह की मिट्टी में सीमित होती हैं अतः यह विचारा जाता है कि इनकी जड़ों की लताओं की जड़ों में कोई स्पर्धा नहीं होती है। पहले वर्ष की अप्रैल मास में छोड़ी गई चार कलिकाएँ ही भविष्य की काट-छांट का आधार होती हैं। अक्टूबर मास में इन चारों कलिकाओं से निकली शाखाओं को फिर पीछे की ओर काट दिया जाता है ताकि प्रत्येक शाखा में पहले की तरह 3 अथवा 4 कलिकाएं रह जाएं। इनमें अक्टूबर मास में शाखाएँ निकलती हैं, जिन्हें फिर पूर्ववत् 2-3 कलिकाओं वाली शाखा में पीछे की ओर काट दिया जाता है। जो कलिका शाखा की नोक के सब से समीप होती है उसमें ही फूल व फल लगते हैं। साधारणतः इनमें से कम से कम एक कलिका सुषुप्तावस्था में ही रह जाती है। अप्रैल मास में पुनः शाखा को इस कलिका की निकटवर्ती लम्बाई तक काट दिया जाता है। इस स्थिति में यह कलिका बढ़ती है और फल देती है। फल कुछ ही गुच्छों में प्ररोहों के आधार के समीप लगते हैं। पाँच वर्ष की अवस्था होने पर चार मजबूत शाखाएँ समीपतम लता की अन्य चार दृढ़ शाखाओं से बांध दी जाती हैं ताकि वे एक दूसरे को सहारा दिये रहें।

शीर्ष सहृति (Head System) भी एक खूंटी की ही विधि है; किन्तु इसमें लताओं को काफी छोटा रखा जाता है। 45 सें० मी० से 120 सें० मी० तक ही लता की ऊँचाई इस विधि में रखी जाती है। इसके अन्तर्गत लताओं को खड़ा रहने के लिए सहारे की जरूरत सिर्फ शुरू में ही 4-5 वर्ष तक रहती है। क्योंकि इस अवधि के बीत जाने पर लताएँ स्वयं ही खड़ी रह सकती हैं। इस विधि का अधिकांशतः प्रयोग अमेरिका के माइनीफेरा अँगूरों के उत्पादन के लिए किया जाता है।

अन्य विधियों के अनुसार निफिन में तारों की जाली बनाकर लताओं को जाली अथवा फ्रेम के दोनों ओर सिधाया जाता है। कोर्डन विधि में लताओं को जाली अथवा फ्रेम के एक ओर सिधाया जाता है। यह विधि ज्यादा खर्चीली होती है। पंडाल विधि भी मद्रास व मैसूर में काम लाई जाती है। इस विधि में अँगूरों की लताओं को 150-180 सें० मी० ऊँचे होने तक सबसे पहले अस्थायी रूप में खड़ा किया जाता है। इसमें लता पर उस ऊँचाई तक कोई शाखा नहीं रखी जाती है जहाँ तक कि पंडाल की ऊँचाई बनानी है अर्थात् 150 सें० मी० से 180 सें० मी० तक पंडाल की ऊँचाई पर पहुँचते ही फिर इन्हें उसकी छत पर उगने के लिए छोड़ दिया जाता है। जब अँगूर की लताएँ फलने की स्थिति में होती हैं उस समय पंडाल के ऊपर गत वर्ष की जितनी भी वृद्धि हो उसे 7 कलिकाओं तक छोड़ कर शेष भाग को अवश्य काट देना चाहिए।

सिंचाई—अंगूर के पौधों की सिंचाई उनकी आवश्यकतानुसार ही करनी चाहिए। अंगूरों के पकने के समय सिंचाई रोक देनी चाहिए।

खाद—अंगूर के हर पौधे की जड़ मे 15-20 किलो पशुओं के मलमूत्र से तैयार खाद देना ही पर्याप्त होता है; किन्तु इसके साथ फलने वाली लताओं में 250 ग्रा० अ० स० 250 ग्राम सु० फा० + 250 ग्रा० पो० स० का मिश्रण और 1½ किलो अस्थि चूर्ण, मछली की खाद तथा अरंडी की खेती का मिश्रण भी दे दिया जाए तो श्रेष्ठ रहता है। इनके अलावा वृद्धि के समय 3 औंस प्रति वर्ग मीटर के हिसाब से यह मिश्रण भी लिखित मात्रा के अनुसार तैयार करके देना चाहिए। पोटाश का सल्फेट 2 हिस्सा, अमोनियम सल्फेट, सूखा रक्त और सुपर फॉस्फेट एक-एक हिस्सा।

फल पकने का समय—फल में लगाने के तीन वर्ष के बाद अंगूर का पौधा फलने लगता है। इसमें उ० भारत में मई के चौथे सप्ताह से लेकर जुलाई के पहले सप्ताह तक फल लगते हैं। इस प्रकार ये पौधे 20-30 वर्ष तक खूब फलते रहते हैं। केवल उनकी तीव्र वायु से सुरक्षा आवश्यक समझी जाती है; क्योंकि इससे पुष्प गिर जाते हैं और नए प्ररोहो को हानि पहुँचती है।

अंगूर की जातियाँ—भारत में अंगूर की कई किस्में प्रचलित हैं। बम्बई, मद्रास और मैसूर में हैथा, बेदाना, भोकरी, साहिबी और सुलताना आदि अंगूर की किस्में उगायी जाती हैं। ये सब विदेशी किस्में हैं। उत्तर प्रदेश मे मोतिया, गोल्डन क्वीन, रोज ऑफ पेन, ब्लेक कॉर्निकॉन और सहारनपुर नं० 1 व 2 उगाई जाती हैं। राजस्थान में ब्लैक प्रिंस, सुलताना आदि का उत्पादन किया जाता है। इनके अतिरिक्त भी अंगूरो की कंधारी, गुलाबी, फकड़ी, बंगलौर डिब्लू पांच द्राक्षा, हैम्बर्ग, आस्ट्रेलिया, मस्कट आदि जातियों की खेती की जाती है। उ० भारत में पूसा सीडलेस, ब्यूटी सीडलेस, परलेट और कार्डिनल इत्यादि जातियाँ प्रचलित हैं।

बीज रहित अंगूर के तने मे छल्ला (गर्डलिंग) बनाकर उससे दानों को बड़ा किया जा सकता है, उनमें मिठास बढ़ायी जा सकती है तथा फसल एक सप्ताह पहले तैयार कर ली जा सकती है। यह कार्य फूलों के खिलने के 4-5 दिनों बाद करना चाहिए। इसमें तने के ऊपर से जमीन से [illegible] इंच की ऊँचाई से 5 मि० मि० चौड़ी छाल निकाल देना चाहिए। ध्यान यह रखना आवश्यक है कि उसमें थोड़ी सी भी छाल लगी न रह जाय अन्यथा यह प्रभावहीन सिद्ध होगा।

रोग व कीट शत्रु—अंगूर के पौधों का मुख्य कीट शत्रु दीमक है। इसको रोकने के लिए हाथ से सघन कृषि कार्य करना चाहिए। तोते व अन्य पक्षी भी अंगूरों को क्षति पहुँचाते हैं। इनके अलावा शाक भृंग लता मे खलनकर्ता और थ्रिप कीट भी अंगूर के पौधों को क्षति पहुँचाते हैं। इनमें शाक भृंग पत्तियों का

सफाया कर देते हैं। इनको रोकथाम किसी भी तरह के उदर विष से किया जा सकती है। लता मे चलनकर्ता कीट अंगूर की शाखाओं पर छाल का वलयन करके उन्हें सुखा डालता है। ऐसी स्थिति में सूखी शाखाओं को तत्काल काट देना चाहिए। थ्रिप कीट पत्तियों को क्षति पहुँचाता है। इसको खत्म करने के लिए पौधों पर निकोटिन सल्फेट का छिड़काव कर देना चाहिए। इनके अलावा अंगूरों के पौधों को हानि पहुँचाने वाली दो व्याधियाँ हैं—1. किण्व जनित चूर्णी फफूंदी 2. सूस रोग। इनमे से किण्व जनित चूर्णी फफूंदी को रोकने के लिए अंगूरों की बेलों पर चूना और गंधक के मिश्रण के घोल का छिड़काव करना चाहिए। सूस रोग से सुरक्षा हेतु मई के प्रथम सप्ताह में और जुलाई के प्रथम सप्ताह में बोर्डों घोल का अच्छी प्रकार से छिड़काव कर देना चाहिए।

उपयोग—इनमें जीवन तत्त्व बी और सी, शक्कर तथा फॉस्फोरस होता है। यह शक्तिदायक और रक्त शोधक है। उ० भारत में एंग्रेक्नोज बीमारी का काफी प्रकोप होता है। इससे शर्बत, मदिरा, सिरका, किशमिश और अन्य चीजें आदि बनायी जाती हैं।

7. सन्तरा (ORANGE)

सन्तरा भारत मे बहुतायत से उगाया जाता है। यह देखने मे जितना सुन्दर होता है उतना ही खाने में स्वादिष्ट भी। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध नागपुर संतरा, सिलहट सतरा, कुर्ग संतरा और खासी सतरा होता है।

भूमि—इस फल्य सस्य के लिए हल्की दोमट ही सबसे उत्तम मिट्टी होती है। यदि उप मिट्टी (*Sub Soil*) थोड़ी भारी हो तो बहुत ही अच्छा रहता है। मिट्टी उथली कदापि नहीं होनी चाहिए। भूमि 6-7 सें० मी० गहरी होनी चाहिए। जिसमें अच्छी जलोत्सारीय हो अधिक कैल्शियम युक्त मिट्टी इसके उत्पादन के लिए हानिकारक होती है।

जलवायु—सन्तरो के उत्पादन के लिए 40° तापक्रम वाले प्रदेश ठीक रहते हैं; क्योंकि इसका पौधा न तो अधिक गर्मी सहन कर सकता है और न अधिक सर्दी।

प्रधारण—सितम्बर-अक्टूबर मास में रफ लेमन (जट्टी खट्टी) या कर्ना खट्टा के बीज बोये जाते हैं। छह मास से एक वर्ष की अवधि के बीच पौधे का स्थान बदल दिया जाता है। जब पौधा 60 सें० मी० के लगभग हो जाता है तो फरवरी-मार्च अथवा अगस्त-सितम्बर में सन्तरे का कलिका बंधन उसके ऊपर कर दिया जाता है। कलिका बंधन करते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि आँखें अच्छे पौधे की हों। इन पौधों की आपसी दूरी 6 मीटर अवश्य रखनी चाहिए। इस प्रकार के नए तैयार किए हुए संतरे के पौधो को दिसम्बर से

फरवरी और अगस्त से सितम्बर में लगाया जाना चाहिए।

सिंचाई—सन्तरे के पौधों में गर्मी के दिनों में पन्द्रह दिनों के बाद सिंचाई करनी चाहिए।

खाद डालना—उत्तरी भारत में संतरों के पौधों में खाद डालने का कार्य जनवरी मास में किया जाता है। दक्षिण भारत में यह कार्य मानसून के आरम्भ में किया जाता है। ऐलन के अनुसार संतरों की पौध लगाने के पहले वर्ष के लिए 10 किलो ग्राम सड़ा गोबर 200 ग्राम अमोनियम सल्फेट, 400 ग्राम लकड़ी की राख और 200 ग्राम हड्डियों का चूरा अथवा सुपर फॉस्फेट का मिश्रण बनाया जाता है। फिर हर छह वर्ष तक प्रतिवर्ष 4 कि० ग्रा० सड़ी गोबर की खाद, 200 ग्राम अमोनियम सल्फेट, 300 ग्राम हड्डियों का चूरा अथवा सुपर फॉस्फेट बढ़ाकर देना चाहिए। आगे के दस वर्ष के अन्तर्गत हर वर्ष 4 कि० ग्रा० गोबर की खाद, 200 ग्राम अमोनियम सल्फेट, 300 ग्राम हड्डियों का चूरा $1\frac{1}{4}$ कि० ग्रा० लकड़ी की राख मिश्रण की मात्रा में बढ़ाते रहना चाहिए। इससे स्पष्ट हुआ कि दसवें वर्ष संतरे के हर पौधे को 45 कि० ग्रा० सड़ा गोबर, $2\frac{1}{2}$ कि० ग्रा० अमोनियम सल्फेट, 3 कि० ग्रा० हड्डियों का चूरा और 5 कि० ग्रा० लकड़ी की राख मिल सकेगी।

इसके अलावा भी खाद के कुछ मिश्रण नीचे दिए जा रहे हैं जो कि संतरे के प्रत्येक पौधे में उनकी अवस्थानुसार दिए जाते हैं।

पहला मिश्रण—

सुपर फॉस्फेट—15 कि० ग्रा०

पोटाश का सल्फेट 8 कि० ग्रा०

खली—22 कि० ग्रा०

अमोनियम सल्फेट—45 कि० ग्रा०

दूसरा मिश्रण—

बिसीफॉस 1 ग्रेड—46 कि० ग्रा०

पोटेशियम सल्फेट—8 कि० ग्रा०

खली—36 कि० ग्रा०

तृतीय मिश्रण—सुपर फॉस्फेट—20 कि० ग्रा०

पोटाश का सल्फेट—10 कि० ग्राम

खली—15 कि० ग्रा०

अमोनियम सल्फेट—5 कि० ग्रा०।

ऊपर दिए गए पहले या दूसरे मिश्रण को 1-2 वर्ष के पौधों को 1.5 कि० ग्रा० प्रति पौधा, 3 वर्ष के पौधो को 2 कि० ग्रा० प्रति पौधा, 4 वर्ष के पौधे को 2·5 कि० ग्रा० प्रति पौधा, 5 वर्ष के पौधे को 4 कि० ग्रा० प्रति पौधा, 6 वर्ष के पौधे को 5 कि० ग्रा० प्रति पौधे के हिसाब से देना चाहिए। जब फल लगने लगें तो तीसरे मिश्रण में से 10-12 वर्ष की अवस्था वाले पौधे को 8 कि० ग्रा० प्रति पौधा देना चाहिए। मिश्रण में महुआ की खली का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

फल पकने का समय—सन्तरे का पौधा 7-8 वर्षों में पहले पहल फल देने

लगता दसवें वर्ष के बाद सदा फल आते रहते हैं। कलिका बंधन से प्रचारित पौधे कभी चौथे वर्ष में ही फल देने लगते हैं और पूरी फसल सातवें वर्ष में मिलने लगती है। इस प्रकार यह 40 वर्ष तक लगातार फल देता रहता है।

उपयोग—सन्तरा स्वादिष्ट, शीतल और पाचक होता है। यह पेशाब को साफ़ करता है। यह रोगियों, खिलाड़ियों और यात्रियों के लिए बहुत ही लाभदायक है। इसमें जीवन तत्त्व ए, बी, सी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इससे स्कैंवश और शर्बत बनाया जाता है।

रोग व कीट शत्रु—संतरे के शिशु पौधों पर निम्नलिखित रोग व कीट शत्रुओं का प्रकोप होता है :—

(क) आर्द्रगलन—इस रोग से पीड़ित संतरे के शिशु पौधे को तत्काल उखाड़



संतरा

कर अलग कर देना चाहिए और स्वस्थ पौधों के ऊपर बोर्डो घोल (1 : 1 : 50) का छिड़काव कर देना चाहिए।

(ख) मिल्ड्यू—इस रोग से शिशु पौधे प्रभावित होने पर गंधक के चूर्ण के घुलन का छिड़काव करना चाहिए।

(ग) ऊपरि प्ररोह छिद्रक—इससे संतरे के पौधों को बचाने के लिए, प्रभावित भागों को नीचे अलग करके सुंडों को मार देना चाहिए।

(घ) ओरेंज डाग—यह संतरे के पौधों का शत्रु कीट है। इसके प्रमुख को दूर करने के लिए डी० डी० टी० का छिड़काव कर देना चाहिए।

पर्ण खनक—यह शिशु पौधों की पत्तियों को काफी हानि पहुँचाती है। इससे बचाव के लिए निकोटिन सल्फेट के और मत्स्य तेल रोजिन साबुन का छिड़काव करना चाहिए। इस मिश्रण को इस प्रकार तैयार करना चाहिए :—

निकोटिन सल्फेट—15 ग्राम
रोजिन साबुन—120 ग्राम
पानी—4 गैलन

सारांश

1. आम के लिए गहरी दोमट मिट्टी और जलोत्सारण का समुचित प्रबन्ध रहना चाहिए। गरम व नरम जलवायु की आवश्यकता रहती है। इसको कलम व बीज द्वारा लगाया जा सकता है। दो वर्ष बाद पौधे मई-जून और नवम्बर-दिसम्बर उद्यान में विवर खोदकर लगाये जाते हैं। पहले वर्ष में पशुओं के मलमूत्र की सड़ी खाद 10 किलो प्रति पौधे के अनुसार दी जाती है। धीरे-धीरे इसकी मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। इसके अलावा तीन किलो अमोनियम सल्फेट गर्मी के मौसम में हर पौधे को देना चाहिए। गर्मियों में सिंचाई निरन्तर करनी चाहिए और सर्दियों में पन्द्रह दिन के बाद। आम का पौधा 6-7 वर्ष में फल देने लगता है। यह रक्त शोधक होता है। इसमें विटामिन 'ए,' 'बी,' 'सी' पर्याप्त मात्रा में रहते हैं। इसका अचार, मुरब्बा, चटनी, शर्बत और अमचूर बनाया जाता है।
2. केले के लिए दोमट और मटियार दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है। इसे गरम व तर जलवायु चाहिए। धरती में जलोत्सारण का उचित प्रबन्ध रहना चाहिए। इसका पौधा एक वर्ष पुराने सकर से लेकर केले के उद्यान में लगाया जाता है। इसका रोपण फरवरी-मार्च और पावस ऋतु में किया जाता है। तीन सप्ताह बाद पौधों की जड़ों से मिट्टी हटाकर गोबर की खाद डालनी चाहिए। पावस ऋतु से पूर्व हर पौधे में ½ किलो सुपर फॉस्फेट देनी चाहिए। पौधों की निरन्तर सिंचाई करनी चाहिए और फल लेने के बाद पौधो को काट देना चाहिए। यह पौधे वर्ष भर में फल देते हैं। यह पौष्टिक फल है। इसमें विटामिन 'ए,' 'बी,' 'सी,' 'डी,' 'ई,' और पोटाशियम, कैल्शियम और फॉस्फोरस काफी मात्रा मिलती है।
3. पपीते के लिए दोमट और बलुआ दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है। इसकी सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। इसके बीज क्यारियों अथवा गमलों में जून-जुलाई में बोये जाते हैं। 36 सें० मी० लम्बे होने पर ये बाग में 3-4 मीटर की दूरी पर बोये जाते हैं। हरेक पौधे में 10 किलो गोबर की खाद देनी चाहिए। इसका हरेक पौधा वर्ष में 35-40 फल देता है। यह पाचक व शक्तिदायक होता है। इससे उदर

और जिगर के रोग दूर किए जाते हैं।

4. अमरूद के लिए रेतीली दोमट मिट्टी उपयुक्त रहती है, इसे गरम व शुष्क जलवायु चाहिए। इसका पौधा कलम व बीज से तैयार होता है। एक वर्ष के बाद फरवरी-मार्च में यह पौधा पुन-उद्यान में लगाया जाता है। इसके लिए गोबर की खाद श्रेष्ठ रहती है। इसको सिंचाई गर्मियों में सप्ताह में एक बार करनी चाहिए। इसका पौधा तीन वर्ष में फल देता है। इससे कब्ज दूर होता है। जैली व मिठाई बनायी जाती है।

5. सेब के लिए गहरे चूने वाली दोमट मिट्टी उपयुक्त है। इसे शीत जलवायु चाहिए। इसका प्रचारण कलिका बंधन, जिह्वा उपरोपण और क्रुपाग उपरोपण से किया जाता है। बीज जात पौधों को एक वर्ष के बाद नर्सरी में बदल देते हैं। यहाँ से तीन वर्ष बाद सुपुप्तावस्था में उद्यान में लगाया जाता है। इसकी आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। फल पकने पर सिंचाई कम कर देनी चाहिए। पौधे की काट-छांट ध्यान से करनी चाहिए। इसके प्रत्येक पौधे में गोबर की 20 किलो खाद में सुपर फॉस्फेट और अमोनियम सल्फेट का मिश्रण मिला कर दें। 6-7 वर्ष में सेब का पौधा फल देने लगता है। अम्बरी काश्मीरी, डैलीशस, रॉयल डैलीशस आदि उल्लेखनीय हैं। कालर रोट, स्टैम ब्राउन और, स्टैम ब्लेक तथा गुलाबी रोग इसकी मुख्य व्याधियाँ हैं। इसके कीट शत्रु ऊली ऐफिस, मूल व स्तम्भ छिद्रक, सैन जोस स्केल कीट हैं। इसका जैम व मुरब्बा बनाया जाता है। इसमें जीवन तत्व 'ए,' 'बी,' 'सी' और लोहा तथा फॉस्फोरस काफी मात्रा में पाया जाता है।

6. अंगूर के लिए गहरी, गर्म, रेतीली दोमट और काफी हल्की मिट्टी ठीक रहती है। इसके विकास एवं पकने के समय शुष्क जलवायु होनी चाहिए। इसकी कलमें लगायी जाती हैं। इसकी लताओं का सिधाना व काट-छांट बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसकी सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। इसके हर पौधे में 15-20 किलो गोबर की खाद में 10 किलो अस्थि चूर्ण, मछली की खाद और अरंडी की खली का मिश्रण मिलना चाहिए। अंगूर का पौधा तीन वर्ष में फल देता है। भारत में हैया, वेदाना, सुलताना मोतिया, गोल्डन, नवीन, ब्लेक प्रिंस आदि का उत्पादन होता है। इसका मुख्य शत्रु दीमक है। इसमें जीवन तत्त्व 'बी,' 'सी' और फॉस्फोरस होता है। इससे शर्बत, मदिरा, सिरका व अन्य चीजें बनायी जाती हैं।

7. सन्तरे के लिए हल्की दोमट मिट्टी ठीक रहती है। मिट्टी उथली कदापि नहो होनी चाहिए। यह बीजजात पौधा है। यह सितम्बर-अक्टूबर मास मे बोया जाता है। इनकी आपसी दूरी 6 मीटर होनी चाहिए। इसकी सिचाई गर्मियों में 15 दिनों में होनी चाहिए। इसके प्रत्येक पौधे में आधा क्विंटल गोवर की खाद और 2 किलो अमोनियम सलफेट देनी चाहिए। इसका पौधा 5-6 वर्ष में फल देता है। यह शीतल और पालक होता है। आर्द्रगलन, मिल्ड्यू, उपरि प्ररोह छिद्रक और ओरेंज डॉग आदि व्याधियाँ व कीट शत्रु हैं।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1. निम्नलिखित फलों का उत्पादन किस प्रकार करोगे ?

(क) आम (ख) पपीता (ग) अंगूर (घ) संतरा (ङ) सेव

प्रश्न 2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

(क) सेव के लिए·······व·······मिट्टी ठीक रहती है।

(ख)·······के विकास एवं पकने के समय·······जलवायु का होना आवश्यक है।

(ग)·······के प्रचारण के लिए·······लगायी जाती हैं।

(घ) संतरे के पौधों मे·······देने का कार्य·······मास में करना चाहिए।

(ङ) ओरेंज डॉग·······के पौधों का·······कीट है।

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. अपने विद्यालय में पपीता और संतरे के पौधे लगाओ।

10 सब्जियों का उत्पादन (VEGETABLES GROWING)

प्रस्तावना (INTRODUCTION)

आज के युग में जबकि सब्जियों के भाव आकाश को छू रहे हैं और ताजी मिलने की भी सम्भावना कम होती जा रही है। ऐसे समय में निजी बाड़ी मे अथवा छत पर सब्जियाँ उगाना अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है। इस से खाली समय का सदुपयोग भी होता है। इन ताजी सब्जियो से केवल संतुलित आहार ही प्राप्त नही होता है अपितु अपने हाथों से उगायी जाने के कारण विशेष संतोष भी मिलता है। इसके लिए एक ऐसी योजना तैयार करनी चाहिए कि सारे वर्ष परिवार को आवश्यक मात्रा में सब्जियाँ मिलती रहें। यह बाड़ी घर के पिछवाड़े में लगानी चाहिए। यहाँ पर स्नानघर व रसोई आदि का गंदा जल भी सुगमता से सब्जी की क्यारियों तक पहुँचाया जा सकता है। बाड़ी का आकार स्थान, व आवश्यकता के अनुसार रखना चाहिए। इसका रूप आयताकार होना चाहिए। इसमें सब्जियों के पौधों के बीज बोने से पूर्व स्थान के अनुसार कौन-कौन सी सब्जियाँ उगायी जाएँ; उनकी बुवाई की तिथियाँ, पौधों की दूरी, अतःकृषि व

10 मीटर

2 मीटर

बाड़ 25 मीटर

शतावर

पपीता

पपीता — केला — सहिजन

कूड़ा, खाद गड्ढा

कूड़ा, खाद गड्ढा

मिर्च
भिंडी
प्लाट-7

बैंगन (गोल) पालक की अंत कृषि
प्लाट-6
भिन्डी, चौलाई की अंत कृषि

बैंगन पालक की अंत कृषि
प्लाट-5
भिंडी, चौलाई की अंत कृषि

आलू
लोबिया प्लाट-4
फूलगोभी

फूलगोभी
मूली प्लाट-3
प्याज

फूलगोभी, गाँठगोभी की अंत कृषि
प्लाट-2
लोबिया

बंदगोभी के साथ सलाद की अंत कृषि
प्लाट-1
ग्वार और फ्रेंचबीन

बाड़ द्वार बाड़



सिंचाई की नाली
रास्ता

बाड़

चित्र—आदर्श शाक वाटिका

अनुक्रम कृषि आदि बातों को ध्यान में रखते हुए योजना तैयार करनी चाहिए। ऐसी ही एक आदर्श शाक वाटिका का चित्र पीछे दिया गया है।

आदर्श शाक वाटिका में सब्जियों की तालिका

क्यारी संख्या या प्लाट संख्या	बुवाई का समय	सब्जियों का नाम
1.	नवम्बर—मार्च	बंद गोभी के साथ सलाद की अंतःकृषि
	अक्टूबर—मार्च	ग्वार व फराशबीन की फलियां
2.	सितम्बर—फरवरी	फूलगोभी के साथ गांठ गोभी की अंतःकृषि
	मार्च—अगस्त	लोबिया (गर्मी-बरसात)
3.	जुलाई—नवम्बर	फूल गोभी (बीच मौसम)
	नवम्बर—दिसम्बर	मूली
	दिसम्बर—जून	प्याज
4.	मार्च—नवम्बर	आलू
	मार्च—जून	लोबिया की फलियां
	जुलाई—अक्टूबर	फूलगोभी (आरम्भ मे आने वाली)
5.	मार्च—जुलाई	लम्बे बैंगन के साथ पालक की अंत.कृषि
	मार्च—जून	भिण्डी के साथ चोलाई की अंत.कृषि
6.	अप्रैल—अगस्त	गोल बैंगन के साथ पालक की अंतःकृषि
	मई—जुलाई	भिण्डी के साथ चोलाई की अंत.कृषि
7.	मार्च—सितम्बर	मिर्च
	जून—अगस्त	भिण्डी
मेंड 1 से 3		शलगम के बाद मूली
मेंड 4		चुकन्दर के बाद अरवी
मेंड 5—6		गाजर के बाद अरवी
मेंड 7		विभिन्न प्रकार की मूलियों के बाद अरवी

वर्षानुवर्षी प्लाट या क्यारियो मे आगे दी गई फल व सब्जियां उगानी चाहिए—

एक कतार .... सहिजन
एक कतार .... कैथनीम
दो छोटी कतारें .... शतावर
दो कतारें .... टैपिओका
पाँच कतारें .... पपीता
पाँच कतारें .... केला

इनके अलावा सब्जियों के पौधों के दोनों ओर के स्थान पर पत्तेदार सब्जियाँ अदरक आदि की कतारें उगाने के काम में लेना चाहिए। इस प्रकार की आदर्श वाटिका से डेढ़ किलो ताजी सब्जी प्रतिदिन ली जा सकती है इनके बीजों पर व्यय अनुमानतः 26 रुपये वार्षिक होगा।

समय व फसल के अनुसार सब्जियों का वर्गीकरण

खरीफ की सब्जियाँ (ग्रीष्मकालीन सब्जियाँ)	रबी की सब्जियाँ (शीतकालीन सब्जियाँ)	जायद की सब्जियाँ (ग्रीष्मकालीन सब्जियाँ)
अगेती फूलगोभी	आलू	ककड़ी
करेला	गाजर	खरबूजा
खीरा	पत्ता गोभी	खीरा
टमाटर	गाँठ गोभी	तरबूज
तोरई	फ्रेंचबीन	भिण्डी
मिर्च	मटर	लोबिया
मूली	फूलगोभी	लौकी
लोबिया	पालक	
लौकी	शलगम	
बैंगन	मैथी	

मुख्य सब्जियाँ

1. आलू

कुल—सोलेनेसी वंश—सोलैनम जाति—ट्यूबरोसम

आलू शीतकालीन फसल है। इसकी खेती हमारे देश में सत्रहवीं शती से होती आ रही है। इस पर भी इसकी खेती यहाँ पर यथेष्ठ नहीं बढ़ पायी है। यहाँ पर इसकी प्रतिव्यक्ति खपत केवल 4 किलो प्रति वर्ष है जबकि विश्व के कई देशों में अनुमानतः 200 किलो प्रतिवर्ष खपत है। यहाँ पर आलू की खेती 504000 हैक्टेयर क्षेत्र में की जा रही है। इससे आलू की उपज प्रति वर्ष 4233000 टन होती है। इसका प्रयोग भून कर, उबालकर, सब्जियों में मिलाकर और अन्य वस्तुएँ बनाकर किया जा सकता है। इस प्रकार आहार के रूप में आलू का विशेष महत्व है। इसका पोषण मूल्य निम्नलिखित तालिका से आँका जा सकता है—

आलू की पोषण मूल्य तालिका

आलू में आहारीय अंश	मात्रा 100 ग्राम		
जीवन तत्व 'ए'	40 अ० ई०	निकोटाइनिक एसिड	1.2 मि० ग्रा०
जीवन तत्व 'सी'	17 मि० ग्रा०	थियामाइन	0.1 मि० ग्रा०
कैलशियम	10 मि० ग्रा०	रिबोफ्लेविन	0.01 मि० ग्रा०
लौह तत्व	0.7 मि० ग्रा०	क्लोरीन	16 मि० ग्रा०
फॉस्फोरस	44 मि० ग्रा०	कैलोरी	97
गंधक	37 मि० ग्रा०	अन्य कार्बोहाइड्रेट	22.6 ग्राम
ताँबा	0.20 मि० ग्रा०	खनिज तत्व	0.6 ग्राम
पोटैशियम	247 मि० ग्रा०	वसा	0.1 ग्राम
सोडियम	11.9 मि० ग्रा०	प्रोटीन	1.6 ग्राम
मैगनेशियम	20 मि० ग्रा०	रेशा	0.4 ग्राम
ऑक्जेलिक एसिड	20 मि० ग्रा०	नमी	74.7 ग्राम

भूमि व जलवायु—आलू की खेती के लिए अच्छी प्रकार से जल निष्कासित, वायु संचारित, गहरी और 5.2 से 6.4 पी० एच० वाली दोमट मिट्टी सर्वाधिक उपयुक्त है। क्षारीय भूमि में आलू बोने से पामा रोग की सम्भावना रहती है। वैसे आलू हर भूमि में उगाया जा सकता है। मैदानी क्षेत्र के अलावा इसकी उपज पर्वतीय क्षेत्र में भी की जा सकती है। यह शीतकालीन फसल होने के कारण साधारण पाले को सहन कर लेता है। इसके नये पौधे 24° सें० तापमान में सबसे अच्छे उगते हैं। इनका बाद का विकास 18° सें० तापमान में होता है। कंदों की अधिकतम उपज 20° सें० तापमान में होती है और 30° सें० तापमान में यह बिल्कुल ही रुक जाती है। कंदों की उपज हेतु छोटे दिनों वाला मौसम ठीक रहता है। आलू की शीघ्र उगने वाली जातियों के लिए लम्बे दिनों वाला मौसम ठीक रहता है। ये कंद भूमि के अन्दर भूस्तही के अंतिम भागों में उगते हैं। इसलिए ढीली मिट्टी में कंदों के विकास हेतु सब से कम प्रतिरोध होता है।

बुवाई—आलू की बुवाई उत्तर भारत के मैदानों में 15 सितम्बर से 15 जनवरी तक की जा सकती है। दिल्ली, पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक ही धरती पर क्रम से आलू की दो फसलें उगायी जा सकती हैं। दक्षिण भारत और छोटा नागपुर क्षेत्र (बिहार) में रबी तथा खरीफ की आलू की दो फसलें उगायी जा सकती हैं। नीलगिरि के पर्वतीय क्षेत्र में अप्रैल, अगस्त और जनवरी मासों में तीन फसलें उगाई जा सकती हैं। उत्तर भारत के पर्वतीय क्षेत्रों में मार्च-अप्रैल में आलू की बुवाई की जा सकती है।

भूमि की तैयारी, खाद एवं उर्वरक—आलू शीतकालीन उथली जड़ों वाला पौधा है। यह अपनी आवश्यकता की पूर्ति यथादातर भूमि की सतह से कर लेता है। 25 टन आलू 50 कि० ग्रा० फॉस्फेट, 110 कि० ग्रा० नाइट्रोजन (नत्रजन) 225 कि० ग्रा० पोटेशियम सतही भूमि से लेते हैं। जहाँ पर कार्बनिक खाद की उपलब्धि न हो सकती हो, वहाँ पर हरी खाद देनी चाहिए। आलू की खेती के लिए प्रति हैक्टेयर के अनुसार 30000 कि० ग्रा० गली हुई खेत की खाद अथवा नगर की कूड़ा-कर्कट की खाद बुवाई से 21 दिन या 28 दिन पूर्व देनी चाहिए। रोपाई के समय प्रति हैक्टेयर के अनुसार 140 कि० ग्रा० पोटेशियम सल्फेट, 400 कि० ग्रा० एमोनियम सल्फेट और 560 कि० ग्रा० सिंगिल सुपर फॉस्फेट का मिश्रण भी देना चाहिए। फिर मिट्टी चढ़ाने से पूर्व 200 कि० ग्रा० एमोनियम सल्फेट की तह ऊपर से बिछा देनी चाहिए।

बीज—रोगमुक्त और उचित किस्म के कंदों को पूरा अथवा टुकड़ों में काट कर बोया जाता है। ये कंद 40 से 50 ग्राम तोल और 40 से 5[illegible] मी० व्यास के जिनमें किसी प्रकार का मिश्रण नहीं होना चाहिए। रोपाई के समय इन कन्दों में कल्ले फूट निकलने चाहिए। फसल कटाई के तुरन्त बाद ही [illegible] के लिए 60

से 90 दिन की सुप्तावस्था चाहिए। कंद के आकार के अनुसार बीज प्रति हैक्टेयर 8 क्विंटल से 15 क्विंटल देने चाहिए। इनको आकार के अनुसार 45 से 60 सें० मी० × 15 से 25 सें० मी० की दूरी पर लगाना चाहिए।

सिंचाई—आलू को उथली जड़ वाला पौधा होने के कारण सिंचाई की बहुत आवश्यकता रहती है। बुवाई के बाद ही इसकी पहली सिंचाई करनी चाहिए। फिर 10 से 15 दिन के अन्तर से सिंचाई करते रहना चाहिए। एक मौसम में छह बार में कुल 12 से 24 इंच पानी की आवश्यकता होती है।

अंत: कृषि—इसका प्रमुख लक्ष्य मिट्टी को ढीला रखना होता है। इससे खर-पतवार भी खत्म हो जाते हैं। आलू के पौधे जब 20 सें० मी० ऊँचे हो जाएँ तो उनपर पहली बार मिट्टी चढ़ायी जानी चाहिए। दूसरी बार मिट्टी चढ़ाकर आलुओं को भली भाँति ढक देना चाहिए।

खर-पतवार नियंत्रण—खर-पतवार के नियंत्रण के लिए आलुओं की रोपाई के एक सप्ताह उपरांत प्रति हैक्टेयर 4,4 डी के तुल्य 1.3 कि० ग्रा० एसिड का प्रयोग करना चाहिए। आलू की कोपलें फूटने से पूर्व प्रति हैक्टेयर 0.5 कि० ग्राम नियो रोमर सिमाजिन रासायनिक का छिड़काव भी लाभकारी रहता है।

उपज—आलू की उपज उसकी जाति पर निर्भर रहती है। शीघ्र पकने वाली जाति की उपज प्रति हैक्टेयर 200 क्विंटल और देर से पकने वाली जाति की उपज प्रति हैक्टेयर 300 क्विंटल होती है।

फसल कटाई—यह कार्य करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आलुओं को किसी प्रकार की चोट न पहुँचे। कटाई का कार्य एक समुचित आकार के आलू से आरम्भ होकर बेलो के पूरी तरह पक जाने तक चलता रहता है। फसल की कटाई के तुरन्त बाद उसे तेज धूप में खुला नहीं छोड़ना चाहिए वरन् 18 से 30 घंटों के बीच उन पर तेज धूप से झुलसने के दाग पड़ जायेंगे। इन्हें दूर करने के लिए आलुओं को 15° सें० तापमान में रखना चाहिए।

उन्नितशील जातियाँ—अपटूडेट, साठा, गोला, फुलवा, कुफरी रेड, कुफरी कुबेरी, कुफरी किसान, कुफरी कुंदन, कुफरी सफ़ेद, कुफरी कुमार, कुफरी नीला, कुफरी सिंधूरी, कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी नवीन, कुफरी चमत्कार, कुफरी नील-मणी, कुफरी शीतमान, कुफरी ज्योति, कुफरी अलंकार, कुफरी जीवन, कुफरी मोती, कुफरी लवकार, कुफरी देव, दार्जिलिंग रेड राउंड, क्रेग्स डिफाएंस; ग्रेट स्काट और प्रेजिडेंट आदि उन्नतिशील जातियाँ अधिक उपज देने वाली हैं।

संग्रह विधियाँ—आलुओं को संग्रह करने की तीन विधियाँ है—1. ठंडा गोदाम 2. कम संग्रह 3. गड्ढे में संग्रह। इनमें संग्रह की सर्वोत्तम विधि ठंडा गोदाम है, क्योंकि इसमें तापमान व नमी दोनों पर ही नियंत्रण किया जा सकता है। आलू हेतु तापमान व नमी की सब से अच्छी स्थिति 2.2° से 3.3° सें०

तापमान तथा 75 से 80 प्रतिशत आर्द्रता है। इससे कम तापमान में रखे हुए आलुओं को 'ब्लेक हार्ट' नामक रोग प्रभावित कर सकता है। ऐसे ठंडे गोदामों में आलुओं को 45 सें० मी० ऊँचे एक दराज पर 30 सें० मी० तक की गहराई तक फैलाया जा सकता है और दो तहों के मध्य में 15 सें० मी० स्थान छोड़ना चाहिए। ठंडे गोदामों में रखे हुए आलुओं को खुले वातावरण में लाने से पहले एक दिन तक 15° सें० तापमान में रखना चाहिए।

आलुओं के संग्रह के लिए जिस कक्ष का उपयोग किया जाए, वह हवादार होना चाहिए। उसके द्वार व रोशनदानों पर लोहे की जाली लगी हुई होनी चाहिए। फिर रेत बिछा कर आलुओं की तह लगानी चाहिए। बीच-बीच में उनकी जाँच पड़ताल करते रहना चाहिए।

आलुओं के संग्रह के लिए जिन गड्ढों का प्रयोग किया जाए, वे 60 से 75 सें० मी० गहरे और 2-5 मी० लम्बे तथा 1 मीटर चौड़े किसी छायादार स्थान में बने होने चाहिए। इन्हें ठंडा रखने के लिए भीतर जल छिड़कना चाहिए। फिर 48 घण्टों के बाद उन गड्ढों की दीवारों पर नीम की पत्तियां, सूखीघास अथवा गन्ने के कचरे की तह बिछा देनी चाहिए। 0.5 मी० लम्बी बाँस की चिमनियां इनके भीतर एक मी० की दूरी पर लगायी जानी चाहिए ताकि संग्रहित आलू के कंदों के वाष्पोत्सर्जन से एकत्रित नमी का वाष्पीकरण आसानी से हो सके। तत्पश्चात् इन गड्ढों को कंदों से भर देना चाहिए। सिरे की ओर से 15 सें० मी० स्थान छोड़ देना चाहिए और 30 सें० मी० गहराई तक उसे खाली रहने देना चाहिए। फिर धूप व बरसात से सुरक्षा हेतु उन्हें घास फूस की छत से ढक देना चाहिए।

हानिकारक कीट व नियंत्रण—आलुओं के शत्रु निम्नलिखित हैं। उनसे सदा सुरक्षित रखना चाहिए।

(क) जू—यह विषाणु रोग पैदा करने वाली कई तरह की होती है। सभी तरह की जू आलुओं के पौधों की पत्तियों व नरम तनों को चूस कर हानि पहुँचाती है। इनसे प्रभावित होने पर आलू के पौधों की बाढ़ रुक जाती है और पत्तियाँ मुड़कर गोलाकार हो जाती हैं। उन पर नियंत्रण पाने के लिए पैरेथियन, मैलेथियन, फोलीडोल का मिश्रण तैयार करके साप्ताहिक छिड़काव करना चाहिए।

(ख) लीफ हाफर्स—ये 1/4 सें० मी० लम्बे हल्के रंग के कीट होते हैं। ये भी पत्तियों व तनों का रसचूस कर आलू के पौधों को कमजोर कर देते हैं। इनसे प्रभावित पत्तियाँ ऊपर की ओर मुड़कर पीली पड़ जाती हैं। आलुओं के पौधों की यह बीमारी हॉपर बर्ग कहलाती है। उस पर नियंत्रण पाने के लिए डी. डी. टी. एंड्रिन, पैरेथियन और मैलेथियन का मिश्रण तैयार करके छिड़काव करना

चाहिए।

(ग) कटवर्म—यह आलुओं का सबसे भयंकर शत्रु है। यह नए व नरम पौधों को भूमि की सतह के पास से काटते हैं। इन पर नियंत्रण पाने के लिए आलुओं की बुवाई से पूर्व 5 प्रतिशत डी. डी. टी. पाउडर 24 कि० ग्राम प्रति हेक्टेयर के अनुसार भूमि में मिला देना चाहिए।

आलुओं के रोग व नियंत्रण—आलुओं को कई रोग प्रभावित करते हैं, जिनमें से मुख्य-मुख्य रोगों का यहाँ पर उल्लेख किया जा रहा है :—

(क) ब्लैक लैग व रिंगराट—आलुओं के ये दो मुख्य जीवाणु रोग हैं। ब्लैग लैग रोग से आलुओं के पौधों की बाढ़ रुक जाती है और पत्तियाँ पीली पड़ कर मुड़ने लग जाती हैं। सतह के पास तने पर काले गले हुए भाग दिखाई देने लगते हैं। कंदों के रोग से प्रभावित हो जाने पर उनके बाहर-भीतर काला भाग उत्पन्न हो जाता है। रिंग राट से प्रभावित आलुओं के पौधों की पत्तियाँ मुरझाकर पीली पड़ जाती हैं तथा कंदों के वाहिनी वृत्तों का रंग हल्का भूरा हो जाता है। ये दोनो रोग आलुओं के बीजों से आते हैं। अतः बीज रोग मुक्त होने चाहिए।

(ख) गुप्त मोजेक—यह विषाणु जनित रोग रोगयुक्त आलू के पौधों के सम्पर्क से अथवा चाकू व औजारों से स्वस्थ पौधों को लग जाता है। इसकी दो प्रजातियाँ मामूली मोजेक और झुर्रीदार मोजेक बहुत ही विषैली हैं। इसमें से मामूली मोजेक विषाणु 'ए' जनित रोग है। इससे पत्तियों पर दाग़ दिखाई देने लगते हैं और वे झुर्रीदार हो जाती हैं। इसके लिए रोगयुक्त बीजों व सहिष्णु किस्मों का प्रयोग किया जाता है। झुर्रीदार मोजेक विषाणु 'वाई' जनित रोग है। इससे प्रभावित पौधों की बाढ़ रुक जाती है। उनकी पत्तियाँ अधिक झुर्रीदार व कभी-कभी चितकबरी हो जाती हैं। तनों पर अतिक्षयी धारियाँ दिखायी देने लग जाती हैं। पूर्णवृ`त व पत्तियाँ भंगुर हो जाती हैं और आखिर में पौधे मर जाते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए रोग मुक्त बीजों या कंदों का प्रयोग करना चाहिए।

(ग) ब्लैक हार्ट—यह रोग निम्न ऑक्सीकरण से होता है। जब रखे हुए आलुओं के ढेरों के बीच हवा बिलकुल नहीं जा पाती है तब इसका प्रभाव होता है। तापमान की अधिकता में यह अधिक फैलता है। अतः 3° सें० अथवा 4° सें० तापमान में भी आलुओं का ढेर सतह से 4 फुट ऊँचा रहना चाहिए।

(घ) हरापन—यह रोग आलूओं को खुली धूप में रखने से हो जाता है। यह हरा रंग 'सोलेनिन' की उपज है जिमें कुछ अंश ज़हर के पाए जाते हैं। इस पर नियंत्रण अच्छी प्रकार से मिट्टी चढ़ाने से किया जा सकता है।

(ङ) चारकोल क्षय—गोदामों में फफूँदी से उत्पन्न सबसे भयंकर रोग है।

इसके सूक्ष्म जीव ठंडे गोदामों में भी विद्यमान रहते हैं और उनकी अवधि बीत जाने पर एक साथ आक्रमण करते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए ठंडे गोदामों के फर्श पर भी पारे को किसी फफूंदीनाशक औषध का छिड़काव करा देना चाहिए।

(घ) देर से आने वाली चित्ती—यह भी आलू का फफूंदी रोग है। इसमें आलू के पत्तों पर चित्तियाँ तीव्रता से फैल जाती हैं। पत्ते व तने सूखने लग जाते हैं। पत्तों के निचले भाग में हल्की-सी फफूंदी लगने लगती है। ग्रसित भाग से दुर्गन्ध आने लगती है। यह रोग अधिकांशतः ठंडे व नमीदार वातावरण में पनपता है; किन्तु इसके लक्षण गर्मी में ही दृष्टिगत होने लगते हैं। इस पर नियंत्रण के लिए आलू के पौधों के 10 सें० मी० हो जाने पर फफूंदनाशी का छिड़काव फसल कटने तक साप्ताहिक रूप में जारी रखना चाहिए।

(छ) जल्दी आने वाली चित्ती—इस रोग से प्रभावित होने पर आलू की पत्तियों पर गहरे धब्बों व एककेन्द्रीय वृत्तों का प्रकटीकरण हो जाता है; पर इसमें पत्तियाँ मुरझाती नहीं हैं। इस पर भी नियंत्रण फफूंदनाशी के छिड़काव से पाया जा सकता है।

आलू का बीज तैयार करना—फसल की कटाई के तीन माह बाद बीज के लिए आलू तैयार हो जाता है। उस समय तक बीज को फफूंदी, शत्रु कीट व अन्य रोगों से बचाकर रखना चाहिए। इन्हें ठंडे गोदामों में रखना चाहिए।

2. टमाटर

कुल—सोलेनसी वंश—लाइकोपर्सिकन जातियाँ—एस्क्यूलेंटम व पिंपिनेली फोलियम।

टमाटर महत्त्वपूर्ण सुरक्षाप्रद आहारों में से है। आलू व शकरकंद के बाद विश्व भर में इसकी उपज ही सबसे अधिक होती है। इसकी उत्पत्ति पेरु व मैक्सिको में हुई है। 16 वी शती मे स्पेनिश लोगों के द्वारा इसका प्रचलन यूरोप में हुआ। तत्पश्चात् अमेरिका व केनेडा में इसकी मांग बढ़ी। भारत में इसको लाने का श्रेय पुर्तगालियों को जाता है। भारत में अनुमानतः इसकी खेती 36000 हैक्टेयर क्षेत्र में हो रही है। इसका प्रयोग सूप, सलाद, अचार, चटनी और सब्जी आदि के रुप में किया जाता है। इसका पोषण मूल्य आगे दी गई तालिका से आंका जा सकता है:

टमाटर की पोषण मूल्य तालिका

टमाटर में आहारीय अंश			माला 100 ग्राम		
जीवन तत्त्व 'ए'	320	अ० ई०	निकोटाइनिक एसिड	0.4	मि० ग्रा०
जीवन तत्व 'सी'	31	मि० ग्रा०	थियामाइन	0.07	मि० ग्रा०
कैलशियम	20	मि० ग्रा०	रिबोफ्लेविन	0.01	मि० ग्रा०
लोह तत्व	1.8	मि० ग्रा०	क्लोरीन	38	मि० ग्रा०
फॉस्फोरस	36	मि० ग्रा०	कैलोरी	23	
गंधक	24	मि० ग्रा०	अन्य कार्बोहाइड्रेट	3.6	ग्राम
ताँबा	0.19	मि० ग्रा०	खनिज तत्त्व	0.6	ग्राम
पोटैशियम	114	मि० ग्रा०	वसा	0.1	ग्राम
सोडियम	45.8	मि० ग्रा०	प्रोटीन	1.9	ग्राम
मैगनेशियम	15	मि० ग्रा०	रेशा	0.7	ग्राम
ऑक्जेलिक एसिड	2	मि० ग्रा०	नमी	93·1	ग्राम

भूमि व जलवायु—टमाटर की खेती के लिए अच्छी दोमट मिट्टी जिसकी ऊपरी सतह थोड़ी-थोड़ी बलुई हो और नीचे की भूमि अच्छी मटियार हो, सर्वाधिक उपयुक्त रहती है। साधारण भूमि पर भी उचित व्यवस्था के साथ टमाटर की खेती की जा सकती है। पी० एच० 6.0 से 7.0 वाली भूमि में इसकी उपज बहुत अच्छी होती है। यह गर्मियों की फसल होने के कारण अधिक पाला सहन नहीं कर सकती है। इसकी फसल के लिए 18° सें० से 27° सें० के बीच का औसत मासिक तापमान ठीक रहता है। तापमान व प्रकाश घनत्व का प्रभाव टमाटरों की बनावट, रंग व पोषक मूल्य पर पड़ता है।

बुवाई—उत्तर भारत में टमाटर की दो फसलें उगायी जाती हैं। जून-जुलाई में पतझड़ सर्दी की फसल के लिए क्यारियों में बीज बोये जाते हैं और नवम्बर-दिसम्बर मास में वसन्त-ग्रीष्म की फसल के लिए क्यारियों में बीज बोये जाते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में टमाटरों की बुवाई मार्च-अप्रैल में की जाती है। जिन क्षेत्रों में पाला पड़ने की किंचित मात्र भी सम्भावना नहीं होती है, वहाँ पर इनकी बुवाई केवल जुलाई-अगस्त में ही की जाती है।

पौधा लगाना, खाद एवं उर्वरक—जब टमाटर के पौधे काफी मजबूत हो जाते हैं अर्थात् उनकी ऊँचाई 7.5 सें० मी० से 10 सें० मी० के बीच हो जाती है

तब पतझड़-सर्दी की फसल के लिए अंतराल 60×60 सें० और बसन्त-ग्रीष्म की फसल के लिए अंतराल 60×45 सें० रखकर पौध लगानी चाहिए। इस समय नत्रजन, फॉस्फोरस और पोटाश के मिश्रण का भी प्रयोग करना चाहिए। टमाटर की फसलों में खादों और उर्वरकों का प्रयोग स्थान व भूमि के अनुसार किया जाता है। इसकी बुवाई की तैयारी करते समय 25 से 30 टन प्रति हैक्टेयर के अनुसार खेत की खाद भूमि में मिला देनी चाहिए। टमाटर की पौध लगाते समय मूलों के आस-पास अनुमानतः 400 कि० ग्रा० सुपर फॉस्फेट 150-200 ग्राम एमोनियम सलफेट और 60-100 कि० ग्रा० पोटैशियम सलफेट का मिश्रण देना चाहिए। 20 दिन बाद 150-200 कि० ग्रा० अमोनियम सलफेट की तह ऊपर से लगानी चाहिए। 35 कि० ग्रा० नत्रजन और 45 कि० ग्राम फॉस्फोरस प्रति हैक्टेयर पाँच बार अवश्य छिड़कना चाहिए। इससे टमाटरों की उपज काफी बढ़ जाती है।

संवर्धन—टमाटर के पौधों के लिए आरम्भ के 30 दिनों में कम गहरी जुताई चाहिए। प्रत्येक सिंचाई के बाद सतह की मिट्टी के शुष्क होने पर हाथ से गुड़ाई करनी चाहिए। इस स्थिति में घास-पात भी हटा देना चाहिए।

बीज व फलना—एक हैक्टेयर भूमि में टमाटर के 400 ग्राम बीज काफी रहते हैं। इस मात्रा में बीजों की संख्या 240000 हो जाती है। टमाटरों का फलना भी एक समस्या है। दिन का तापमान 38° सें० अधिक होने पर टमाटरों के फलने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उर्वरीकरण की कमी के कारण टमाटरों के न फलने पर पौध-नियंत्रकों के प्रयोग से सुधार हो सकता है। सम्पूर्ण टमाटर के पौधों पर पैरा क्लोरोफीनोक्सीएसिटिक एसिड-15 से 20 पी० पी० एम०, 2,4-



टमाटर

डाइक्लोरोफीनोमक्सी एसिटिक एसिड—5 पी० पी० एम० और जिबरेलि० एसिड—20 पी० पी० एम० का छिड़काव बहुत उपयोगी रहता है। इसके अतिरिक्त बुवाई से एक दिन पूर्व पौध-नियंत्रकों के घोल में बीजों को भिगोकर रखने से भी लाभ होता है। इसका चयन वातावरण व टमाटरों की किस्म के अनुसार करना चाहिए।

सिंचाई—टमाटरों की फसलों में यथासंभव उचित मात्रा में सिंचाई करनी चाहिए। इसके नए पौधों को तभी पानी देना चाहिए जबकि उसकी आवश्यकता दृष्टिगत हो। भूमि की फसल की सिंचाई सर्दियों में मास में तीन बार और गर्मियों में चार बार करनी चाहिए।

फसल कटाई—टमाटर की परिपक्वता की कई अवस्थाएँ हैं जैसे अधपका हरा, पका हरा, अधपका और लाल पका आदि। इसकी कटाई दूरी के अनुसार की जाती है। विदेशों में भेजे जाने के लिए पके हुरे टमाटर चुने जाते हैं। डिब्बा बंदी के लिए पूरे पके लाल टमाटर चुनने चाहिए। इसकी उपज प्रति हैक्टेयर 16000 से 23000 कि० ग्राम होती है।

उन्नतिशील जातियाँ—मीनो, पूसा, रूबी, सियोक्स, मारग्लोब, बेस्ट ऑफ ऑल, फायर बाल, एस० एल० 12°, इटालियन रेड पीअर, रोमा, टी०1, पोंडेरोसा, प्रिचर्ड, ऑक्सहार्ट, डेबलिस चोइस और रेड क्लाउड आदि।

संग्रह विधि—टमाटरों के संग्रह के लिए विभिन्न सैं० ग्रेड तापमान की आवश्यकता होती है। ठंडे गोदामों में संग्रह करते समय तापमान 12° से 15° सैं० होना चाहिए। पके हुए लाल टमाटरों को 10 दिन तक 4-5° सैं० के तापमान में और पके हुए हरे टमाटरों को एक मास तक 10° से 15° सैं० के तापमान में रखना चाहिए।

हानिकारक कीट व नियंत्रण—टमाटरो के कई कीट शत्रु होते हैं, उनमें से विशेष का उल्लेख नियंत्रण के साथ नीचे किया जा रहा है—

(क) एपीलेक्ना बीटल—ये शत्रु कीट टमाटर के पौधों की जगह-जगह से पत्तियाँ खाकर उन्हें लेसनुमा रूप दे देते हैं। इन पर नियंत्रण दो विधियों से पाया जा सकता है। इसमें पहली विधि तो यह है कि इस शत्रु कीट के लार्वा और अण्डों को दोनों हाथ से बाहर निकालकर नष्ट कर देना चाहिए। दूसरी विधि है छिड़काव की। इसमें प्रति हैक्टेयर 0.1 प्रतिशत डी० डी० टी० 600 से 1200 लीटर की दर से छिड़काव कर देना चाहिए। पर इसमें एक बात ध्यान रखने योग्य है कि छिड़काव से पूर्व पके टमाटरों को चुन लेना चाहिए।

(ख) टमाटर का कीड़ा—टमाटर की फसल के लिए यह सबसे हानिकारक होता है। अण्डों के फूटते ही सूंडियाँ पत्तों पर चलकर अपना आहार ग्रहण करने लग जाती हैं। फिर टमाटरों में छिद्र करके उनमें प्रवेश कर जाती हैं और वहीं

पर बिल बना लेती हैं। इन पर नियंत्रण की भी दो विधियाँ हैं। पहली विधि के अनुसार तो कीटग्रस्त टमाटरों को नष्ट कर देना चाहिए। दूसरी विधि के अनुसार टमाटरों के विकास की प्रारम्भिक स्थिति में मास में दो बार 0.1 प्रति डी० डी० टी० का छिड़काव कर देना चाहिए। इसके अलावा यह कीड़ा मेलेथियन 10-12 सी सी 5 लिटर जल में मिश्रण करके साप्ताहिक छिड़काव से भी रोका जा सकता है।

रोग व नियंत्रण—टमाटर फफूँदी, जीवाणुओं, विषाणुओं, जड़ गाँठ गोल कृमि के कारण कई रोगों का शिकार हो जाता है। यहाँ पर कुछ मुख्य रोग व उनके नियंत्रण के विषय में लिखा जा रहा है—

(क) आर्द्र गलन—यह रोग अधिकांशतः टमाटर की नर्सरी क्यारियों में बीजांकुरों पर प्रहार करता है और फलतः वे गिरने लग जाते हैं। यह रोग पाइ-थियम एस० पी० पी० या फाइटोफोरा एस० पी० पी नामक सूक्ष्म जीवों द्वारा फैलता है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए बुवाई से पूर्व सेरासन जैसे किसी ताम्र यौगिक से बीजों का उपचार करना चाहिए।

(ख) फ्यूसेरियम मुरझान—यह बहुत ही भयंकर रोग है। इससे टमाटर के पौधों की निचली पत्तियाँ पीली और पर्णवृंत झुक जाते हैं। तत्पश्चात् रोगग्रस्त पौधे मुरझा कर मर जाते हैं। यह फ्यूसेरियम ऑक्सीस्पोरम एफ० लाइकोपर सी सी नामक फफूँद की देन है जोकि एक दीर्घ अवधि तक मिट्टी में स्थित रहती है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए टमाटर की फसल का हेर-फेर तथा मारग्लोब, रटजर्स, प्रिचर्ड, मैना लूसी आदि रोग प्रतिरोधक किस्मों का प्रयोग नितान्त आवश्यक है।

(ग) शीघ्र आने वाली चित्ती—टमाटर का यह रोग आल्टरनेरिया सोलेनी नामक फफूँद से उत्पन्न होता है और पत्तियों और अधपके फलों को प्रभावित करता है। अधपके फलों पर भूरे दाग पड़ जाते हैं, फल झड़ने लग जाते हैं और सम्पूर्ण पौधा सूख जाता है। ऐसे पौधे के बीजों का प्रयोग भूल कर भी नहीं करना चाहिए। इस पर नियंत्रण पाने के लिए किसी ताम्र यौगिक से बीजों का उपचार करना चाहिए और कभी-कभी बोर्डो मिक्सचर का छिड़काव भी करते रहना चाहिए।

(घ) देर से आने वाली चित्ती—यह रोग भी फाइटोफोरा फफूँदी की देन है। यह पत्तियों, तनों और फलों को प्रभावित करता है। इससे प्रभावित टमाटर पर गहरी चित्तियाँ पड़ जाती हैं और रोगग्रस्त भाग शान्त हो जाता है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए बोर्डो मिक्सचर का तत्काल प्रयोग करना चाहिए।

(ङ) पर्णकुंतल—यह सबसे भयंकर रोग पावस और पतझड़ के मौसम में ज्यादा होता है। इससे प्रभावित पौधों की पत्तियाँ छोटी रह जाती हैं, सिकुड़

जाती हैं और मुड़ जाती हैं तथा उनकी बाढ़ रुक जाती है। इसका जन्म सफ़ेद मक्खी नामक कीट से होता है। इस पर कुछ सीमा तक नियंत्रण पाने के लिए सप्ताह में एक बार किसी कीटनाशी का छिड़काव करते रहना चाहिए।

(घ) जड़ गांठ गोलकृमि—ये एक प्रकार के सूक्ष्म कीट होते हैं जो टमाटर के पौधों की जड़ों को प्रभावित करते हैं। ये जड़ों के अन्दर प्रवेश करके स्थान-स्थान पर सूजन पैदा कर देते हैं। इससे पौधों की बाढ़ रुक जाती है, पत्तियों का रंग नीला पड़ता जाता है और पौधे शीघ्र ही मर जाते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए नेमागन जैसी किसीनेमोटीडनाशी से भूमि को धुआं देना चाहिए। इसके अलावा रोग-प्रतिरोधक किस्में जैसे कि एस० एल० नं० 120 का प्रयोग भी किया जा सकता है।

3. बैंगन (BRINJAL)

कुल—सोलेनेसी वंश—सोलेनम जाति—मैलनजैना

भारत में उपजने वाली सब्जियों में बैंगन का सबसे ज्यादा प्रचलन है। 22,500 हैक्टेयर भूमि में इसकी उपज की जाती है। इसमें आयुर्वेदिक औषधीय गुण पाये जाते हैं। मधुमेह से पीड़ित लोगों के लिए श्वेत बैंगन अधिक उपयोगी है। इसका पोषण मूल्य निम्नलिखित तालिका से आंका जा सकता है।

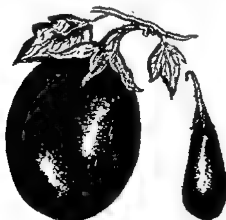
बैंगन की पोषण मूल्य तालिका

बैंगन में आहारीय अंश	मात्रा 100 ग्राम				
जीवन तत्त्व 'ए'	124	अ० ई०	निकोटाइनिक एसिड	0.09	मि० ग्रा०
जीवन तत्त्व 'सी'	0.12	मि० ग्रा०	थियामाइन	0.04	मि० ग्रा०
कैलशियम	18.0	मि० ग्रा०	रिबोफ्लेविन	0.11	मि० ग्रा०
लौह तत्त्व	0.9	मि० ग्रा०	क्लोरीन	52.0	मि० ग्रा०
फॉस्फोरस	47.0	मि० ग्रा०	कैलोरी	24	
गंधक	44.0	मि० ग्रा०	अन्य कार्बोहाइड्रेट	4.0	ग्राम
तांबा	0.17	मि० ग्रा०	खनिज तत्त्व	0.3	ग्राम
पोटैशियम	2.0	मि० ग्रा०	वसा	0.3	ग्राम
सोडियम	3.0	मि० ग्रा०	प्रोटीन	1.4	ग्राम
मैगनेशियम	16.0	मि० ग्रा०	रेशा	1.3	ग्राम
ऑक्जेलिक एसिड	18.0	मि० ग्रा०	नमी	92.7	ग्राम

भूमि व जलवायु—बैंगन की खेती के लिए अच्छी प्रकार से जलनिष्कासित और उर्वर भूमि अधिक उपयुक्त रहती है। गाद दोमट अथवा दोमट मटियार भूमि में भी इसकी उपज अच्छी होती है। इसकी शीघ्र उगने वाली फसल के लिए बलुई दोमट भूमि अच्छी मानी गई है। इसकी उपज के लिए एक लम्बा गरम मौसम चाहिए। पाले से इसका पौधा नष्ट हो जाता है। इसकी विलम्ब से उगने वाली फसल साधारण शीत-पाला सहन कर लेती है। इसके लिए दैनिक 18° से 21° सें० का तापमान सर्वाधिक अनुकूल रहता है।

बुवाई—बैंगन के बीज 6 से 12 मि० मी० गहरी और 5 सें० मी० की परस्पर दूरी की नर्सरी की क्यारियों में जून मास में बोना चाहिए। इन क्यारियों के तल में कुछ सें० मी० तक पत्थर के छोटे टुकड़े व रेत रहना चाहिए ताकि जल निष्कासन की समुचित व्यवस्था रह सके। इनकी ऊपरी मिट्टी में खेत की खाद भली-भाँति मिला देनी चाहिए। इसमें सुपर फॉस्फेट की भी थोड़ी मात्रा मिला देनी चाहिए। तत्पश्चात् इन्हें बीजांकुरण तक फूंस आदि से ढक देना चाहिए। जुलाई मास में इस फसल के बीजांकुरों की पौध लगाई जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में बीजों की बुवाई अप्रैल मास में की जाती है और मई मास में बीजांकुरों की पौध लगाई जाती है।

पौध लगाना, खाद एवं उर्वरक—बैंगन की चार से छह सप्ताह की पौध भलीभाँति से तैयार की गई भूमि में दो कतारों के बीच और दो पौधों के बीच 61 से 46 सें० मी० अंतराल से लगानी चाहिए। इसके लिए खेत की भूमि तैयार करते समय उसमें कार्बनिक खाद मिलानी चाहिए। इसके साथ ही प्रति हैक्टेयर 25 से 37 टन खेत की खाद मिला देनी चाहिए। इसके बाद 560 कि० ग्राम



बैंगन

अमोनिया सल्फेट (200 कि० ग्रा० यूरिया) और 360 कि० ग्रा० सुपर फॉस्फेट तथा 100 कि० ग्रा० पोटैशियम सल्फेट का मिश्रण बनाकर 20-25 दिन के अंतराल में देना चाहिए। इससे उपज काफी अच्छी होती है।

बीज व फलना—बैंगन में लंबे, मझोले, तथाकथित छोटे और वास्तविक छोटे फूल लगते हैं। इनमें से लम्बे और मझोले फूलों के तल में उभरा हुआ अंडाशय होता है, अतः इन्हीं में फल लगते हैं। फूलों के गुच्छे प्रगट होने पर सम्पूर्ण पौधे पर 2,4 डी, 2 पी० पी० एम० का छिड़काव करना चाहिए। इससे फलने की प्रक्रिया 50 प्रतिशत शीघ्र व अधिक होती है। प्रति हैक्टेयर भूमि के लिए 500 ग्राम बीज पर्याप्त रहते हैं।

सिंचाई—इसकी पहली सिंचाई तो पनीर लगाते ही कर देनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में एक बार इसकी सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।

फसल कटाई व उपज—बैंगनों का चुनना समुचित आकार व रंग लेने के बाद ही करना चाहिए। बैंगन पूरी तरह पक जाने पर हरापन लिए हुए पीला अथवा कास्य वर्ण हो जाता है। बैंगन को तने से अलग काटकर फसल को काटना चाहिए। बैंगन के साथ थोड़ा-सा डंठल लगे रहने देना चाहिए। इसकी अनुमानित उपज 20,000 से 25,000 कि० ग्रा० प्रति हैक्टेयर होती है।

उन्नतिशील जातियाँ—भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था, नई दिल्ली ने बैंगन की ये चार जातियाँ बतलाई हैं—1. पूसा पर्पिल लोंग 2. पूसा पर्पिल राउण्ड 3. पूसा पर्पिल कलस्टर और 4. पूसा क्रांति इसके अलावा मुख्य जातियाँ निम्नलिखित हैं—

उत्तर प्रदेश—ब्लैक ब्यूटी और बनारस जाइंट।

बिहार—मुक्तकेशी और एसटीर।

पंजाब—पंजाब बहार, पंजाब चमकीला और ब्लैक ब्यूटी।

मद्रास—34 गुडयाट्टम और श्राइनांड जाइंट।

महाराष्ट्र—मंजरी गोटा और सुरती गोटा।

संग्रह विधि—बैंगन की कटी हुई फसल के फलों को एक सप्ताह से डेढ़ सप्ताह तक 70° से 100° सें० तापमान व 85-90 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता में भली-भाँति रखा जा सकता है।

हानिकारक कीट व नियंत्रण—बैंगन के कई कीट शत्रु होते हैं। उनमें से विशेष का उल्लेख नियंत्रण के साथ यहाँ पर किया जा रहा है—

(क) लाल कीड़ा—ये बैंगन की पत्तियों का रस चूस लेते हैं। इनके भयंकर प्रकोप से सारी फसल पीली पड़ जाती है और उसकी पत्तियों पर मकड़ी जाल दृष्टिगत होने लगता है। इन पर नियंत्रण पाने के लिए मैलेथियन (0.02 प्रतिशत) या फोलीडोल (0.03 प्रतिशत) के छिड़काव करने चाहिए।

(ख) प्ररोह एवं फलबेधक—बैंगन की फसल के लिए यह सबसे भयंकर कीट है। आरंभ में ये कीट सीमांत प्ररोहों पर आक्रमण करते हैं और बेधकर अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। तत्पश्चात् नए फलों के आगमन पर ये कीट उनमें छिद्र करके प्रवेश करने लग जाते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए कीट वाले फल व पौधे को नष्ट कर देना चाहिए। तत्पश्चात् 9 लिटर जल में 20 प्रतिशत लिनडेन (11 सी० सी०) और 25 प्रतिशत डी० डी० टी० (9 सी० सी०) मिश्रण करके उसका छिड़काव अच्छी तरह करना चाहिए।

(ग) ऐपीलेचना बीटल—बैंगन की फसल को क्षति पहुँचाने वाला यह कीट कुछ-कुछ लाल रंग का गुंबदनुमा होता है। इसकी सूँडी हल्की पीली व रोएंदार होती है। यह सम्पूर्ण पत्ती को खा जाता है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए ग्रसित पत्तियों को तत्काल तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए और पौधों पर 5 प्रतिशत बी० एच० सी० 20 कि० ग्रा० प्रति हैक्टेयर की दर से बुरक देना चाहिए।

रोग व नियंत्रण—बैंगन की फसल कई प्रकार के रोगों से प्रभावित होती है। उनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—

(क) आर्द्र गलन—पीथियम व फाइटोथोरा जातियों से उत्पन्न यह रोग नर्सरी के पौधों को अधिक प्रभावित करता है। इस रोग की फफूंद मिट्टी में मिलती है। ग्रसित नवांकुर सूखकर धरती पर गिरने लगते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए नर्सरी की भूमि का निर्जीवीकरण तथा बुवाई से पूर्व बीजों का किसी भी फफूंदीनाशी से उपचार कर लेना चाहिए।

(ख) फोमोपोसिस ब्लाइट—बैंगन की फसल का यह सब से भयंकर रोग है। इसका जन्म फोमोपोसिस वैक्संस नामक फफूंदी से होता है। यह बैंगन के सम्पूर्ण पौधे को ग्रस लेती है। इससे पत्तियों पर भूरे, गोल व लम्बे दाग दिखायी देने लगते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए रोग मुक्त पौधों के बीजों का प्रयोग, किसी फफूंदनाशी से बीजोपचार, रोग सहन करने वाली किस्मों का प्रयोग, लम्बा फसल-चक्र और फफूंदनाशी का साप्ताहिक छिड़काव करना चाहिए।

(ग) लिटिल लीफ—यह बैंगन की फसल का सबसे भयंकर रोग है। इससे ग्रसित पौधों में छोटी-छोटी पत्तियाँ दिखाई देने लगती हैं। फूल के कुछ अंश विकृत हो जाते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए प्रारम्भिक अवस्था में ही रोग-ग्रस्त पौधों का निष्कासन और फोलीगेल आदि कीटनाशी का प्रयोग निरंतर करते रहना चाहिए।

(घ) जड़गांठ गोलकृमि—इससे ग्रसित बैंगन के पौधों की बाढ़ रुक जाती है और उनकी पत्तियों पर पांडुर रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। कई बार जड़ों पर गाँठें पड़ जाया करती हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए नेमागोन जैसी

किसी नेमाटाइडनाशी से भूमि को धुआँ देना चाहिए।

4. फूलगोभी (CAULIFLOWER)

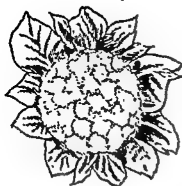
कुल—क्रूसीफेरी वंश—ब्रासीका जाति—ओलेरेसिया

भारत में फूलगोभी शीतकालीन एक नाजुक फसल है। यह अपने श्वेत कोमल शीर्ष के लिए उगायी जाती है। इसका विकास जंगली पौधों से ही हुआ है। इसकी उत्पत्ति साइप्रस व भूमध्य सागर के तट के आस-पास पायी जाती है। इसका प्रयोग सूखी सब्जी, सूप, अचार व पकोड़ों में किया जाता है। इसका पोषण मूल्य निम्नलिखित तालिका से आँका जा सकता—

फूल गोभी की पोषण मूल्य तालिका

गोभी में आहारीय अंश			मात्रा 100 ग्राम
जीवन तत्त्व 'ए'	51 अ० ई०	निकोटाइनक एसिड	1.0 मि० ग्रा०
जीवन तत्त्व 'सी'	6 मि० ग्रा०	थियामाइन	0.04 मि० ग्रा०
कैलशियम	33 मि० ग्रा०	रिबोफ्लेविन	0.10 मि० ग्रा०
लौह तत्त्व	1.5 मि० ग्रा०	कैलोरी	30
फॉस्फोरस	57 मि० ग्रा०	अन्य कार्बोहाइड्रेट	4.0 मि० ग्रा०
ताँबा	0·05 मि० ग्रा०	खनिज तत्त्व	1.9 ग्राम
पोटैशियम	113 मि० ग्रा०	वसा	1.2 ग्राम
सोडियम	53 मि० ग्रा०	प्रोटीन	2.6 ग्राम
मैंगनेसियम	20 मि० ग्रा०	रेशा	1.2 ग्राम
ऑक्जेलिक एसिड	19 मि० ग्रा०	नमी	90 8 ग्राम

भूमि व जलवायु—फूल गोभी की खेती के लिए उर्वर, भलीभाँति कार्बनिक पदार्थयुक्त व जल निष्कासित दोमट भूमि उपयुक्त रहती है। इसकी अधिक उपज के लिए भूमि का अनुकूलतम पी० एच० 5.50 और 6 6 के बीच होना चाहिए। इसके अच्छे फूलों के लिए ठंडी व नमीदार जलवायु चाहिए। इसके लिए अनुकूलतम मासिक तापमान 15°-22° सें० होना चाहिए, जिसमें अधिकतम



फूलगोभी

औसत तापमान 25° सें० और निम्नतम 8° सें० तक रहना चाहिए।

बुवाई—गोभी की खेती के लिए सबसे पहले फफूंदनाशी के द्वारा भूमि का निर्जीवीकरण कर लेना चाहिए। जल्दी उगने वाली किस्म के बीजों का उपचार नर्सरी की क्यारियों में बोने से पूर्व किसी पारदीय फफूंदनाशी से कर लेना चाहिए ताकि नव बीजांकुरों की सुरक्षा आर्द्रगलन से की जा सके। इनकी बुवाई 15 मई से 30 जून तक करनी चाहिए। बीच मौसम की फसल की बुवाई जुलाई-अगस्त में करनी चाहिए। देर से उगने वाली फसल की बुवाई 15 सितम्बर से 31 अक्टूबर तक करनी चाहिए।

बीज—जल्दी उगने वाली गोभी की फसल के लिए 600 से 750 ग्राम प्रति हैक्टेयर और देर की फसल के लिए 375 से 400 ग्राम बीज पर्याप्त हैं।

पौध लगाना, खाद व उर्वरक—चार से छह सप्ताह तक के बीजांकुरों की पौध भली-भांति तैयार की गई दोमट भूमि में लगानी चाहिए। फूलगोभी (अगाही) में कतारों की दूरी 61 सें० मी और पौधों की दूरी 30 सें० मी० रखनी चाहिए। फूलगोभी (पिछाही) में कतारों की दूरी 75 सें० मी० और पौधों की दूरी 45 सें० मी० रखनी चाहिए। इसकी फसल के लिए भारी खाद की जरूरत होती है; क्योंकि वह भूमि से काफी मात्रा में पोषक तत्त्व खींच लेती है। एक एकड़ में 90 टन की उपज अनुमानतः [redacted] कि० ग्रा० नाइट्रोजन, 32 कि० ग्रा० फॉस्फोरस और 100 कि० ग्रा० पोटैशियम भूमि से ले लेती है। फूल गोभी की अच्छी उपज के लिए पौधे लगाने से 21 दिन पूर्व प्रति हैक्टेयर 20 टन खेत की खाद डालनी चाहिए। इसके साथ ही 60 कि० ग्रा० नाइट्रोजन, 80 कि० ग्राम फास्फेट और 40 कि० ग्राम पोटैशियम का प्रयोग भी करना चाहिए। फूलगोभी की कतारों के दोनों ओर 5 से 7 सें० मी० गहरी खाद देनी चाहिए। पौध लगाने के 45 दिन बाद 60 कि० ग्राम नाइट्रोजन देनी चाहिए।

अंतः कृषि व सिंचाई—फूलगोभी की जड़ें ऊपरी मिट्टी के भीतर 45 से 60 सें० मी० तक गहरी होती हैं। इसलिए इसके खेत में गहरी जुताई कदापि नहीं करनी चाहिए। पौध लगाने के 30-35 दिन बाद पौधों पर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। फिर इनकी सिंचाई लगातार करनी चाहिए। फूलगोभी की जल्दी उगने वाली फसल की पौध लगाने के बाद सप्ताह में दो बार अवश्य सिंचाई करनी चाहिए।

विवर्णीकरण—बिलकुल सफ़ेद रंग का गोभी का फूल अच्छा समझा जाता है। जब फूल छोटा होता है तो वह पत्तों से ढका रहता है; लेकिन बाद में उसको धूप से सुरक्षा हेतु पत्तियों को फूल के सिरे तक लाकर डोरी अथवा रबड़ के छल्ले से बाँध देना चाहिए। इससे फसल काटते समय वह फूल सफ़ेद ही निकलता है।

फसल कटाई—फूलगोभी की कटाई उसके फूल का समुचित आकार लेने पर ही कर देनी चाहिए अन्यथा उसके रंग बिगड़ने का भय रहता है।

उन्नतिशील जातियाँ—फूलगोभी की विशेषतः दो जातियाँ होती हैं—

1. जल्दी पकने वाली जाति—पूसा कतकी, क्वारी आदि।
2. देर से पकने वाली जाति—चाइना पर्ल, जाइन्ट-स्नोबाल, अगहनी, स्नोबाल 16 आदि।

उपज—फूलगोभी की उपज प्रति हैक्टेयर 20 से 30 टन तक होती है। इसमें जल्दी उगने वाली जाति की उपज कम होती है और बीच मौसम की उपज सब से अधिक होती है।

संग्रह—फूलगोभी एक मास तक 0° सें० तापमान में और 85 से 90 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता में संग्रह करके रखना चाहिए। इसमें यह सुरक्षित रहती है।

बीजोत्पादन—फूलगोभी परागण की फसल है। बीजोत्पादन भूमि के समीप मधुमक्खियों के छत्ते होने से इसके बीजों में बढ़ोतरी होती है। वैसे तो बीजोत्पादन की सबसे अच्छी व सरल विधि फूलगोभी के पौधों को यथावत् रहने देना है। पर जब फूलगोभी भली-भाँति पक जाती है तब उसके पौधों को जड़ सहित उखाड़ लेना चाहिए। तत्पश्चात् पहले से तैयार भूमि में उन पौधों को अच्छी तरह रोप देना चाहिए। फिर उनकी आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। कुछ ही दिनों में फूल के ऊपर शाखाएँ निकल आती हैं। इनमें से अस्वस्थ शाखाओं को चुनकर तोड़ देना चाहिए। फिर स्वस्थ शाखाओं पर फल व कलियाँ निकल आती हैं, इनसे बीज बन जाता है। पकने पर उन्हें निकाल लिया जाता है। यह बीजों की उपज प्रति हैक्टेयर 500 से 650 कि० ग्राम होती है।

हानिकारक कीट व नियंत्रण—फूलगोभी के कई कीट शत्रु होते हैं, उनमें से विशेष का उल्लेख नियंत्रण के साथ यहाँ पर किया जा रहा है:—

(क) फूलगोभी के कीट—ये पत्तों को अपना आहार बना लेते हैं। इन पर नियंत्रण पाने के लिए फूलगोभी की फसल की कटाई से 15-20 दिन पहले डी० डी० टी० का छिड़काव कर देना चाहिए और फूल आने पर पाइरेथ्रम का प्रयोग करना चाहिए।

(ख) कैबेज मैगट—ये कीट गोभी के पौधों की नई जड़ों पर पहले आक्रमण करते हैं और बाद में अन्दर प्रवेश करके मुख्य जड़ तक पहुँच जाते हैं। इन पर

नियंत्रण पाने के लिए कैलोमेल बुरक देनी चाहिए।

रोग व नियंत्रण—फूलगोभी की फसल कई रोगों का शिकार हो जाती है। उनमें से मुख्य-मुख्य रोगों व उनके नियंत्रण का यहाँ पर उल्लेख किया जा रहा है :—

(क) आर्द्रगलन—यह रोग फूलगोभी की जल्दी उगने वाली जाति में नर्सरी की क्यारियों में हो जाता है। इस पर नियंत्रण के लिए बुवाई से 20-25 दिन पहले फफूंदनाशी से नर्सरी की क्यारियों को तर कर देना चाहिए।

(ख) कालासय—यह फूलगोभी की फसल के लिए बहुत ही भयंकर रोग है। इससे ग्रसित पौधों के पत्ते पीले पड़ जाते हैं और पौधों की शिराएँ काली हो जाती हैं। फूल नहीं खिल पाते हैं। इसका अधिकांशतः प्रकोप पर्वतीय क्षेत्रों में पाया जाता है। इस रोग को फैलाने वाला एक जीवाणु होता है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए लम्बा फसल चक्र का प्रयोग करना चाहिए।

(ग) काली मेखला—इस रोग से ग्रसित पौधों के तनों का आधार व जड़ें नष्ट हो जाती हैं और सम्पूर्ण पौधे मुरझा जाते हैं। इससे बीजों की क्यारियों में उगे हुए पौधे अधिकांशतः प्रभावित होते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए भी लम्बा फसल चक्र का ही प्रयोग करना चाहिए।

(घ) पीलिया—यह भी भयंकर रोग है। फूलगोभी की पौध लगाने के 15-25 दिन बाद इससे प्रभावित पौधे पीले पड़ने लगते हैं। उनकी बाढ़ रुक जाती है और पत्ते झड़ जाते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए बीजों की क्यारियों को पूर्णतया स्वच्छ रखना चाहिए और पीलिया प्रतिरोधक किस्मों को उगाकर उन पर नियंत्रण पा लेना चाहिए।

5. मूली (RADISH)

कुल—क्रूसीफेरी वंश—रैफेनस जाति—सैटिवस

हमारे देश की अति लोकप्रिय मूलवर्गीय फसल मूली है। इसकी उत्पत्ति भारत, मध्य व पश्चिमी चीन में मानी जाती है। इसके खाने योग्य गूदेदार भाग का विकास प्रारम्भिक जड़ और अधोबीज पत्राक्ष दोनों से होता है। इसके सिरों को पत्तोंवाली सब्जियों के समान पकाया जाता है। इनमें जीवन तत्व 'ए' और 'सी' की अधिकता है। इसका गूदेदार भाग सिरके में, कच्चा या सलाद के रूप में या पका कर खाया जाता है। इसकी जड़ों के पोषण तत्वों का मूल्य निम्नलिखित तालिका से आँका जा सकता है :—

मूली की पोषण मूल्य तालिका

मूली में आहारीय अंश			मात्रा 100 ग्राम
जीवन तत्त्व 'ए'	5 अ० ई०	निकोटाइनिक एसिड	0.5 मि० ग्रा०
जीवन तत्त्व 'सी'	15 मि० ग्रा०	थियामाइन	0.6 मि० ग्रा०
कैलशियम	50 मि० ग्रा०	रिबोफ्लेविन	0.02 मि० ग्रा०
लौह तत्त्व	0.4 मि० ग्रा०	अन्य कार्बोहाइड्रेट	3.4 ग्राम
फॉस्फोरस	22 मि० ग्रा०	खनिज तत्त्व	0.6 ग्राम
पोटैशियम	138 मि० ग्रा०	वसा	0.1 ग्राम
सोडियम	33 मि० ग्रा०	प्रोटीन	0.7 ग्राम
आक्जेलिक एसिड	9 मि० ग्रा०	रेशा	0.8 ग्राम
कैलोरी	17	नमी	94.4 ग्राम

भूमि व जलवायु—मूली की फसल बहुत जल्दी उगने वाली होती है। अतः इसके लिए अति उर्वर, हल्की और भुर-भुरी मिट्टी चाहिए। इसमें किंचित मात्र भी ढेले नहीं रहने चाहिए। यह गर्मी को सहन कर सकती है; किन्तु उसके सुन्दर आकार व स्वाद को अच्छा बनाने के लिए 10° से 15° सैं० तापमान वाला मौसम चाहिए।

बुवाई—मूली मेढ़ों पर उगायी जाती है। दो कतारों की दूरी 30 सैं० मी० और पौधों की आपसी दूरी 2.5 सैं० मी० होनी चाहिए। यह चोबकर बोयी जाती है। बोवाई का समय अक्टूबर-दिसम्बर होना चाहिए। यूरोपियन किस्मों की मूलियों की बुवाई 15 सितम्बर से आरम्भ कर देनी चाहिए।

बीज—एक हैक्टेयर भूमि के लिए 10 कि० ग्रा० बीज पर्याप्त हैं। यूरोपियन किस्मों के लिए 12 कि० ग्रा० बीजों की आवश्यकता होती है।

खाद व देखभाल तथा सिंचाई—मूली की एक एकड़ भूमि में 20 टन उपज होती है। यह उपज भूमि से 120 कि० ग्रा० नाइट्रोजन, 65 कि० ग्रा० फॉस्फोरस और 100 कि० ग्रा० पोटैशियम ले लेती है। एक हैक्टेयर भूमि में 150 क्विन्टल गोबर की खाद देनी चाहिए। मूली बुवाई से लेकर उखाड़ने तक जल की पर्याप्त मात्रा चाहती है। अतः सप्ताह में एक बार सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए। बड़े आकार की मूलियों पर एक बार मिट्टी अवश्य चढ़ानी चाहिए। इससे खर-पतवार भी दूर किए जा सकते हैं।

फसल कटाई—मूली की फसल कोमल स्थिति में ही काट ली जाती है।

इसकी जड़ें सिरों सहित उखाड़ी जाती हैं। इन्हें धोकर अच्छी तरह साफ़ कर लिया जाता है।

उपज—मूली की उपज प्रति हैक्टेयर 15000 से 30000 किलो ग्राम तक होती है और यूरोपियन किस्म की मूलियाँ अनुमानतः 8000 कि० ग्रा० ही हो पाती हैं।

बीजोत्पादन—यूरोपियन किस्मों की मूली के बीजों का उत्पादन केवल पर्वतीय क्षेत्रों में ही हो सकता है। शेष किस्म की मूली के बीज मैदानों में ही उत्पादित किए जा सकते हैं। इनके लिए अच्छी व स्वस्थ मूलियाँ चुनकर, जड़ों की ओर का एक तिहाई भाग काट लिया जाता है। फिर इन कटी हुई मूलियों को तैयार की हुई भूमि की मेड़ों में बो दिया जाता है, कुछ ही दिनों में इन पर पहले शाखाएँ आ जाती हैं और बाद में फूल निकल आते हैं। तत्पश्चात् इन पर बीज से भरी फलियाँ आ जाती हैं। इनके पकने पर मूली का बीज तैयार हो जाता है।

उन्नतिशील जातियाँ—मूली की निम्नलिखित जातियाँ प्रसिद्ध हैं—

व्हाइट आइसिकल—यह पतली और श्वेत रंग की नाजुक मूली होती है। यह बुवाई के एक मास बाद तैयार हो जाती है।

पूसा हिमानी—इस जाति की मूलियाँ लम्बी व सफ़ेद होती हैं। इसकी उपज पर्वतीय क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतु में और मैदानों में मध्य दिसम्बर से फरवरी अन्त तक की जा सकती है।

पूसा चेतकी—इस जाति की मूलियाँ बिलकुल सफ़ेद व हल्की नुकीली होती हैं। इनकी उपज मार्च से अगस्त तक की जाती है। यह 45 दिन में तैयार हो जाती हैं।

पूसा रेशमी—इस जाति की मूलियाँ 12 इंच लम्बी सफ़ेद और नीचे की ओर नुकीली और हरा छोर लिए हुए होती हैं। इसकी बुवाई सितम्बर मास में की जाती है।

फ्रेंच ब्रेक फास्ट—यह वर्तुलाकार होती है और बुवाई के बाद 26 दिन में तैयार हो जाती है।

जापानी सफ़ेद—इस जाति की मूलियाँ सफेद 18 इंच तक लम्बी होती हैं। ये चरपरी व कुंदेवाली होती हैं।

पूसा देसी—इस जाति की मूलियाँ भी जापानी मूली के समान लम्बी होती हैं। इनमें तने का अंतिम भाग हरा होता है। ये अधिक चरपरी व गावदुम जड़ों वाली होती हैं। इनकी बुवाई अगस्त के आरम्भ में करनी चाहिए।

चूहापुच्छ मूली—इस जाति की मूली लम्बी व पतली फलियों के लिए बोई जाती है और सब्ज़ी के रूप में प्रयोग में ली जाती है।

हानिकारक कीट व नियंत्रण—मूली की फसल को क्षति पहुँचाने वाले कीट एफिड, मैगट और पिस्सू हैं। इन पर नियंत्रण पाने के लिए निकोटाईन सलफेट का छिड़काव कर देना चाहिए और दस दिन के अन्दर फसल को काट लेना चाहिए। इसके अलावा मैलोथियन या कोलोडोल का प्रयोग भी किया जा सकता है।

6. गाजर (CARROT)

कुल—अंबेलीफेरी वंश—डौकस जाति—कैरोटा

गाजर भारत में सर्वत्र उगायी जाती है। इसकी उत्पत्ति मध्य एशिया, पंजाब और काश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रों में मानी जाती है। इसका सब्जी के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा कच्ची सलाद के रूप में, जूस, अचार और हलुवा के रूप में प्रयोग में ली जाती है। काली गाजर की काँजी तो क्षुधावर्धक मानी गई है। गाजर के हरे पत्ते प्रोटीन, खनिज तत्वों और जीवन तत्वों से युक्त होते हैं। नारंगी रंग की गाजरों में कैरोटीन, जीवन-तत्व 'ए,' थियामाइन और रिबोफ्लेविन विशेष मात्रा में पाया जाता है। यह केवल मानव के उपयोग की ही वस्तु नहीं है अपितु चारे के रूप में घोड़ों को खिलायी जाती है। नारंगी रंग की गाजर के पोषण तत्वों का मूल्य निम्नलिखित तालिका से आँका जा सकता है—

नारंगी गाजर की पोषण मूल्य तालिका

नारंगी गाजर में आहारीय अंश			मात्रा 100 ग्राम
जीवन तत्व 'ए'	3,150 अ० ई०	निकोटाइनिक एसिड	0.6 मि० ग्रा०
जीवन तत्व 'सी'	3 मि० ग्रा०	थियामाइन	0 04 मि० ग्रा०
कैलशियम	80 मि० ग्रा०	रिबोफ्लेविन	0.02 मि० ग्रा०
लोहतत्व	2.2 मि० ग्रा०	कैलोरी	47
फास्फोरस,	30 मि० ग्रा०	अन्य कार्बोहाइड्रेट	10.6 ग्राम
गंधक	27 मि० ग्रा०	खनिज तत्व	1.1 ग्राम
तांबा	0.13 मि० ग्रा०	वसा	0.2 ग्रा०
पोटैशियम	108 मि० ग्रा०	प्रोटीन	0-9 ग्राम
सोडियम	35.6 मि० ग्रा०	रेशा	1.2 ग्राम
मैगनेशियम	14 मि० ग्रा०	नमी	86.0 ग्राम
ऑक्जेलिक एसिड	5 मि० ग्रा०		

भूमि व जलवायु—गाजर की फसल के लिए गहरी, ढीली और दोमट मिट्टी ठीक रहती है। अधिक उपज हेतु पी० एच० 6.5 वाली भूमि का उपयोग करना चाहिए। यह ठंडे मौसम की फसल है। इसका अच्छा रंग लाने के लिए 15° सें० से 20 सें० का तापमान ठीक रहता है।

बुवाई—मैदानी क्षेत्रों में गाजर की बुवाई 15 अगस्त से दिसम्बर के आरम्भ तक छोबकर की जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में बुवाई का कार्य मार्च से 15 जुलाई तक चलता है। गाजर का बीज मेंडों पर अथवा चौरस भूमि में 1.5 सें० मी० गहराई पर बोये जाते हैं। ये एक सप्ताह में अंकुरित हो जाते हैं।

बीज—एक हैक्टेयर भूमि में 5-6 कि० ग्राम बीज पर्याप्त रहते हैं।

खाद व उर्वरक—गाजर की 275 क्विंटल उपज प्रति हैक्टेयर भूमि में से 125 कि० ग्राम पोटैशियम, 40 कि० ग्राम नाइट्रोजन और 22.5 कि० ग्राम फॉस्फोरस भूमि से प्राप्त कर लेती है। इसमें अच्छी गली हुई एफ० वाई० एम की 30 टन खाद प्रति हैक्टेयर के हिसाब से डालनी चाहिए। तत्पश्चात् भूमि में आवश्यकतानुसार नाइट्रोजन, पोटाश और फॉस्फेट की खाद का मिश्रण भी डालना चाहिए।



गाजर

बाद की देखभाल व सिंचाई—यदि गाजर की फसल की बुवाई गहरी की गई हो तो उसके पौधों को छितराना चाहिए ताकि हरेक पौधे की जड़ वृद्धि के लिए काफ़ी जगह मिल सके। इसके अंकुर धीरे-धीरे बढ़ते हैं जबकि खरपतवार यथाशीघ्र बढ़ते हैं। अतः आरम्भ में ही इन खरपतवारों को दूर कर देना चाहिए। समय-समय पर गुड़ाई करते रहना चाहिए ताकि वायु संचार भली-भांति ढंग से हो सके। फसल बुवाई के बाद पहली बार सिंचाई तत्काल कर देनी चाहिए। दूसरी बार सिंचाई सप्ताह के बाद करनी चाहिए। फिर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए। अधिक सिंचाई भी नहीं करनी चाहिए इससे उपज कम होती है।

फसल कटाई—गाजरों को पूर्णतया विकसित होने से पहले ही तोड़ लिया जाता है। इन्हें नमदार भूमि में से खुरपे से उखाड़ा जाता है। फिर जड़ों को काट छांट कर और जल से स्वच्छ करके प्रयोग के लिए तैयार किया जाता है।

उपज—एशियाई जाति की गाजरों की उपज प्रति हैक्टेयर 20,000 से

30,000 कि० ग्राम होती है।

बीजोत्पादन—एशियाई जाति की गाजरों के बीज भारत के मैदानों में उगाए जा सकते हैं। इसके लिए स्वस्थ गाजरों को चुनकर खोद लेना चाहिए। फिर गाजर के पौधे को जड़ से 3 सें०मी० छोड़कर काट देना चाहिए। तत्पश्चात् इन्हें तैयार भूमि में बो देना चाहिए। कुछ ही दिनों में पौधों से शाखाएँ निकल आएगी और छतरी के समान उन पर फूल छाने लग जाएगे। ये ही फूल कुछ ही दिनों में बीजों का रूप ले लेते हैं। इस समय सिंचाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार प्रति हैक्टेयर में 500 से 600 कि० ग्रा० बीज तैयार होता है।

उन्नतिशील जातियाँ—गाजर की निम्नलिखित जातियाँ उल्लेखनीय हैं—

चैटेनी—इस जाति की गाजर का रंग गहरा लाल नारंगी होता है। इसकी जड़ें, धीरे-धीरे शुंडाकार होती हैं और इनका अंत एक कुंद सिरे में होता है।

हॉफ लौंग नैंटेज—इस जाति की गाजरें ठूंठदार, सुगठित नारंगी रंग की जड़ों एवं बेलनाकार और मिठास लिए होती हैं। इनके अलावा इंपरेटर, स्टीक्लाइस और ईनवर्स जाति की गाजरें भी उत्पादित की जाती हैं।

हानिकारक कीट व रोग तथा नियंत्रण—गाजर के कीट शत्रुओं व रोगों में वीविल, सिक्स स्पाटेड लीप हापर और कैरेट रस्टफ्लाई पत्तादाग़ व चित्ती की गणना की जाती है। कैरेट ईलोज एक विषाणु रोग है जिसका संचार सिक्स स्पाटेड लीप हापर के द्वारा होता है। इन पर नियंत्रण पाने के लिए लम्बा फसल चक्र का उपयोग करना चाहिए। पत्तादाग़ व चित्ती के उपचार हेतु कार्बामेट का छिड़काव करना ही पर्याप्त रहता है।

7. प्याज (ONION)

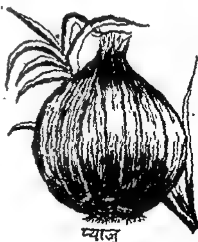
कुल—ऐमेरिलिडेसी वंश—ऐलियम जाति—सेपा

प्याज भारत की उन बल्बीय फसलों में से एक है जिसका निर्यात किया जाता है। इसकी लोकप्रियता विशिष्ट स्वाद के कारण है। यहाँ पर अनुमानतः 90,557 हैक्टेयर भूमि में प्याज की खेती की जाती है। महाराष्ट्र, आंध्र, पंजाब, मद्रास और बिहार राज्यों मे इसकी उपज सब से अधिक की जाती है। इसका उपयोग सब्जियों, माँसादि मे, सलाद के रूप में, भूनकर, पकोड़ों के रूप मे और अचार के लिए किया जाता है। एक वाष्पशील तेल इसका तीखापन है। छोटे आकार की प्याज में अधिक पोषक तत्त्व विद्यमान रहते हैं। हैजे व लू से बचने की सर्वोत्तम औषध है। इसके पोषण तत्त्वों का मूल्य निम्नलिखित तालिका से आँका जा सकता है—

छोटी प्याज की पोषण मूल्य तालिका

छोटी प्याज में आहारीय अंश			मात्रा 100 ग्राम
जीवन तत्व 'सी'	11 मि० ग्रा०	रिबोफ्लेविन	0.01 मि० ग्रा०
कैलशियम	180 मि० ग्रा०	अन्य कार्बोहाइड्रेट	11·0 ग्राम
लौह तत्त्व	0.7 मि० ग्रा०	खनिज तत्त्व	0.4 ग्राम
फॉस्फोरस	50 मि० ग्रा०	प्रोटीन	1.2 ग्राम
थियामाइन	0.08 मि० ग्रा०	रेशा	0.6 ग्राम
निकोटाइनिक एसिड	0.04 मि० ग्रा०	नमी	86.8 ग्राम
कैलोरी	49		

भूमि एवं जलवायु—वैसे तो प्याज की खेती सभी प्रकार की भूमि पर हो सकती है; किन्तु अच्छी उपज के लिए इसकी फसल मटियार दोमट भूमि में की जानी चाहिए। अधिक अम्लता वाली भूमि इसके लिए बिलकुल भी उपयोगी नहीं है। ठंडे मौसम की फसल होने के कारण इस पर दिन की लम्बाई का विशेष प्रभाव पड़ता है। इसके बीजवंत के लिए दिन की लम्बाई की अपेक्षा तापमान अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसका विकास उन सभी प्याज की किस्मों से होता है जिनकी पौध उत्तर भारत में नवम्बर मास से पहले लगायी जाती है। जिन राज्यों में जलवायु गरम है, वहाँ पर प्याज की खरीफ की फसल भी उगायी जाती है।


प्याज़

बुवाई—प्याज के बीज साधारणतः नर्सरी में उगाये जाते हैं और बीजांकुरों की स्वस्थ पौध को तैयार भूमि में लगाया जाता है। इस प्रक्रिया में व्यय ज्यादा होता है। अतः इसकी सीधी तैयार भूमि में बुवाई कर दी जाती है। नर्सरी की एक एकड़ क्यारियों में इतनी पौध तैयार हो जाती है जो आसानी से २० एकड़ भूमि में लगायी जा सकती है। इसकी रबी की फसल की बुवाई 15 अक्टूबर

से दिसम्बर तक कर दी जाती है। दिल्ली में इसकी बुवाई का समय एक जनवरी माना गया है। सीधी तैयार भूमि में फसल बोने के लिए प्रति हैक्टेयर भूमि में 25 कि० ग्रा० बीज पर्याप्त हैं। इनकी दो कतारों में अंतर 184 सें० मी० और पौधों में 122 सें० मी० रहना चाहिए। इसकी बुवाई रोप कर की जाती है।

बीज—एक हैक्टेयर में 8-10 किलो प्याज के बीज पर्याप्त हैं।

खाद व उर्वरक—प्याज प्रति हैक्टेयर 30 टन की उपज में 15 कि० ग्राम नाइट्रोजन, 42 कि० ग्राम फॉस्फेट और 130 कि० ग्राम पोटैशियम भूमि से ले लेती है। अतः एक मास बाद 8 कि० ग्राम नाइट्रोजन बिछा देनी चाहिए। शेष उर्वरकों को पौध लगाते समय देना चाहिए। प्याज की फसल के लिए भूमि को तैयार करते समय 50 गाड़ी खेत की खाद प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मिट्टी में मिला देनी ठीक रहती है।

प्रतिरोपण—प्याज के पौधे का प्रतिरोपण दिसम्बर के अंतः में अथवा जनवरी के आरम्भ में करना चाहिए। कंद की आपसी दूरी 10.15 सें० मी० रखनी चाहिए कृषि हेतु 3 से 4 मीटर की दूरी रहनी चाहिए।

खरपतवार की सफ़ाई व अंतःकृषि—प्याज कम गहरी जड़ों वाली फसल है। इसकी उथली जुताई करनी चाहिए। खरपतवारों की सफ़ाई हेतु रासायनिकों का प्रयोग करना चाहिए। क्लोरो-आई० पी० सी० ऐसा ही खरपतवारनाशी रासायनिक है। इसे पत्तियों से बचाकर जड़ों मे देना चाहिए। 6 इंच से कम ऊंची खरपतवार को पोटैशियम साइनेड के मिश्रण (60 लीटर जल में 650 ग्राम) से खत्म किया जा सकता है; पर इसका उपयोग तभी करना चाहिए जबकि खरपतवार सूखी हो और तापमान 25°सें० से ज्यादा हो।

सिंचाई—प्याज की अच्छी उपज के लिए भूमि में अनुकूलतम आर्द्रता बनाए रखना बहुत ही आवश्यक है। प्याज के पौधों के सिरों के पकना व झड़ना आरम्भ होते ही सिंचाई को तत्काल रोक देना चाहिए।

फसल कटाई—हरी गुच्छेदार प्याज सर्वोत्तम तब होती है जबकि उसका व्यास एक पेंसिल के समान ही रहे और उसमें छोटा बल्ब न बनने पाया हो। अच्छी प्रकार से पके हुए बल्ब को फौरन ही काट लेना चाहिए। इसको काटने के लिए खुरपी का प्रयोग सर्वोत्तम रहता है।

उपज—प्याज की फसल प्रति हैक्टेयर 25 से 30 टन होती है। खरीफ की फसल इससे कम ही रहती है।

संग्रह विधि—जब प्याज अच्छी तरह पक जाती है तब उसे एक मास तक अच्छी प्रकार से सूखने के लिए रख दिया जाता है। फिर उसकी धूल मिट्टी अच्छी प्रकार से साफ़ करके ऐसे गोदामों में रखना चाहिए जिसका तापमान 0° सें० हो और जो वायु संचार में एक समान, निम्न आर्द्रतायुक्त, पूर्ण परिपक्वता

और रोग रहित हो। भूरी फफूंदव कल्ले फूट आने से प्याज खराब हो जाती है। 60-75 प्रतिशत की निम्न आर्द्रता से प्याज के पौधों की जड़वृद्धि रुक जाती है और विगलन की सम्भावना भी नहीं के बराबर है, पर सिकुड़न अवश्य ज्यादा हो जाती है। संग्रह की स्थिति मे कल्ले फूटना रोकने के लिए प्याज की फसल काटने से पहले, उसकी पत्तियों पर मैलियक हाइड्रेजाइड का छिड़काव कर देना चाहिए।

बीजोत्पादन—प्याज भी परपरागण की ही फसल है। इसके बीज के लिए स्वस्थ एवं मोटी गांठों का चयन कर लेना चाहिए, फिर इनका तीसरा हिस्सा काट लेना चाहिए और शेष भाग को तैयार भूमि में अक्टूबर मास में लगा देना चाहिए। इस बुवाई का बीज मार्च-अप्रैल मास में तैयार हो जाता है।

उन्नतिशील जातियाँ—साधारण प्याज, मल्टी प्लायर ओनियन, ऐवरेडी ओनियन, शैलाट, टाप, ट्री, पटना रेड, पूना रेड, नासिक रेड, बेलारी रेड, अर्लीग्रेनो और पूसा रेड आदि प्याज की उन्नतिशील जातियाँ है। इनमें से साधारण प्याज अधिकांशतः उगाई जाती है। अर्लीग्रेनो जाति की प्याज संयुक्त राज्य अमरीका की देन है। इसमें गोल व पीले बल्ब होते हैं। यह अधिक तीखी न होने के कारण सलाद के लिए बहुत अच्छी रहती है। पूसारेड जाति की प्याज मध्यम आकार की लाल रंग की होती है और ज्यादा दिन तक रखी जा सकती है।

हानिकारक कीट व नियंत्रण—प्याज के निम्नलिखित मुख्य कीट हैं। उन पर नियंत्रण का उल्लेख यहाँ पर किया जा रहा है—

(क) **थ्रिप**—ये प्याज के कीट छोटे व पीले होते हैं। इनके आक्रमण से प्याज की पत्तियों पर सफेद धब्बे पड़ने लगते हैं और उनके सिरे भूरे रंग के हो जाते हैं तथा बाद में मर जाते हैं। इनपर नियंत्रण रखने के लिए डी० डी०टी० व एंड्रिन के मिश्रण का छिड़काव करना चाहिए।

(ख) **मैगट**—यह कीट छोटी मक्खी का लार्वा होता है। यह मक्खी प्याज के पौधों की जड़ों के पास अण्डे देती है और एक सप्ताह बाद उनमें से लार्वा निकल आते हैं। यह कीट भी प्याज की फसल को काफी क्षति पहुँचाता है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए ऐल्ड्रीन अथवा डीलड्रीन का प्रयोग करना चाहिए।

रोग व नियंत्रण—प्याज की फसल कई रोगों की शिकार हो जाती है। उनमें से मुख्य-मुख्य रोगों व उनके नियंत्रण का यहाँ पर उल्लेख किया जा रहा है—

(क) **नीलारुण धबोरा**—यह रोग एक प्रकार की फफूंद से फैलता है। यह प्याज की पत्तियों, बीजवृंतों और बल्बों पर आक्रमण करता है। इससे छोटे सफ़ेद राग नीलारुण गड्ढे से होते हैं और जल्दी ही बड़े हो जाते हैं। इससे ग्रसित पत्तियाँ

या बीजवृंत्त गिरकर खत्म हो जाते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए बोर्डो मिक्सचर का छिड़काव करना चाहिए।

(ख) जीवाणु व फ्यूजेरियन विगलन—यह रोग प्याज को संग्रहित करने की स्थिति में प्रभावित करने वाला है। जीवाणु विगलन से प्याज मे से दुर्गन्ध आने लगती है। फ्यूजेरियन विगलन एक अर्धजलीय विगलन है जो प्याज के छिलके के मूलांश से ऊपर की तरफ बढ़ती है।

8. मटर (PEA)

कुल—लेग्युमिनोसी जाति—पाइजम सटाइवम

मटर की फसल प्रस्तर युग की देन है। दाल व सब्जी के रूप में इसका विशेष उपयोग होता है। इसका भूसा मवेशियों को शक्ति प्रदान करता है। इसमें प्रोटीन की अधिकता होती है। इसके पोषण तत्त्वों का मूल्य निम्नलिखित तालिका से आंका जा सकता है—

मटर की पोषण मूल्य तालिका

मटर में आहारीय अंश			मात्रा 100 ग्राम
जीवन तत्त्व 'ए'	139 अ० ई०	निकोटाइनिक एसिड	0.8 ग्राम
जीवन तत्त्व 'सी'	9 ग्राम	थियामाइन	0.25 ग्राम
कैलशियम	20 ग्राम	रिबोफ्लेविन	0.01 मि० ग्राम
लौह तत्त्व	1.5 ग्राम	कैलोरी	93
फॉस्फोरस	139 मि० ग्राम	अन्य कार्बोहाइड्रेट	15.8 ग्राम
गंधक	95 ग्राम	खनिज तत्त्व	0.8 ग्राम
तांबा	0.23 मि० ग्राम	वसा	0.1 ग्राम
पोटैशियम	79 ग्राम	प्रोटीन	7.2 ग्राम
सोडियम	7.8 मि० ग्राम	रेशा	4 ग्राम
मैगनेसियम	34 मि० ग्राम	नमी	72 ग्राम
ऑक्जेलिक एसिड	14 ग्राम		

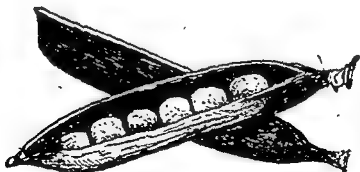
भूमि व जलवायु—मटर की फसल के लिए भली भांति जल निष्कासित, ढीली, भुरभुरी दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है। यह फसल के लिए भलीभांति तैयार की जानी चाहिए। इसकी सतह मुलायम रहनी चाहिए ताकि बुवाई के

समय किसी प्रकार की कोई कठिनाई न रहने पाए। मटर के सभी बीज एक समान गहराई में ही बोये जाने चाहिए। इसके लिए शीत मौसम अच्छा रहता है। फिर भी यह पाले को सहन नहीं कर सकती है। शुष्क व गर्म मौसम मटर के लिए बाधक रहता है और फलियाँ भी घटिया किस्म की आती हैं। इसका बीजांकुरण निम्नतम 5° सें० में हो सकता है जबकि इसके अंकुरण के लिए अनुकूलतम तापमान 22° सें० के लगभग होना चाहिए। उच्च तापमान में मटर का अंकुरण तो बहुत जल्दी हो जाता है।

बुवाई—मटर की फसल उत्तर भारत के मैदानों में अक्टूबर से 15 नवम्बर तक और पर्वतीय क्षेत्रों में 15 मार्च से 31 मई तक बोयी जाती है।

बीज—एक हैक्टेयर भूमि में 100 से 120 कि० ग्राम बीज पर्याप्त रहते हैं।

खाद एवं उर्वरक—मटर की फसल की बुवाई से पूर्व भूमि तैयार करते समय अनुमानतः 20 टन प्रति हैक्टेयर के अनुसार अच्छी प्रकार से तैयार गोबर की खाद भूमि में मिला देनी चाहिए। हरी मटर की 4500 कि० ग्रा० प्रति हैक्टेयर की उपज भूमि से अनुमानतः 55 कि० ग्रा० नत्रजन, 40 कि० ग्रा० पोटैशियम और 20 कि० ग्रा० फॉस्फोरस ले लेती है। अतः प्रति हैक्टेयर की उपज में 25 कि० ग्रा० नत्रजन की खाद देनी चाहिए ताकि फलियाँ शीघ्र बढ़ सकें। इसके अलावा प्रति हैक्टेयर भूमि में 70 कि० ग्रा० फॉस्फेट और 50 कि० ग्रा० पोटाश देने से मटर की अधिक उपज होती है।



मटर

सिंचाई—मटर की फसल में उसके समुचित अंकुरण के लिए बुवाई से पूर्व खेत में सिंचाई की जाती है। अगर बुवाई के समय भूमि में नमी की कमी दिखाई दे तो हल्की सिंचाई करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण—हरी मटर की अधिकांश किस्में कतारों में बोई जाती हैं। अतः यांत्रिक साधनों से खरपतवारों पर नियंत्रण पाना असम्भव-सा हो जाता

है। ऐसी स्थिति में मौसमी खरपतवारों से मुक्ति पाने के लिए 100 गेलन जल में 2 अथवा 3 क्वार्ट प्रति एकड़ की दर से डीनाइट्रो का छिड़काव 15° से 25° सैं० तापमान में कर देना चाहिए। इस घोल का छिड़काव इस तापमान के अन्तर्गत अधिक प्रभावशाली होता है।

फसल की कटाई—मटर की फलियों में जब दाना पड़ जाए तो उसे हाथ से चुन लेना चाहिए। इन्हें कदापि झटका देकर नहीं तोड़ना चाहिए; क्योंकि इससे बेल को क्षति पहुँचने का भय रहता है। टेंडेरोमीटर से इसके गुणावगुणों को आँका जाता है। इसका चुनने का कार्य प्रातः या संध्या को करना चाहिए ताकि दिन की गर्मी में इसके गुणों में कमी न आ जाए।

उपज—शीघ्र बोयी जाने वाली मटर की फसलों में अनुमानतः 3000 से 4000 कि० ग्राम उपज प्रति हैक्टेयर होती है। देर से बोयी जाने वाली फसलों की उपज 6000 से 7000 कि० ग्राम प्रति हैक्टेयर होती है।

संग्रह—बिना छिली मटरों को 0° सैं० तापमान और 90-95 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता में 15 दिन तक रखा जा सकता है। इसकी फलियाँ 10° सैं० तापमान में भी 20-21 दिन तक रखी जा सकती हैं; क्योंकि इतने तापमान में हिमीकरण की स्थिति ले लेती हैं।

बीजोत्पादन—मटर मुख्यतः स्वपरागण की फसल है। अतः विभिन्न प्रकार के पौधों के मध्य में कुछ दूरी अवश्य रखनी चाहिए ताकि मटर की बुवाई व चुनाई के समय इन प्रकारों के मध्य मिश्रण न हो सके। अच्छे व स्वस्थ बीजों की उपज के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि बेमेल के पौधों को फसल के बीच से निकाल दिया जाए। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो बीज में मिश्रण हो जाता है। बीज की उपज प्रति हैक्टेयर 1500 से 2000 कि० ग्राम तक होती है।

उन्नतिशील जातियाँ—भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के द्वारा निम्नलिखित मटर की कुछ उन्नतिशील जातियाँ बतायी गई हैं :—

(क) अर्ली असोजी—इसकी उपज चिकने बीजों से की जाती है। इसकी फलियाँ दो मास में तैयार हो जाती हैं।

(ख) मीटियर—इसकी उपज भी चिकने बीजों से ही की जाती है।

(ग) अर्ली बैजर, लिटल मार्वेल और आर्केल—मटर की ये तीनों किस्में झुर्रीदार बीजों से तैयार होती हैं। खाने में ये अधिक मीठी होती हैं। इनकी फलियाँ भी दो मास में तैयार हो जाती हैं।

(घ) सिलविया—मटर की यह एक ऊँची उगने वाली किस्म है। इसकी फलियाँ कोमल झिल्ली रहित व मुड़ी हुई होती हैं।

पर्वतीय क्षेत्र के लिए मटर की कुछ किस्में :—

(क) अर्ली जायट—यह झुर्रीदार बीज से तैयार होती है। इसके पौधे ऊँचे

व फलियाँ गहरे हरे रंग की होती हैं।

(ख) एल्डरमेन—यह अगती किस्म की मटर की फसल है। इसके पौधे भी ऊँचे होते हैं। इनमें से 9 सें० मी० लम्बी सीधी फलियाँ लगती हैं।

मटर के हानिकारक कीट व उनका नियंत्रण—मटर की फसल के निम्नलिखित कीट शत्रु हैं :—

(क) एफिड—ये कीट लम्बी टांगो व कोमल देह वाले हरे रंग के होते हैं। ये मटर की फसल पर जनवरी मास के बाद से आक्रमण आरम्भ कर देते हैं। ये मटर के पौधे के नए उगे हुए भागों का रस चूस लेते हैं। इससे उपज को काफ़ी क्षति पहुँचती है। इन पर नियंत्रण पाने के लिए मैलेथियन, रोटेनन या रोटेनन निकोटिन का छिड़काव करना चाहिए।

(ख) वीविल—ये कीट मटर की नई फलियों पर अण्डे देते हैं और उनमें से लार्वा निकल कर बीजों में प्रवेश कर विकसित होता है। इन पर नियंत्रण पाने के लिए पुष्पन के समय 10 प्रतिशत डी० डी० टी० के मिश्रण का छिड़काव कर देना चाहिए।

मटर के रोग व नियंत्रण—मटर की फसल को कई रोग प्रभावित करते हैं, जिनमें से मुख्य रोगों का यहाँ पर उल्लेख किया जा रहा है :—

(क) मुरझान—यह बीज से आने वाला रोग है। इसका संक्रमण जड़ों से होता है। रोग का प्रकोप होने पर फलियाँ भी नहीं बन पाती हैं। इसकी भयंकरता से संपूर्ण पौधा मुरझा जाता है और उसका धड़ सिकुड़ जाता है, इस पर नियंत्रण पाने के लिए अलास्का रोग प्रतिरोधक का प्रयोग करना चाहिए।

(ख) विषाणु चित्ती—इस रोग से ग्रसित मटर के पौधे के तने, पत्तियों व अनुपत्रों पर जलरिक्त धब्बे प्रगट हो जाते हैं। इनसे सफेद व बादामी रंग का चिकना रस निकलने लगता है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए रोग मुक्त बीजों का उपयोग करना चाहिए।

(ग) चूर्णी फफूंद—यह बीज से उत्पन्न होने वाला रोग है। इसके प्रकोप से मटर की पत्तियों पर धूल-सी दिखाई देने लगती है और अंत में वे पीली पड़ जाती हैं। तनों पर छोटे भूरे धब्बे और धारियाँ दिखाई देने लग जाती हैं। पौधे छोटे व विकृत हो जाते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए गंधक का छिड़काव करना चाहिए।

9. भिण्डी (LADY FINGER)

कुल—मालवेसी वंश—एबेलमोशस जाति—एेमस्युलेंटस

भिण्डी गर्मी के मौसम की सब्जी है। इसकी उत्पत्ति अफ्रीका से मानी जाती है। यह सम्पूर्ण भारत में केवल सब्जी के लिए ही नहीं उगायी जाती है अपितु

इसका उपयोग कागज उद्योग में भी किया जाता है। इसके पौधे का तना रेशे निकालने के लिए उपयोग में लिया जाता है। मसालेदार भिण्डी एक लोकप्रिय आहार है। इसका औषधीय मूल्य भी है। इसके पोषण तत्वों का मूल्य निम्नलिखित तालिका से आँका जा सकता है :—

भिण्डी को पोषण मूल्य तालिका

भिण्डी में आहारीय अंश			मात्रा 100 ग्राम	
जीवन तत्व 'ए'	88 अ० ई०	निकोटाइनिक एसिड	0.6 मि० ग्रा०	
जीवन तत्व 'सी'	13 मि० ग्रा०	थियामाइन	0.07 मि० ग्रा०	
कैलशियम	66 मि० ग्रा०	रिबोफ्लेविन	0.01 मि० ग्रा०	
लौह तत्व	1.5 मि० ग्रा०	कैलोरी	35	
फॉस्फोरस	56 मि० ग्रा०	अन्य कार्बोहाइड्रेट	6.4	ग्राम
गंधक	30 मि० ग्रा०	खनिज तत्व	0.7	ग्राम
ताँबा	0.19 मि० ग्रा०	वसा	0.2	ग्राम
पोटैशियम	10.3 मि० ग्रा०	प्रोटीन	1.9	ग्राम
सोडियम	6.9 मि० ग्रा०	रेशा	1.2	ग्राम
मैगनेशियम	43 मि० ग्रा०	नमी	89.6	ग्राम
ऑक्जेलिक एसिड	8 मि० ग्रा०			

भूमि व जलवायु—भिण्डी की फसल के लिए भुरभुरी व भली-भाँति खाद युक्त भूमि सबसे उत्तम है। अनुकूलतम पी० एच० 6 से 6.8 के मध्य होता है। इसके लिए लम्बे कोष्ण मौसम की आवश्यकता होती है। इसके बीजों में 20° सें० से कम तापमान में अंकुरण नहीं हो पाता है। यह पाले से प्रभावित रहती है और ज्यादा सर्दी पड़ने पर यह पनप नहीं पाती है।

बुवाई का समय—उत्तर भारत में भिण्डी की फसल दो बार बोयी जाती है। गर्मी की फसल के लिए इसकी बुवाई जीवकर वसन्त ऋतु के आरम्भ में की जाती है अर्थात् आसाम, बंगाल, उड़ीसा और बिहार प्रांतों में बुवाई का कार्य जनवरी अथवा फरवरी के आरम्भ में किया जाता है। दिल्ली, पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बुवाई का कार्य फरवरी से मार्च तक चलता है। बरसात की फसल की बुवाई का कार्य जून-जुलाई में किया जाता है। पर्वतीय क्षेत्रों में इसकी फसल की बुवाई अप्रैल-मई में की जाती है। गर्मी की फसल की बुवाई के लिए भिण्डी के स्वस्थ बीजों को एक दिन के लिए पानी में तर रखा जाता है। इसकी कतारों में पारस्परिक अंतर 46 सें० मी० और पौधों में 15 सें० मी० रखा जाता है।

बीज—भिण्डी की गर्मी की फसल के लिए प्रति हैक्टेयर 18 से 20 कि. ग्रा. बीज पर्याप्त हैं और बरसात की फसल के लिए इनकी मात्रा 10 से 12 कि० ग्रा० रह जाती है।

खाद व उर्वरक—भिण्डी की फसल की बुवाई से पन्द्रह दिन पूर्व 12000 कि० ग्रा० खेत की खाद प्रति हैक्टेयर भूमि की मिट्टी में अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। इसके बाद कतारों में 15 कि० ग्रा० सुपर फॉस्फेट, 50 कि० ग्रा० पोटास म्युरिएट का मिश्रण डाल देना चाहिए। इसके तीस दिन बाद 300 कि० ग्रा० अमोनियम सल्फेट ऊपर से बिछा देनी चाहिए। इससे भिण्डी की फसल बहुत अच्छी तैयार होगी।

सिंचाई व बाद की देखभाल—भूमि में नमी लाने के लिए बुवाई से पूर्व एक बार सिंचाई कर देनी चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में मास मे छह बार और पावस ऋतु में जब कभी आवश्यकता हो सिंचाई कर देनी चाहिए। पावस ऋतु में कतारों में मिट्टी चढ़ाना भी आवश्यक हो जाता है। खरपतवारों को दूर करने में हमेशा नियमितता बरतनी चाहिए।

फसल कटाई—फसल तैयार होने पर भिण्डी के पौधों में से हर दूसरे व तीसरे दिन भिण्डियाँ उतार लेनी चाहिए। फूलों के खिलने के सप्ताह के बाद भिण्डियो के चुनने का उपयुक्त समय माना जाता है।

उपज—ग्रीष्म ऋतु की फसल में भिण्डी की उपज प्रति हैक्टेयर 50 क्विंटल और पावस ऋतु की फसल मे इससे दुगुनी हो जाती है। इस प्रकार औसत उपज प्रति हैक्टेयर 70 क्विंटल रह जाती है।

उन्नतिशील जातियाँ—भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा बतायी गई भिण्डी की जातियाँ इस प्रकार हैं—पूसा मखमली, पूसा सावनी, और पर्किंस लौंग ग्रीन आदि।

भिण्डी के हानिकारक कीट व नियंत्रण—भिण्डी के प्रमुख कीट शत्रुओं में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :—

(क) **जैसिड**—ये एक किस्म के टिड्डे होते हैं जो भिण्डियों का रस चूस लेते हैं। इससे पत्तियाँ मुड़ जाती हैं और किनारे झुलस जाते हैं। इन पर नियंत्रण पाने के लिए 0.02 प्रतिशत ऐंड्राइन का छिड़काव कुछ अंतराल दे देकर दो-तीन बार करना चाहिए। इसके अलावा कीटग्रस्त प्ररोहों व भिण्डियों को कीट सहित जला देना या गाड़ देना चाहिए। इसके बाद कीटनाशी का छिड़काव कर कर देना चाहिए।

(ख) **कपास की सूंडी**—भिण्डी के ये शत्रु कीट फसल के बढ़ने पर आक्रमण करते हैं और बीजों की फसल के लिए एक उलझन पैदा कर देते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए किसी भी कीटनाशी का उपयोग किया जा सकता है।

भिण्डी के रोग व नियंत्रण—इसके निम्नलिखित दो मुख्य रोग हैं। उनके नियंत्रण के उपाय भी यहाँ पर दिए जा रहे हैं :—

(क) चूर्णी फफूंद—भिण्डियों की पत्तियों की निचली सतह पर इसके सफ़ेद धब्बे दिखायी देने लगते हैं। रोगग्रस्त पत्तियाँ विलापी पर आकर झड़ने लगती हैं। इस पर नियंत्रण के लिए गंधक का चूर्ण छिड़क देना चाहिए।

(ख) पीत शिरा मोजिक—भिण्डियों का यह एक शिरा रोग है। इसके प्रकोप से पत्तियाँ व भिण्डियाँ पीली पड़ जाती हैं। इसका वाहक व्हाइट फ्लायी कीट होता है। भिण्डी की पूसा सावनी जाति ही इस रोग को सहन कर पाती है। इसका संक्रमण ग्रीष्म की अपेक्षा पावस ऋतु में अधिक होता है।

10. लौकी (घिया) (GOURD)

कुल—क्युकरबिटेसी वंश—लेजीनेरिया जाति—साइसेरेरिया

घिया भारत में उगायी जाने वाली गर्मी के मौसम की फसल है। इसकी उत्पत्ति अफ्रीका में हुई थी और बिना किसी सहायता के यह समुद्र द्वारा अमेरिका तक पहुँच गई। इसके भीतर के बीज एक दीर्घ अवधि तक अंकुरक्षम बने रह सकते हैं। ये लम्बे, पतले, मोटे और गोलाकार होते हैं। प्राचीन युग में विदेशों में इसमें मदिरा भर कर रखी जाती थी। अतः अंग्रेजी में इसे बाटल गोर्ड कहते हैं। इसका प्रयोग सब्जी व मिष्टान्न के लिए किया जाता है। इसका गूदा, कच्चा तना व पत्तियाँ दवाओं में प्रयोग की जाती हैं। इसका पोषण मूल्य निम्नलिखित तालिका से आंका जा सकता है :—

लौकी (घिया) की पोषण मूल्य तालिका

लौकी (घिया) में आहारीय अंश			मात्रा 100 ग्राम
जीवन तत्त्व 'सी'	6 मि० ग्रा०	थियामाइन	0.03 मि० ग्रा०
कैलशियम	20 मि० ग्रा०	रिबोफ्लेविन	00.1 मि० ग्रा०
लौह तत्त्व	0.7 मि० ग्रा०	कैलोरी	12
फॉस्फोरस	10 मि० ग्रा०	अन्य कार्बोहाइड्रेट	0.5 ग्राम
गंधक	10 मि० ग्रा०	खनिज तत्त्व	0 5 ग्राम
ताँबा	0.3 मि० ग्रा०	वसा	0.1 ग्राम
पोटैशियम	87 मि० ग्रा०	प्रोटीन	0.2 ग्राम
सोडियम	1.8 मि० ग्रा०	रेशा	0.6 ग्राम
मैगनेशियम	5 मि० ग्रा०	नमी	96·1 ग्राम
निकोटाइनिक एसिड 0.2 मि० ग्रा०			

भूमि व जलवायु—लौकी (घिया) की फसल के लिए दोमट व बलुई भूमि अच्छी रहती है। यह गर्म व तर जलवायु में अच्छी फसल देती है।

बुवाई का समय—लौकी (घिया) की बुवाई वर्ष में दो बार की जाती है। गर्मी की फसल की बुवाई जनवरी-फरवरी मास में और पास ऋतु की बुवाई जून-जुलाई में की जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों में बुवाई का कार्य अप्रैल मास में किया जाता है। इसे चोबकर बोया जाता है।

बीज—लौकी का बीज 4 से 5 कि० ग्रा० प्रति हैक्टेयर पर्याप्त रहता है।

खाद व उर्वरक—लौकी की फसल के लिए खेत में तैयारी के समय प्रति हैक्टेयर के अनुसार 150-200 क्विटल अच्छी प्रकार से सड़ी गली गोबर डाल देनी चाहिए। कुछ दिनों के बाद खड़ी फसल में प्रति हैक्टेयर 2-3 क्विटल अमोनियम सल्फेट को दो बार में डालना चाहिए। यह कार्य बेल फैलने व फल लगने के समय ही होना चाहिए।

सिंचाई—लौकी की गर्मी की फसल मे ही केवल दस बार सिंचाई करने की आवश्यकता रहती है।

निराई-गुड़ाई—भूमि में नमी बनाए रखने तथा खरपतवारों को नष्ट करने के लिए 2-3 बार निराई-गुड़ाई करनी चाहिए।

उपज—इसकी औसतन उपज 200-330 क्विटल प्रति हैक्टेयर होती है।

फसल-कटाई—कोमल फलों की कटाई चाकू से काट कर करनी चाहिए।

उन्नतिशील जातियाँ—भारतीय कृषि अनुसंधान संस्था के अनुसार इसकी 'समर प्रौलिफिक लौंग' और 'समर प्रौलिफिक राउण्ड' दो किस्में हैं।

लौकी के हानिकारक कीट व नियंत्रण—इसके कई कीट शत्रु हैं। ये पौधे के सभी भागों पर आक्रमण करते हैं। इनमें से मुख्य इस प्रकार हैं—

(क) रेड पंपकिन बीटिल—यह लौकी का सबसे बड़ा भयंकर शत्रु कीट है। यह पौधो के उगते ही उन पर आक्रमण कर देता है। यह कीट पत्तियों की शिराओं के मध्य का भाग चट कर जाता है। सूर्योदय से पूर्व यह कीट सुस्त व निष्क्रिय रहता है। उसे इसी समय पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए। इसके अलावा नियंत्रण पाने के लिए एक प्रतिशत लिंडेल का प्रयोग करना चाहिए।

(ख) एफिड—यह शत्रु कीट देखने मे बहुत छोटा-सा होता है और पत्तियों की निचली सतह पर रहता है। यह पौधे का रस चूसकर क्षति पहुँचाता है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए मैलेथियन, रोटेनन या रोटेनन-निकोटिन का छिड़काव करना चाहिए।

(ग) जड़गांठ गोलकृमि—ये शत्रु कीट आकार में गोल व छोटे होते हैं। ये पौधो की जड़ों पर सूजन ला देते हैं जिससे पौधा कमजोर होकर नष्ट हो जाता है। लंबे फसल चक्र से इन पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

रोग व उनका नियंत्रण—लौकी व घिया की फसल को कई रोग प्रभावित करते हैं, जिनमें से मुख्य रोगों व उनके नियंत्रण का यहां पर उल्लेख किया जा रहा है—

(क) **एन्थ्रानोज**—लौकी की फसल का यह रोग एक फफूंद से होता है। इससे ग्रसित पौधो के पत्तों पर छोटे-छोटे पीले से अथवा जल सिक्त उभार दिखाई देने लगते हैं और धीरे-धीरे बड़े होकर भूरे रंग के हो जाते हैं। बाद में ऐसे ही लक्षण लौकी आदि पर भी दिखाई देने लगते हैं। इस पर नियंत्रण पाने के लिए खरपतवार निष्कासन या फसल चक्र या ताम्र यौगिक बुरकाना चाहिए।

मुजेक—लौकी की फसल का यह एक विषाणु रोग है। इससे ग्रसित पौधे व फल चितकबरे हो जाते हैं। यह रोग एफिड कीट के द्वारा अधिक फैलता है। इस रोग की कोई भी दवाई नही है। इस पर नियंत्रण पाने के लिए शैमराक, इलिमा, विसकासिन एस० एम० आर०—9 आदि प्रतिरोधक किस्में उगानी चाहिए।

सारांश

1. आदर्श शाक वाटिका का आकार स्थान, परिवार के सदस्यों द्वारा देख-भाल व आवश्यकतानुसार रखना चाहिए।
2. सब्जियों के पौधों के बीज बोने से पूर्व स्थान के अनुसार कौन-सी सब्जियाँ उगाई जाएँ, बुवाई की तिथियाँ, पौधों की दूरी, अंतःकृषि व अनुक्रम कृषि आदि बातों को ध्यान में रखते हुए योजना तैयार करनी चाहिए।
3. आलू—यह शीतकालीन फसल है। इसका कुल सोलेनेसी, वंश सोलैनम और जाति ट्यूबरोसम है। इसकी भारत मे प्रति व्यक्ति खपत 4 किलो प्रति वर्ष है। इसका आहार के रूप मे विशेष महत्व है। इसकी अच्छी उपज के लिए दोमट मिट्टी वाली भूमि और लम्बे दिनों वाला मौसम ठीक रहता है। इसकी बुवाई 15 सितम्बर से 15 जनवरी तक की जाती है। प्रति हैक्टेयर 30000 कि० ग्रा० गली हुई खेत की खाद बुवाई से 21 या 28 दिन पूर्व देनी चाहिए। इसका प्रवर्धन रोगमुक्त व उचित किस्म के कंदो से किया जाता है। बुवाई के बाद इसकी पहली सिंचाई और बाद मे मास में तीन बार सिंचाई करनी चाहिए। 20 सें० मी० पौधे ऊँचे होने पर पहली बार मिट्टी चढाई जानी चाहिए। खरपतवार पर नियंत्रण की आवश्यकता है। इसकी उपज प्रति हैक्टेयर 200 क्विंटल होती है। फसल कटाई का कार्य समुचित आकार के आलू से आरम्भ करना चाहिए। इन्हें तेज धूप से खुला नही छोड़ना चाहिए। इन्हें ठंडे गोदामों

में संग्रह करके रखना चाहिए। जू, लीफ हायर्स, कटवर्म आदि कीट शत्रु और ब्लैक लैग व रिंगराट, गुप्त मोजेक, ब्लेक हार्ट, हरापन, चारकोल क्षय, चित्ती आदि रोगों से आलू के पौधों की सुरक्षा करनी चाहिए।

4. टमाटर—यह सुरक्षाप्रद आहारों में से है। इसका प्रयोग सूप, सलाद, अचार, चटनी और सब्जी में किया जाता है। उपज के लिए अच्छी दोमट मिट्टी और 21° सें० से 23° सें० के बीच का औसत मासिक तापमान ठीक रहता है। इसकी फसलें जून-जुलाई और नवम्बर मास में उगाई जाती हैं। भूमि की तैयारी करते समय 20 से 25 टन प्रति हैक्टेयर खेत की बढ़िया खाद मिट्टी में मिला देनी चाहिए। टमाटर की पौध लगाते समय जड़ों के आसपास 220 कि० ग्रा० सिंगल सुपर फॉस्फेट, 119 कि० ग्रा० एमोनियम सल्फेट और 70 कि० ग्रा० पोटेशियम का मिश्रण देना चाहिए। पौधों के संवर्धन के लिए एक मास में कम गहरी जुताई आवश्यक है। एक हैक्टेयर भूमि के लिए 400 ग्राम बीज पर्याप्त है। फसल की सिंचाई मास में तीन बार करनी चाहिए। इसकी कटाई माल भेजने की दूरी के अनुसार की जाती है। इसे ठंडे गोदामों में संग्रह करते समय वहां का तापमान 12°-15° सें० होना चाहिए। एपीलेचना बीटल, टमाटर का कीड़ा आदि कीट शत्रु और आर्द्र गलन, फ्यूसेरियम मुरझान, चित्ती, पर्णकुंतल, और जड़गांठ गोल कृमि आदि से सुरक्षा करनी चाहिए।

5. बैंगन—इसमें आयुर्वेदिक ओषधीय गुण पाये जाते हैं। इसके लिए जल निष्कासित उर्वर भूमि ठीक रहती है। इसके लिए 13° से 21° सें० का दैनिक तापमान ठीक रहता है। इसके बीज जून मास में क्यारियों में बोने चाहिए। बीजांकुरण तक फूंस आदि से ढक देना चाहिए। इसकी भूमि मे प्रति हैक्टेयर 20-25 टन खेत की खाद मिलाकर उसमें 100 कि० ग्रा० नत्रजन, 50 कि० ग्राम फॉस्फेट और 50 कि० ग्रा० पोटेशियम मिला देनी चाहिए। फिर एक माह बाद की तैयार पौध लगानी चाहिए। इसके लम्बे व मझोले फूलों के तल मे ही फल लगते हैं। इसकी पहली सिंचाई पनीर लगाते ही और गर्मियों में सप्ताह में एक बार अवश्य करनी चाहिए। इन्हें दस दिन तक 70° से 100° सें० तापमान में रखा जा सकता है। इसकी लाल कीड़ा, प्ररोह एवं फलबेधक, ऐपीलेचना बीटल आदि कीट शत्रु और आर्द्र गलन, फोमोपोसिस ब्लाइट, लिटिल लीफ, जड़ गांठ गोल कृमि आदि रोगों से सुरक्षा करनी चाहिए।

6. फूल गोभी—शीतकालीन नाजुक फसल है। इसकी उपज के लिए

कार्बनिक पदार्थ युक्त व जल निष्कासित दोमट मिट्टी वाली भूमि चाहिए। इसके अच्छे फूलों के लिए ठंडी व नमीदार जलवायु चाहिए। इसकी खेती के लिए फफूदनाशी के द्वारा भूमि का निर्जीवीकरण कर लेना चाहिए। इसकी बुवाई 15 मई से 30 जून तक करनी चाहिए। प्रति हैक्टेयर भूमि के लिए बीजों की मात्रा 600 से 750 ग्राम पर्याप्त है। एक माह की तैयार पौध दोमट मिट्टी में लगानी चाहिए। इसकी पौध लगाने से 21 दिन पूर्व 20 टन खेत की खाद प्रति हैक्टेयर डालनी चाहिए। इसमें गहरी जुताई नहीं करनी चाहिए। इसके फूलों का विवर्णीकरण कर देना चाहिए। फल के समुचित आकार लेने के बाद ही इसकी कटाई करनी चाहिए। इसकी उपज प्रति हैक्टेयर 20 से 30 टन तक होती है। इसे एक मास तक 0° सें० तापमान में संग्रहीत किया जा सकता है। इसकी सुरक्षा फूलगोभी के कीट, कैबेज मैगट आदि कीट शत्रु व आर्द्र गलन, कालाक्षय, काली मेखला, पीलिया आदि रोगों से करनी चाहिए।

7. **मूली**—इसका कुल क्रूसी फेरी, वंश रैफेनस और जाति सैटिवस है। इसके लिए अति उर्वर, हल्की और भुरभुरी मिट्टी चाहिए। यह 10° से 15° सें० तापमान में अच्छी पनपती है। यह मेड़ों पर उगायी जाती है। इसकी बुवाई अक्टूबर-दिसम्बर में की जाती है। इसके लिए प्रति हैक्टेयर 10 कि० ग्रा० बीज पर्याप्त हैं। इसमें 150 क्विंटल प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद देनी चाहिए। सप्ताह में एक बार सिंचाई अवश्य करनी चाहिए। इसकी जड़ें सिरोंसहित उखाड़ी जाती है। इसकी उपज प्रति हैक्टेयर 15000 से 30000 कि० ग्रा० तक होती है। इसकी सुरक्षा एफिड, मैगट और पिस्सू कीट शत्रुओं से करनी चाहिए।

8. **गाजर**—इसका कुल अंबेली फेरी, वंश डोकस और जाति कैरोटा है। इसके लिए गहरी, ढीली और दोमट मिट्टी चाहिए। इसके लिए 15° से 20° सें० तापमान आवश्यक है। एक हैक्टेयर भूमि के लिए 5.6 कि० ग्राम बीज पर्याप्त रहते हैं, इसकी उपज के लिए अच्छी गली हुई एफ० वाई० एम की 30 टन खाद प्रति हैक्टेयर डालनी चाहिए। इसकी गहरी की गई बुवाई में पौधों को छितराना चाहिए। समय-समय पर गुड़ाई करते रहना चाहिए। पहली सिंचाई बुवाई के बाद तत्काल कर देनी चाहिए। दूसरी सिंचाई सप्ताह के बाद करनी चाहिए। अधिक सिंचाई से उपज कम होती है। गाजरों के पूर्णतया विकसित होने पर खुरपे से कटाई करनी चाहिए। इसकी उपज प्रति हैक्टेयर 20000 से 3000 कि० ग्रा० तक होती है। इसकी सुरक्षा वीविल, मिक्स स्पाटेड

लीफ हापर और कैरेद रस्टफलाई, पत्ता दाग व चित्ती से करनी चाहिए।

9. प्याज—इसका कुल ऐमेरिलिडेसी, वंश ऐलियम और जाति सेपा है। अच्छी उपज के लिए इसकी फसल दोमट भूमि में करनी चाहिए। इसके विकास में तापमान का विशेष महत्त्व है। यह नर्सरी में उगायी जाती है फिर बीजांकुरों को तैयार भूमि में लगाया जाता है। प्रति हैक्टेयर भूमि में 8-10 किलो ग्रा० प्याज के बीज पर्याप्त हैं। भूमि तैयार करते समय 20 गाड़ी खेत की खाद मिट्टी में मिला देनी चाहिए। इसके पौधे का प्रतिरोपण दिसम्बर के अन्त या जनवरी के आरम्भ में करना चाहिए। इसकी उथली जुताई की जानी चाहिए। इसकी भूमि में अनुकूलतम आर्द्रता बनी रहनी चाहिए। पौधों के सिरों का पकना व झड़ना आरम्भ होते ही सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। पके हुए बल्ब को तत्काल काट लेना चाहिए। इसकी उपज प्रति हैक्टेयर 25-30 टन होती है, इसका संग्रह एक मास तक सुखाने के बाद करना चाहिए। इसकी सुरक्षा त्रिप और मैगट कीट शत्रुओं और नीलारूण ददोरा, जीवाणु व फ्यूजेरियन विगलन आदि रोगों से करनी चाहिए।

10. मटर—इसका कुल लेग्युमिनोसी और जाति पीसम सैटियम है। इसके लिए जल निष्कासित, ढीली, भुरभुरी दोमट मिट्टी सर्वोत्तम रहती है। इसके लिए शीत मौसम ठीक रहता है। इसके अंकुरण के लिए अनुकूल तापमान 20 सँ० के लगभग होना चाहिए। मैदानों में इसकी बुवाई अक्टूबर से 15 नवम्बर तक की जाती है। भूमि तैयार करते समय 20 टन प्रति हैक्टेयर गोबर की खाद देनी चाहिए। इसकी बुवाई से पूर्व सिंचाई करनी चाहिए। खरपतवार नियंत्रण भी आवश्यक है। फलियों में दाना पड़ जाने के बाद कटाई की जाती है। इसकी उपज प्रति हैक्टेयर 3000 से 4000 कि० ग्राम होती है। बिना छिली मटरों का संग्रह 0° सं० तापमान में पन्द्रह दिन तक के लिए किया जा सकता है। इसकी सुरक्षा एफिड और वीविल कीट शत्रु और मुरझान, विषाणु चित्ती और चूर्णी फफूद आदि रोगों से करनी चाहिए।

11. भिण्डी—इसका कुल मालवेसी, वंश एवेल मोशस और जाति ऐसक्युलेंटस है। इसकी फसल के लिए भुरभुरी व भली-भांति खाद युक्त भूमि सबसे उत्तम है। इसके बीजों में 20 सं० से कम तापमान में अंकुरण नहीं हो पाता है। इसकी फसल जनवरी-फरवरी और जून-जुलाई में बोई जाती है। प्रति हैक्टेयर 18 से 20 कि० ग्रा० बीज पर्याप्त हैं। बुवाई से 15 दिन पूर्व 1000 कि० ग्रा० खेत की खाद प्रति

हैक्टेयर भूमि की मिट्टी में मिला देना चाहिए। बुवाई से पूर्व एक बार सिंचाई कर देनी चाहिए और गर्मियों में मास में छह बार सिंचाई कर देनी चाहिए। फसल तैयार होने पर दूसरे व तीसरे दिन भिण्डियाँ तोड़ लेनी चाहिए। इसकी सुरक्षा जैसिड और कपास की सूंडी नामक कीट शत्रुओं तथा चूर्णी फफूंद और पीतशिरा मोजिक रोगों से करनी चाहिए।

12. लौकी (घिया)—इसका कुल क्युकर बिटेसी, वंश लेजीनेरिया और जाति साइसेरेरिया है। इसकी उपज के लिए दोमट मिट्टी चाहिए। इसे गर्म व तर जलवायु चाहिए। इसकी बुवाई जनवरी-फरवरी और जून-जुलाई में की जाती है। प्रति हैक्टेयर 4-5 कि० ग्रा० बीज पर्याप्त हैं। भूमि की तैयारी के समय प्रति हैक्टेयर 150-200 क्विटल सड़ी गली गोबर की खाद डालनी चाहिए। गर्मी के दिनों में दस बार सिंचाई करनी चाहिए। खरपतवारों को हटाने के लिए 2-3 बार निराई-गुडाई करनी चाहिए। इसकी औसतन उपज प्रति हैक्टेयर 200-300 क्विटल है। कोमल फलों की कटाई चाकू से करनी चाहिए। इसकी सुरक्षा रेड पंपकिन बीटिल और एफिड कीट शत्रुओं से और एंथ्रानोज और मोजिक रोगों से करनी चाहिए।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1. *निम्नलिखित सब्जियों में से किन्हीं दो का नीचे लिखे शीर्षकों में उल्लेख करो :—आलू। फूल गोभी। मूली। मटर। टमाटर।*
(i) भूमि व जलवायु (ii) खाद व उर्वरक (iii) बीज दर (iv) सिंचाई (v) अंतः कृषि (vi) फसल कटाई (vii) उन्नतिशील जातियाँ (viii) संग्रह विधि (ix) हानिकारक कीट व नियंत्रण (x) रोग व नियंत्रण।

प्रश्न 2. समय व फसल के अनुसार सब्जियों का वर्गीकरण कीजिए और उनकी तालिका तैयार कीजिए।

प्रश्न 3. आलू, गाजर, मटर, फूल गोभी और टमाटर के बीजों की तैयारी का उल्लेख कीजिए।

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. गृहवाटिका में मौसम के अनुसार सब्जियां बोने का अभ्यास कीजिए।
प्रश्न 2. अपने विद्यालय मे एक आदर्श वाटिका तैयार कीजिए।

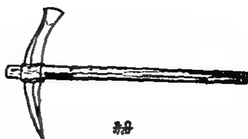
बागवानी के लिए आवश्यक यंत्र (NECESSARY TOOLS FOR GARDENING) 10

प्रस्तावना (INTRODUCTION)

उद्यान कला में फल्य सस्य को अच्छी उपज के लिए भूमि की जुताई करनी पड़ती है। इससे मिट्टी की संरध्रता बढ़ जाती है और पौधों की जड़ें अच्छी फैलने लग जाती हैं। घास-पात व पिछली सस्य की खूंटियाँ निकल जाती हैं। मिट्टी में दबे कीट शत्रु और उनके अण्डों को नष्ट करने का यह सरलतम उपाय है। इससे पानी सोखने की क्षमता बढ़ जाती है और रासायनिक एवं जीवाणु द्वारा होने वाली क्रियाओं को उत्तेजित करके मिट्टी का उर्वरापन बढ़ जाता है। इसके लिए गेंती, फावड़ा, खुर्पी और हल आदि का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा सिंचाई यंत्र, घास व शाखाएँ काटने वाले यंत्र, फल तोड़ने वाला यंत्र और रोगी पौधों पर कीटनाशक रासायनिक पदार्थ छिड़कने वाले यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। जिन सभी यंत्रों का उद्यान कला में विशेष स्थान है उनका सचित्र विवरण यहाँ पर दिया जा रहा है।

1. गेंती

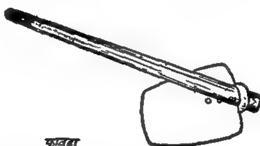
गेंती मे जमीन खोदने के मुंह दोनों ओर होते हैं। इसका एक मुंह बहुत नुकीला और दूसरा कुछ चपटा सा



होता है। इसका हत्था शीशम की लकड़ी का होता है। इससे गृह वाटिका की सख्त मिट्टी खोदने अथवा कंकड़ पत्थर निकालने का काम लिया जाता है।

2. फावड़ा

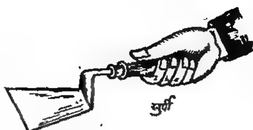
यह उद्यान के लिए प्रमुख यंत्र है। इस में 10 इंच चौड़ा लोहे का फाल लगा होता है। इस फाल का पिछला हिस्सा भारी और आगे का हिस्सा पैना होता है। इसका हत्था शीशम की लकड़ी का बना होता है। इसका उपयोग



नर्सरी की क्यारियाँ तैयार करने, फूल-पौधों की चारों ओर मेड़ बनाने, फल्य सस्य के पौधों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाने, सिंचाई की नालियाँ तैयार करने और निराई, गुड़ाई तथा खुदाई के लिए किया जाता है।

3. खुर्पी

गृह वाटिकाओं में अधिकांशतः छोटी-छोटी खुर्पियों का प्रयोग किया जाता है। इसमें भी एक छोटा-सा लोहे का फाल लगा होता है। आगे का सिरा 4 इंच चौड़ा और काफी पैना तथा पीछे का भारी होता है। इसके अंत में छोटा-सा लकड़ी का हत्था लगा होता है। इसका प्रयोग निराई, गुड़ाई, खुदाई, पौधों का स्थानान्तरण रोपण, खरपतवार आदि निकालने के लिए किया जाता है।



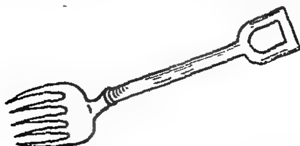
4. फव्वारा

यह फल्य सस्य के लिए सबसे उपयोगी सिंचाई यंत्र है। यह बाल्टीनुमा डिब्बा लोहे की चादर का बना हुआ होता है। इसमें 10 लिटर तक पानी आ जाता है। इसके बीच में एक दो इंच व्यास की नली जुड़ी होती है जिसके अगले मुख पर फूल लगा होता है। 25-30 छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। इनमें से जल फव्वारे की बारीक धार के समान निकलता है। इससे सिंचाई करने पर जल फल्य सस्य के पौधों के चारों ओर समान मात्रा में गिरता है। इससे छोटे पौधों की जड़ों व तनों को क्षति नहीं पहुँचती है।


फव्वारा

5. गार्डन फोर्क

इसका प्रयोग गृह वाटिकाओं में सिंचाई के बाद क्यारियों में जमी मिट्टी की पपड़ी को तोड़ने के लिए किया जाता है। इससे खरपतवार निकालने का काम


गार्डन फोर्क

भी लिया जा सकता है। इसके अगले भाग में चार पाँच तगे होते हैं। इसका आकार आगे से नुकीला होता है।

6. हैंड फोर्क

यह गार्डन फोर्क से आकार में छोटा होता है । इसका मुख त्रिशूलनुमा होता



हैंड फोर्क

है। इसके पीछे छोटा-सा लकड़ी का हत्था लगा होता है। इसका प्रयोग भी क्यारियों में जमी मिट्टी की पपड़ी तोड़ने के लिए किया जाता है।

7. हैंड फोर्क वीडर

यह लोहे का बना हुआ होता है। इसके आगे के चार काँटे आगे से मुड़े हुए होते हैं। इसका प्रयोग क्यारियों में से खरपतवार खींचने के लिए किया जाता है।



हैंड फोर्क वीडर

8. हैंड कल्टीवेटर

इसमें पाँच सलाखें और आगे से मुड़ी हुई और पैनी होती हैं। इसका प्रयोग छोटे-छोटे पौधों के बीच में निराई गुड़ाई के लिए किया जाता है। पौधों की कतारों में उपजने वाले घास-पात जैसे जंगली चौलाई, सत्यानाशी, खलदूलन



हैण्ड कल्टीवेटर

खिसारी, पत्थर चट्टा, दूब विषखपरा आदि को इसकी मदद से आसानी के साथ निकाला जा सकता है। अधिक घास वाली क्यारी में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

9. गार्डन रेक

इसमें एक लोहे की बनी पटरी होती है जिसकी लम्बाई 30 सें० मी० होती इसमें 10 सें० मी० लम्बे 6-8 काँटे लगे होते हैं। इसमें 4 फुट (120 सें० मी० लम्बा बाँस का मजबूत हत्था लगा होता है। इसका प्रयोग क्यारी की मिट्टी को



गार्डन रेक

समतल करने और निराई-गुड़ाई द्वारा निकाली गई घास-पात को इकट्ठा करने के लिए किया जाता है। इसके अलावा क्यारियों में फल्य सस्य के बीजों को मिलाने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

10. कर्नी

यह भी खुर्पी के समान ही बनी होती है, केवल इसका फाल उसकी अपेक्षा लम्बा, चौड़ा और ऊपर की ओर से मुड़ा हुआ होता है। इसका अधिकांशत प्रयोग

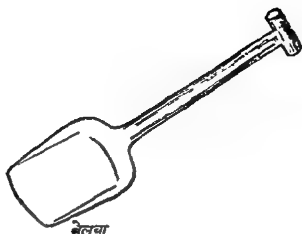


पौधे लगाने वाली कर्नी

पौध का स्थानान्तररोपण के समय किया जाता है। इसके अलावा पौध के चारों ओर मिट्टी डालने व मिट्टी को दबाने के लिए भी इसका प्रयोग किया जा सकता है।

11. बेलचा

इसका फाल लोहे का बना होता है। यह तीन तरफ से मुड़ा हुआ और आगे

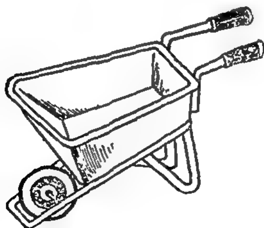


बेलचा

से पैना होता है। इसमें लगभग दो फुट लम्बा हत्था लगा होता है। इसका प्रयोग खाद व मिट्टी उठाने के लिए किया जाता है।

12. पहियेदार गाड़ी

यह लोहे की बनी एक छोटी गाड़ी होती है। इसमे पकड़ने के लिए दो हत्थे



पहियेदार गाड़ी

लगे होते है। इसके आगे की ओर एक पहिया लगा हुआ होता है। इसका प्रयोग खाद, मिट्टी, मल और कूड़ा कर्कट आदि ढोने के लिए किया जाता है।

13. घास काटने वाली मशीन

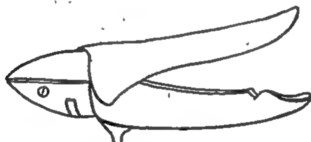
यह मशीन लोहे की बनी होती है। इसमें आगे की ओर चाकू लगे होते हैं। इसके चलाने से घास समतल और जल्दी कटती है जो कि देखने में सुन्दर लगती है।

14. फल तोड़ने वाला यंत्र

यह यंत्र एक लम्बे बाँस में मुड़ा हुआ चाकू फल व जाली की थैली लगा कर तैयार किया जाता है। इसे फल के पास ले जाने से चाकू फल को काट देता है और वह जाली की थैली में आ जाता है। इससे फल जमीन में गिरने से बच जाता है। अधिकाँशतः इसका प्रयोग आम और सेव आदि के लिए किया जाता है।

15. सिकटेयर

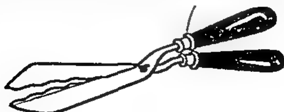
यह छोटा-सा लोहे के द्वारा बना हुआ कैंचीनुमा यंत्र पौधों की छोटी-छोटी शाखाओं के काटने के लिए प्रयोग में लिया जाता है।



सिकटेयर

16. बाढ़ काटने वाली कैंची

इसके दो फल लोहे के बने होते हैं। इनकी धार पैनी होती है और आकार कैंची जैसा। इसके दोनों हत्थे लकड़ी के बने हुए होते हैं। इसका उपयोग बागों में झाड़ियाँ काटने व इच्छानुसार पौधों को आकार देने के लिए किया जाता है।



बाड़ काटने वाली कैंची

17. घास काटने वाली कैंची

यह लोहे की बनी हुई होती है। इसका प्रयोग लॉन में अलंकृत घासों को काटने के लिए किया जाता है।



घास काटने वाली कैंची

18. हंसिया

इसमें लोहे की एक अर्द्ध-चन्द्राकार फाल लगी होती है। इसका अगला भाग



हँसिया

नुकीला होता है। इसके पीछे 15 सें० मी० लम्बा लकड़ी का हत्था लगा हुआ होता है। इससे सब्जियां व घास काटने का काम लिया जाता है।

19. प्रूनिंग चाकू

इसका ब्लेड आगे की ओर झुका हुआ लम्बा व मजबूत होता है। इसका हत्था



प्रूनिंग नाइफ

ऊपर की ओर उठा हुआ लकड़ी का बना होता है। इसका प्रयोग भी छोटे-छोटे पौधों की काट-छांट के लिए किया जाता है।

20. ग्राफ्टिंग एंड बडिंग नाइफ

इसमें दो लोहे के ब्लेड लगे हुए होते हैं। इसका अगला ब्लेड अन्य चाकुओं के समान होता है जोकि कलम लगाने या प्रतिरोपण के काम आता है। इसके


ग्राफ्टिंग व बडिंग नाइफ

पिछले वाले ब्लेड की नोक नुकीली होती है जोकि कलिका बंधन के काम आता है।

21. बडिंग चाकू

यह आकार में अन्य चाकूओं के समान होता है। इसका ब्लेड बहुत तेज होता है। इससे कलिका बंधन का काम लिया जाता है। इसके हत्थे में पतला


बडिंग नाइफ

हाथी का दांत लगा हुआ होता है जिससे छाल को ढीला किया जा सकता है।

22. प्रूनिंग-सा

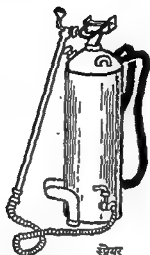
यह एक प्रकार की आरी होती है जिसका फल तलवार की आकार का और छोटे-छोटे दांतों वाला होता है। इसके पिछले भाग में लकड़ी का हत्था लगा


प्रूनिंग सॉ

रहता है। इसका प्रयोग मोटी शाखाओं को काटने के लिए किया जाता है।

23. स्प्रेयर

हाथ का स्प्रेयर, पैर का स्प्रेयर और बिजली से चलने वाला स्प्रेयर आदि विभिन्नाकार के होते हैं। इनका प्रयोग रोगी पौधों पर कीटनाशी छिड़कने के लिए किया जाता है।


स्प्रेयर

सारांश

1. उद्यान कला में उसके यंत्रों का भी विशेष महत्त्व है।
2. गैंती से सख्त मिट्टी खोदने या ककड़ पत्थर निकालने का काम लिया जाता है।
3. फावड़े से क्यारियाँ, फूल पौधों के चारों ओर मेड़ बनाने, मिट्टी चढ़ाने और सिंचाई की नालियाँ बनाने का काम लिया जाता है।
4. खुर्पी का प्रयोग निराई-गुड़ाई व खुदाई के लिए किया जाता है।
5. फव्वारे से सिंचाई एक समान होती है।
6. गार्डन फोर्क और हैंड फोर्क का प्रयोग क्यारियों में जमी पपड़ी तोड़ने के लिए किया जाता है।
7. हैंड फोर्क वीडर का प्रयोग क्यारियों में से खरपतवार खींचने के लिए किया जाता है।
8. हैंड कल्टीवेटर का प्रयोग पौधों के बीच में निराई-गुड़ाई करने और कतारों में से घास पात निकालने के लिए किया जाता है।
9. रेक का प्रयोग क्यारियों की मिट्टी समतल करने और निराई-गुड़ाई द्वारा निकाली गई घासपात को इकट्ठा करने के लिए किया जाता है।
10. कर्नी का प्रयोग पौध के स्थानान्तर रोपण के लिए किया जाता है।
11. बेलचे का प्रयोग खाद व मिट्टी उठाने के लिए किया जाता है।
12. पहिएदार गाड़ी का प्रयोग खाद, मिट्टी यंत्र और कूड़ा कर्कट ढोने के लिए किया जाता है।

13. घास काटनेवाली मशीन से घास समतल और जल्दी कटती है।
14. फल तोड़ने वाले यंत्र से फल सुरक्षित उत्तर आता है।
15. सिकटेयर का प्रयोग छोटी-छोटी शाखाओं के काटने के लिए किया जाता है।
16. कैंचियों का प्रयोग घास काटने व बाढ़ काटने के लिए किया जाता है।
17. हंसिया से सब्जियाँ व घास काटने का काम लिया जाता है।
18. प्रूनिंग चाकू का प्रयोग काट-छाँट के लिए किया जाता है।
19. ग्राफ्टिंग एंड बडिंग चाकू के अगले फल का प्रयोग प्रतिरोपण के लिए और पिछले फल का प्रयोग कलिका बंधन के लिए किया जाता है।
20. प्रूनिंग सा (आरी) का प्रयोग मोटी शाखाओं को काटने के लिए किया जाता है।
21. स्प्रेयर का इस्तेमाल रोगी पौधों पर कीटनाशी छिड़कने के लिए किया जाता है।

आदर्श प्रश्न

प्रश्न 1. निम्नलिखित कार्य के लिए तुम किन यंत्रों का प्रयोग करोगे, उनके नाम सामने लिखिए।

(क) सख्त मिट्टी खोदने के लिए। (क)……

(ख) निराई गुड़ाई करने के लिए। (ख)……

(ग) खरपतवार खींचने के लिए। (ग)……

(घ) सिंचाई के लिए। (घ)……

(ङ) पौध के स्थानान्तर रोपण के लिए। (ङ)……

प्रयोगात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. अपनी गृहवाटिका में लगे हुए पौधों के बीच निराई गुड़ाई और पास में उपजने वाली घासपात को निकालने का अभ्यास कीजिए।

परिशिष्ट-I

गृह वाटिका में उगायी जाने वाली सब्जियों की मासिक तालिका

क्र०सं०	मास	दिवस	उगायी जाने वाली सब्जियाँ
1.	जनवरी	1 से 15	चुकन्दर, गाँठ-गोभी, गाजर, मूली, शलगम, सलाद, विलायती मूली, प्याज।
		16 से 31	ककड़ी, खीरा, तोरई, परवल, मिर्च, बैंगन लौकी, विलायती मूली, शलगम।
2.	फरवरी	1 से 15	बैंगन, मूली, मिर्च, परवल, लौकी, शलगम।
		16 से 28	ककड़ी, खीरा, करेला, टिण्डा, परवल।
3.	मार्च	1 से 15	काशीफल, खीरा, अरवी, टिण्डा, भिण्डी, बैंगन, पोदीना, परवल।
		16 से 31	काशीफल, खीरा, अरवी, टिण्डा, भिण्डी, बैंगन, पोदीना, परवल।
4.	अप्रैल	1 से 15	ककड़ी, खीरा, ग्वार की फलियाँ, भिण्डी, मिर्च, बैंगन, पालक, लौकी।
		16 से 30	ककडी, खीरा, ग्वार की फलियाँ, चौलाई, पालक, भिण्डी।
5.	मई	1 से 31	खीरा, भिण्डी, पालक, मूली, चौलाई।
6.	जून	1 से 15	करेला, अरवी, सेम, भिण्डी।
		16 से 30	करेला, काशीफल, भिण्डी, मूली, शलगम, बैंगन, प्याज, टमाटर, लौकी, फूलगोभी, मिर्च।

क्र० सं०	मास	दिवस	उगायी जाने वाली सब्जियाँ
7.	जुलाई	1 से 15	ग्वार की फलियाँ, मिर्च, बैंगन, सेम, मूली, भिण्डी, फूलगोभी, टमाटर।
		16 से 31	गाँठ गोभी, फूल गोभी, मूली, मिर्च, शलजम, टमाटर।
8.	अगस्त	1 से 15	फूलगोभी, पात गोभी, गाँठ गोभी, भिण्डी, बैंगन, सेम, टमाटर, प्याज, सलाद, मिर्च।
		16 से 31	फूलगोभी, बंदगोभी, टमाटर, मिर्च, बैंगन, सेम।
9.	सितम्बर	1 से 15	आलू, गाँठ गोभी, प्याज, टमाटर, सलाद, बंद गोभी, फूल गोभी, मिर्च।
		16 से 30	आलू, फूलगोभी, बंदगोभी, परवल, टमाटर, मटर, टिण्डा, प्याज।
10.	अक्टूबर	1 से 15	आलू, प्याज, बंदगोभी, फूलगोभी, सलाद, धनिया, मिर्च, टमाटर, मटर।
		16 से 31	आलू, गाँठ गोभी, बंदगोभी, मूली, सलाद, मिर्च, प्याज, लहसुन, गाजर, शलगम, चुकन्दर परवल।
11.	नवम्बर	1 से 15	गाजर, चुकन्दर, बंदगोभी, सेम, मटर, सलाद, मूली, शलगम।
		16 से 30	गाजर, मूली, शलगम, मटर, चुकन्दर, बंद गोभी, सेम, सलाद।
12.	दिसम्बर	1 से 15	तोरई, करेला, बंदगोभी, लौकी, सलाद, मूली, पोदीना, सेम।
		16 से 31	करेला, गाजर, मूली, चुकन्दर, टमाटर, सलाद, टमाटर, सेम।